रहस्यपूर्ण (स्वानुभव) सूक्ष्मतत्त्वचर्चा
उत्तरार्द्ध

—: प्रवचनकर्त्ता :—

अध्यात्म तलस्पर्शी परमादरणीय

बाबूजी 'युगल'जी जैन एम.ए, साहित्यरत्न
कोटा

सूक्ष्मतत्त्वचर्चा 12 से 22 तक

श्री शांतिभाईजवेरी के निवास स्थान नीलांबर मुंबई में हुई
आध्यात्मिक (स्वानुभव) सूक्ष्मतत्त्वचर्चा

आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन
कोटा
94141 81512

1.) Youtube में Babuji Yugal Ji type करें।

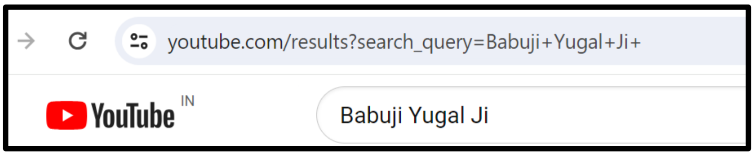

2.) Channel पर click करें।

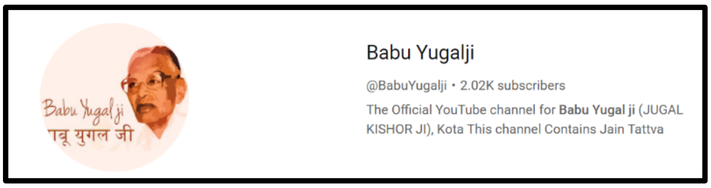

3.) Channel को Subscribe करें।

4.) Playlist पर click करें।

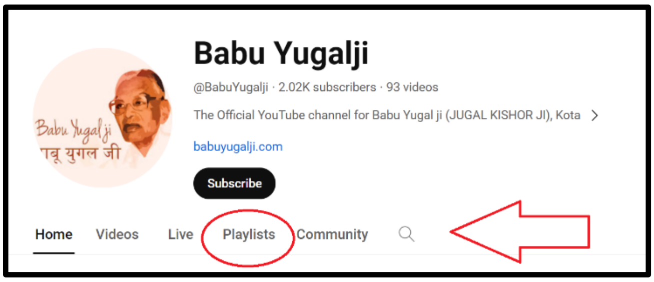

5.) नीचे दी गई Playlist के 11 से 22 Videos इस पुस्तक में अक्षरशः प्रकाशित किये गए हैं। अवश्य स्वाध्याय करें।

हृदयोद्‍गार

अध्यात्मभवन के सुदृढ़ स्तम्भ, दर्शन के दिवाकर 'केवल रवि' जैसी अनुपम काव्यकृति के प्रणेता, साहित्य सम्राट पूज्य बाबू युगलजी कोटा, इस युग के प्रखर चिन्तनशील महामना थे। जीवन पथ प्रदाता पूज्य गुरुदेव के गहन सिद्धान्त 'रत्नराशि' के समान उनके हृदय में सदा ही प्रतिष्ठित रहे हैं, जो उनकी ज्ञान चेतना को निरन्तर अनुप्राणित करते रहते थे, ऐसे स्वच्छ व पैने ज्ञान द्वारा उन्होंने जैन सिद्धान्तों के महासागर में गोते लगाकर उसकी गहराई में छिपे मणि-मुक्ताओं को जैन जगत के समक्ष प्रवचन, चर्चा, परिचर्चा, काव्य व लेखांश के रूप में उद्‍घाटित कर, सचमुच एक अमूल्य धरोहर विश्व के जैन साहित्य कोष को प्रदान की।

काल की किसी मंगल घड़ी में विशेष अवसरों पर हुई उनकी समरसी, सुन्दर सटीक व संक्षिप्त चर्चायें मुमुक्षुमंच के लिए 'वज्र कवच' समान सिद्ध हुई हैं, वे आज भी उनके मानस में चिरस्थाई होकर मिथ्या-भ्रान्तियों पर सदैव प्रहार करती रहती हैं।

वर्तमान परिवेश में 'नीलांबर' चर्चा धरती से अम्बर तक अध्यात्म की ऊँची उड़ान के साथ देश व विदेश के हर कोने में चर्चित होकर चातक-चित्त पिपासुओं में अपना ध्रुव स्थान बना चुकी है, जिससे उनकी तत्त्वधारा त्वरा से गतिमान होती हुई, अपने लक्ष तक पहुँचने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रही है।

सुखद चर्चांश में आगम व अध्यात्म के गंभीर विषयों में छिपे हुए रहस्य एवं आंतरिक भावों को पूज्य बाबूजी ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्फुटित किया है, अल्प शब्दों में बहु भावों को गुंफित कर लेना तो उनकी शैली का प्रधान गुण है ही, साथ ही समृद्ध शैली में भाषा का लालित्य व प्रवाह स्वतः ही छलक-छलक कर बाहर आ रहा है।

विभिन्न रसों के समावेश पूर्वक सुरम्य चर्चा में विभिन्न विषयों का समावेश बखूबी से हुआ है, श्रद्धा गुण की कार्य प्रणाली, ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव, लब्ध-उपयोग, इन्द्रियज्ञान व अतीन्द्रिय ज्ञान का स्वरूप, दोष निवारक मंत्र, जैन श्रावक का व्यवहार पक्ष, आचार संहिता, अनुशासित, मर्यादित,

संयमित व संतुलित जीवन शैली आदि-आदि। इस प्रकार चर्चा में न ही अध्यात्म का अतिरेक और न ही व्यवहार का लोप ! बल्कि एक मात्र शुद्धात्मा को केन्द्र में रखकर, बड़ी स्पष्टता, निशंकता, प्रमुदित हृदय एवं जागते विश्वास के साथ चर्चा मुखरित हुई है, सचमुच अध्यात्म के उत्कर्ष को स्पर्श कर इन चर्चाओं ने 'नीलांबर' को सर्वार्थसिद्धि की प्रतिछाया का ही रूप दे दिया। अहो धन्य है! मुमुक्षुवृन्द और उनके मकरन्द - 'युगल'।

महानगरी मुम्बई 'नीलांबर' में स्थित तत्त्वमयी सरल व्यक्तित्व श्री शांतिभाई जवेरी का निवास स्थान क्रांतिकारी पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य लालचन्दभाई जैसे निर्मल ज्ञान सम्पन्न महापुरुषों का विश्राम स्थल रहा है, उसी पवित्र प्रांगण में जनवरी 1999 में पूज्य बाबूजी की 22 दिवस तक मनोमुग्धकारी चर्चा की धारा चलती रही, 200-250 श्रोतागण इस शीतल धारा में डूबकर, नई-नई सुखद अनुभूति लेकर जाते थे, मैं स्वयं (पुत्री ब्र. नीलिमा) भी पूज्य बाबूजी के साथ ही थी, तब मैंने प्रत्यक्ष देखा, पूज्य बाबूजी के अंतरमुखी चिन्तन से निकली शुद्ध अन्तस्तत्त्व की मधुरिम वार्ता में पूज्य बाबूजी के प्रज्ञा-चक्षु व मुखमुद्रा की खिलावट, जिसने वहाँ के सारे वातायन में चैतन्य की महक भर डाली, वह दृश्य मेरे स्मृति पटल पर आज भी चल-चित्र बन घूमते रहते हैं, वे मंत्र-मुग्ध से श्रोता, हृदय में चर्चा का रसपरिपाक एवं अर्पणता। सच! एक आश्चर्य ही था।

श्रोता प्रमुख एवं प्रश्नकर्ता आदरणीय शांतिभाई के ज्येष्ठ पुत्र श्री पंकजभाई चर्चा के मधुर रस को तीव्र उत्कंठा व हर्षित मन से भर-भर पीते रहे एवं श्री महेन्द्रभाई सी.ए. बोरीवली ने चर्चाओं में प्रश्न एवं प्रश्न की पुनरावृत्ति द्वारा सदन में उमंग भरी ध्वनि का संचार कर डाला और हाँ! हमारे सौभाग्य से उन्होंने इन चर्चाओं की रिकार्डिंग कर उन्हें जीवंत रखा। इन चर्चाओं को अक्षरशः लिखने एवं वीडीओ में सब-टाईटल कर पी.डी.एफ. के साथ यू-ट्यूब पर उपलब्ध कराने का श्रमसाध्य कार्य मंजुषाजी जैन इन्दौर एवं उनकी पूरी टीम ने बहुत ही लगन, तत्परता एवं समर्पण के साथ सम्पन्न किया, अतः हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। टीम के सदस्य के रूप में आशा महेता (मुंबई), दर्शना झवेरी (मुंबई), इन्दिरा कोठारी (मुंबई), ऋतु जैन (इंदौर), मंजुषा जैन (इंदौर), मनीषा

मोदी (खुरई), विभूति शेठ (मुंबई), मानसी जैन (पुणे), पल्लवी जैन (इंदौर) एवं प्रियंका जैन (भोपाल) शामिल हैं।

सचमुच - लोकोत्तर इन चर्चाओं का ध्रुव स्तूप तो ध्रुव ही है, ध्रुव की धुरी पर ही चर्चाओं का चक्र चलता रहा यह ध्रुवधाम की ध्रुव चर्चा स्वयं के लिए चर्चित होकर हमारी चर्या का हिस्सा बन जावें - मुझे विश्वास है कि ध्रुवत्व की चर्चा के ये 'अजेय सूत्र' हमारे अभिशापों की घड़ियों में वरदानों के सुन्दर फूल बनकर उदित होंगे।

चैतन्य की चर्चा के चितेरे पूज्य बाबू युगलजी के पावन जन्म शताब्दी वर्ष पर हमारा समग्र उज्ज्वल धवल परिवार, धवलमना पूज्य बाबूजी के स्मरणार्थ यह धवलधरा सा पुष्पहार असीम श्रद्धा के साथ समर्पित कर रहा है। मुक्ति के पथिक इस प्रकृष्ट प्रसाधन को पाकर अपने जीवन को परिष्कृत करें, ऐसी उत्तम भावना के साथ....

दिनांक: 05 अप्रैल 2024 **मोक्षाभिलाषी**

पूज्य बाबूजी युगल जी जन्म-दिवस **ब्र. नीलिमा जैन, कोटा**

युगल शताब्दी वर्ष 1924-2024

आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन, कोटा
85, चैतन्य विहार,
आर्य समाज की गली,
रामपुरा,
कोटा (राजस्थान) - 324006
094141 81512 – **चिन्मय जैन**, **कोटा**

नीलांबर 'युगल' - उत्तरार्द्ध
अनुक्रमणिका

चर्चा नंबर पेज नंबर

तत्त्व-चर्चा नंबर १२ 6

तत्त्व-चर्चा नंबर १३ 25

तत्त्व-चर्चा नंबर १४ 46

तत्त्व-चर्चा नंबर १५ 65

तत्त्व-चर्चा नंबर १६ 87

तत्त्व-चर्चा नंबर १७ 109

तत्त्व-चर्चा नंबर १८ 126

तत्त्व-चर्चा नंबर १९ 141

तत्त्व-चर्चा नंबर २० 161

तत्त्व-चर्चा नंबर २१ 183

तत्त्व-चर्चा नंबर २२ 204

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १२, तारीख ५-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षुः-[1] पूज्य बाबूजी! एक प्रश्न है कि करणलब्धि की उत्पत्ति-प्राप्ति पुरुषार्थ करने से होती है या अपने समय पर होती है? काललब्धि आने पर होती है या पुरुषार्थ से होती है?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! दोनों ही बाते हैं एक साथ। जो पुरुषार्थ होता है, तो पुरुषार्थपूर्वक ही मोक्षमार्ग है सारा। ये मोक्षमार्ग की ओर बढ़ रहा है और मोक्षमार्ग की इसे प्राप्ति होनेवाली है करणलब्धि के बाद, आत्मानुभूति और सम्यग्दर्शन होने पर। इसलिए पुरुषार्थपूर्वक ही करणलब्धि होती है। और पुरुषार्थ वो पुण्य और पाप से भिन्न जब अपने ज्ञायक के स्वरूप की पहिचान होती है, उसके निर्णयपूर्वक और उसकी (जब) अत्यधिक महिमा वर्तती है, तब जीव करणलब्धि में पदार्पण करता है। और करणलब्धि हो जाने पर निश्चितरूप में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। लेकिन वो पुरुषार्थपूर्वक होती है, पर इतना नक्की है कि वो जिस समय होना होता है, उसी समय होती है। उसका नाम होनहार और काललब्धि (है)।

माने काललब्धि वास्तव में कोई चीज नहीं है। पर जिस समय होना है कार्य को, वो तो कार्य (है) और जिस समय हुआ उसका नाम काललब्धि (है)। तो काललब्धि से पहले नहीं होता लेकिन पुरुषार्थ और काललब्धि का संवाय है। दोनों का एकसाथ आना वो सदैव बनता है, हमेशा ही। इसलिए कोई काललब्धि के भरोसे रहे और पुरुषार्थ न करे तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा। जिस समय जिस क्रम में सम्यग्दर्शन प्रगट होना है उसी समय प्रगट होगा - ऐसा जानकर जो पुरुषार्थ छोड़ दे, तो भी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। पाँच संवाय बताए न, तो उसमें दोनों आते हैं।

असल में तो आत्मा के अनंत गुणों की जो अनंत पर्यायें होती हैं प्रतिसमय, तो वो सब पुरुषार्थपूर्वक ही होती हैं। आत्मा में (एक) वीर्य नाम का गुण (है) तो उसकी पर्याय प्रतिसमय चलती है। वो क्षयोपशमरूप होता है। जैसे ज्ञान क्षयोपशमरूप होता है, उसी तरह वह भी क्षयोपशमरूप माने विकासरूप होता है। तो उसकी पर्याय हर समय चलती है और उसकी पर्याय अनंत गुणों की पर्यायों में निमित्त होती है। इसलिए हर कार्य में (माने) मिथ्यादर्शन (का) कार्य भी पुरुषार्थपूर्वक ही होता है, वो मिथ्या पुरुषार्थ (है)। और सम्यग्दर्शन का कार्य एकमात्र, चिन्मात्र ज्ञायक मैं हूँ - ऐसा जो निश्चय करे तो उसका जो उपयोग है, वो ज्ञायक के चिंतन में चिन्मात्र-चैतन्य के चिंतन में तल्लीन होता है। उस समय है (तो) विकल्पात्मक दशा। ज्ञान के विकल्प हैं सारे करणलब्धि में (और) उसके साथ राग का चलता है। क्योंकि अभी अनुभूति नहीं हुई और ज्ञान की

1 करणलब्धि की उत्पत्ति-प्राप्ति पुरुषार्थ करने से होती है या अपने समय पर होती है? - 0.15 Mins

भी विकल्पदशा है (लेकिन) वो आत्मा का स्वरूप नहीं है। विचार दशा माने चिंतन की दशा, तो वो आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसलिए उसके फल में राग पैदा होता है। और जिस समय अनुभूति होती है तो उस समय संवर-निर्जरा प्रगट होते हैं। उसमें राग का जन्म (होता है)। राग का जन्म माने रागरूप अनुभूति नहीं होती (है)। राग वहाँ रहता है लेकिन राग से भिन्न अपने आप को जाना, तो केवल ज्ञायक चिन्मात्र का ही अनुभव होता है। राग का अनुभव वहाँ पर नहीं होता। इसलिए संवर और निर्जरा वो दोनों एकसाथ प्रगट होते हैं (अर्थात्) मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

जिसने काललब्धि को जाना कि समय पर ही होगा कार्य - जिसे क्रमबद्ध कहते हैं न अपन, वही अर्थ है कि अपने समय पर ही होगा.... तो वो इसलिए कहा है कि समय पर होगा माने किसी अन्य के योग से, अन्य के सहयोग से नहीं होगा - उसका अर्थ ये। इसलिए दो बातें कही जाती हैं सम्यग्दर्शन के संबंध में। एक तो (ये कि) सम्यग्दर्शन सहज-साध्य है। दूसरा कहा जाता है (कि) सम्यग्दर्शन पुरुषार्थ-साध्य है। सहज साध्य है माने बिना किसी की सहायता और बिना किसी की मदद के, बिना किसी के प्रभाव के होता है। और पुरुषार्थपूर्वक होता है माने आत्मा जब ज्ञायक का निर्णय कर लेता है, तो उस उपयोग की चिंतनधारा (जो है, वो) उसमें तल्लीन होकर उस समय चलती है। तल्लीन होकर माने उसे विषय बनाकर। उसमें तल्लीन माने अनुभूति नहीं लेकिन उसको विषय बनाकर (अर्थात्) एकमात्र ज्ञायक, एकमात्र चिन्मात्रतत्त्व मैं हूँ - इसप्रकार विकल्पदशा वर्तती है। और जब ज्ञायक की अनुभूति होती है तो एकमात्र ज्ञायक और चिन्मात्र मैं हूँ - इसतरह का विकल्प वहाँ नहीं होता (है)। बल्कि चिन्मात्र हूँ - ऐसा जानकर उसका जैसा स्वरूप निर्णय किया है चैतन्य का, उसमें तदाकार हो जाती है पर्याय। चिन्मात्र हूँ - ऐसा विकल्प भी वहाँ पर नहीं रहता है। जैसी वस्तु है ठीक वैसी वहाँ पर परिणति स्वीकार करके और उसमें निमग्न हो जाती है। तो पुरुषार्थ तो प्रतिसमय चलता ही है। इधर पुरुषार्थ चलता है और इधर उसी का नाम काललब्धि है। जो कार्य हो रहा है, उसका नाम काललब्धि (कि) अपने समय पर हो रहा है।

मुमुक्षुः- तो पुरुषार्थ करे तो ऐसे होता है कि आलस नहीं होता है और ...

पूज्य बाबूजीः- नहीं! पुरुषार्थ करे माने काल के भरोसे न रहे। काल के भरोसे न रहे कि जब होना होगा तब होगा। तो इसका अर्थ ये हुआ कि मुझे क्या करना है? जब होना होगा तब होगा - इसमें प्रायः पुरुषार्थ का अभाव माना जाता है। जब (कि) असलियत ये है कि इसको जान लेने पर सच्चा पुरुषार्थ जागृत होता है। काललब्धि माने जिस समय कार्य होना है उस समय ही सम्यग्दर्शन होगा - ऐसा जिसने जाना (तो उसको) विकारी पर्यायों की बात तो दूर रही लेकिन सम्यग्दर्शन का विकल्प भी टूट जाता है। सम्यग्दर्शन होगा, ये विकल्प भी टूट जाता है क्योंकि 'मैं तो ज्ञायक हूँ' - इस धुन में वो लग गया है। तो इसलिए सम्यग्दर्शन को भी वो भूल जाता है उस

समय। सम्यग्दर्शन को न भूले (और) बार-बार उसकी याद आती रहे तो ये करणलब्धि ही नहीं होगी। वो प्रगट ही नहीं होगी। इसलिए वो सब, पर्यायमात्र सब भुला दी जाती हैं।

होना सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन की पर्याय को भुलावे तो सम्यग्दर्शन आता है, सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन को याद करे तो वो उतना ही दूर जाता है। उसका कारण है कि मेरा जो स्वामी है उसको तो भूल गया और मुझे तू याद करता है। तो मैं तेरे पास कैसे आ सकता हूँ? उसको भूल गया तू जो सर्वोच्च है, उसको तो तू भूल गया। और हम तो उसकी केवल पूजा करते हैं, उपासना करते हैं। तो उसको तो याद करता है। तो पुजारी को याद करता है (और) भगवान को भूल जाता है। तो कैसे होगा? नहीं होगा। तो काललब्धि की तरफ से विमुख हो जाता है वो, उस समय। बल्कि पुरुषार्थ की ओर से (और) सम्यग्दर्शन (की) पर्याय जो प्राप्त होना है, आत्मानुभूति जो प्रगट होना है उनकी भी वहाँ बिल्कुल याद नहीं आती (है)। उनकी याद आ जाए तो करणलब्धि नहीं होगी। हाँ! सीधा एकमात्र उपयोग का विषय, श्रुतज्ञान का विषय शुद्धात्मा होता है।

मुमुक्षुः- सीधा एक उपयोग का विषय, श्रुतज्ञान का विषय एक शुद्धात्मा होता है।

पूज्य बाबूजीः- शुद्धात्मा होता है (और) उसी का चिंतन चलता है। पहले अनेक गुणों से उसकी महिमा आयी न! अब उसकी महिमा आने के बाद एकमात्र सर्वोच्च तत्त्व वही है अनंत गुणात्मक, तो उसी का चिंतन चलता है। क्योंकि इन सबका काल (तो) अंतर्मुहूर्त है। करणलब्धि का, प्रयोग्यलब्धि का और सारी लब्धियों का मिलकर अंतर्मुहूर्त काल है। (इसलिए) मध्यम अंतर्मुहूर्त में ये सारा काम हो जाता है और सम्यग्दर्शन निश्चितरूप में प्रगट होता है, पदार्पण करता है वो।

मुमुक्षुः- सोगानी जी कहते थे - मोक्ष होगा तब होगा।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! होगा तब होगा। लेकिन उसमें मुख्य बात ये है कि मेरा नहीं होगा। होगा तो होगा; ये तो मानता हूँ कि मोक्ष है लेकिन मेरा नहीं है। मोक्ष मुझे नहीं होता है - ये आवश्यक है। (जब) मुझे मोक्ष नहीं होता है तो मैं मोक्ष को याद क्यों करूँ? क्योंकि जो मुक्त है उसका मोक्ष कैसे होगा? सदैव-त्रिकाल जो मुक्त है, उसका मोक्ष नहीं होगा। इसलिए दोनों (काललब्धि और पुरुषार्थ) साथ हैं। काललब्धि को अकेले एकांत (से) स्वीकार करे तो उसमें प्रमादी होता है और अकेले पुरुषार्थ (को) स्वीकार करे तो जल्दी करता है।

माने उसमें क्या होता है कि काललब्धि को स्वीकार न करे और केवल पुरुषार्थ को (ही) स्वीकार करे, तो उसमें बार-बार ये होता है कि - इतना पुरुषार्थ कर रहा हूँ अभी तक भी क्यों नहीं हो रहा है? अभी क्यों नहीं हो रहा है? इसका अर्थ ये है कि उसको निर्णय नहीं हुआ और उसका ज्ञान स्वच्छ नहीं है। अगर ज्ञान स्वच्छ और निर्णायक हो तो ये प्रश्न बीच में पैदा नहीं होता कि पुरुषार्थ मेरा चल रहा है बराबर (कि नहीं)? पुरुषार्थ जिस गति से चल रहा है उसी गति से

काम होना है, तो वो अपने समय पर होना है। अगर पुरुषार्थ की गति तीव्र हो तो (काम) जल्दी हो जाता है। (यदि) पुरुषार्थ की गति मंद हो तो उसमें थोड़ा समय लगता है। तो वही, उसी को काललब्धि कहते हैं कि जिस समय होना है उस समय होगा (और) पुरुषार्थ की धारा भी उसी गती से चलेगी, दोनों। ये क्या और क्यों का प्रश्न उसमें पैदा नहीं होता है।

अकेले पुरुषार्थ को स्वीकार करे, काललब्धि (को) स्वीकार न करे तो बार-बार विकल्प पैदा होंगे कि और क्या पुरुषार्थ करना है? ज्ञायक का, ज्ञायक का, ज्ञायक का ही चिंतन एकदम एकसाथ कर रहा हूँ, पर फिर भी क्यों नहीं हो रहा है? तो ज्ञान स्वच्छ नहीं है उसका। ज्ञान जो है अब भी गंदा है, माने निर्णायक नहीं है। निर्णायक ज्ञान में एक भी प्रश्न पैदा नहीं होता है। माने उसको तीनलोक और तीनकाल का और अपनी आत्मा का (और) आत्मा की त्रिकाल पर्यायों का, सबका सर्व-समाधान उसमें वर्तता है - उसको निर्णय कहते हैं। उसमें तीनलोक संबंधी एक भी प्रश्न बाकी नहीं रहता, प्रयोजनभूत प्रश्न। सबका उत्तर उसके पास रहता है, ज्ञान के पास। इसलिए ज्ञान को सर्व-समाधानकारी कहते हैं।

मुमुक्षुः- समाधान वर्तता है, ज्ञान नहीं?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! समाधान वर्तता है। समाधान वर्तता है इसलिए कोई प्रश्न पैदा नहीं होता (है) - न काललब्धि के संबंध में और न पुरुषार्थ के संबंध में।

मुमुक्षुः- माने एक ही पर्याय के दो पहेलू हैं। पुरुषार्थ, (अगर) इस तरफ से देखें (तो और) काललब्धि (अगर) उस तरफ से देखें (तो)।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! एक ही पर्याय के दो पहलू हैं और उधर काल की तरफ से देखें, समय की माने काल द्रव्य की ओर से देखें, उसकी (काल द्रव्य की) पर्याय की ओर से देखें, तो जिस समय वो होना है उस समय हो जाता है। बस! उसी गति से पुरुषार्थ चलता है। इसलिए क्यों और क्या का प्रश्न उसमें पैदा नहीं होता क्योंकि उसमें तो आकुलता होती है। जैसे अपन कहते हैं न (कि) हम सब समझ भी गए हैं, हमको आनंद भी होता है लेकिन फिर भी काम क्यों नहीं होता? तो ये अपने आप के साथ cheating (बेईमानी) है क्योंकि हम पुरुषार्थ करें और न हो - ऐसा तो अनादि-अनंतकाल में एक भी उदाहरण नहीं है। क्योंकि ये पुरुषार्थ सार्थक होता है, productive (उत्पादक) होता है ये क्योंकि इसका फल अवश्य तत्काल होता है। तो हमने अगर वास्तविक पुरुषार्थ किया होता तो तत्काल उसका फल आता (है)। लेकिन वो पुरुषार्थ करते नहीं हैं हम। हम केवल पुरुषार्थ का और आनंद का विकल्प करते हैं। उसका विकल्प करते हैं। आनंद नहीं आता (बल्कि) आनंद का विकल्प आता है कि आनंद आया - ऐसा विकल्प। पर आनंद नहीं आता, इसलिए कृत्रिम झूठी है वो बात। वरना ये प्रश्न पैदा ही नहीं होता है न। जिसने निर्णय किया है और सर्वसमाधानकारी ज्ञान जिसका हो गया है तो उसको एक भी प्रश्न नहीं होता, एक भी प्रश्न।

मुमुक्षुः- माने अनुभव के पहले समाधानकारी ..

पूज्य बाबूजी:- माने उसको केवलज्ञान जैसे समाधान है उस श्रुतज्ञान को। सम्यग्दर्शन होने से पहले.....

मुमुक्षु:- पहले? वही condition (स्थिति) है कि ज्ञान (में) इतना समाधान हो गया है ज्ञान में कि निर्णय इतना अडिग बनकर रह गया है....

पूज्य बाबूजी:- कोई प्रश्न बाकी नहीं है।

मुमुक्षु:- जैसे केवलज्ञान में प्रश्न नहीं उठता, उसी माफिक....

पूज्य बाबूजी:- यहाँ भी प्रश्न नहीं उठता है प्रयोजनभूत में।

मुमुक्षु:- फिर निर्णय के बाद जब महिमा आती है तब गाड़ी सीधी तरह से चलती है।

पूज्य बाबूजी:- निर्णय के बाद महिमा..... निर्णय भी महिमापूर्वक ही होता है। क्योंकि निर्णय क्यों करेगा उसका? अगर महिमा नहीं होगी तो उसका निर्णय करने की कहाँ आवश्यकता है? इसलिए पक्का निर्णय होता है।

मुमुक्षु:- और पहले जो आपने बोला कि ज्ञान का धर्म हेय-उपादेय है वो पहली बात है।

पूज्य बाबूजी:- वो तो पहला है ही सही, उसका धर्म ही है वो तो। वो तो उसका धर्म ही है। इसलिए अज्ञान दशा में तो वो जो उपादेय नहीं है, उसको उपादेय जानता है। और ज्ञानदशा होने पर सच्चे उपादेय का पता लग जाता है और उसकी महिमा का पता लग जाता है, तो ज्ञानधारा उस तरफ चल पड़ती है। बेरोक चल पड़ती है। उसको रोकनेवाला जगत में कोई तूफान नहीं है, ज्ञानधारा को रोकनेवाला।

मुमुक्षु:- जो आत्मा की महिमा करती है उस ज्ञानधारा को रोकनेवाला कोई तूफान नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- कोई तूफान जगत में नहीं है, किसी की ताकत नहीं है। तीन लोक और तीन काल में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है कि जो उसको रोक सके। कर्म भी सब सीधे हो जाते हैं। कहलाते हैं घातिया, घातिया माने घात करनेवाला - ये सब घातिया कहलाते हैं लेकिन सब सीधे हो जाते हैं। एक क्षण में सीधा कर लेता है ज्ञान कि तुम कौन होते हो? तुम मेरे लगते कौन हो जो मैं तुम्हारे अनुसार चलूँ? इसलिए उदयानुसार प्रवृत्ति नहीं होती उसकी, अज्ञानदशा में। ये तो अज्ञानदशा की बात है। अब (उसको) अज्ञान कहने में ही शर्म आती है अपने को। इसलिए सविकल्प स्वसंवेदन कहते हैं उसको। करणलब्धि की जो दशा है वो ज्ञान की उसको सविकल्प स्वसंवेदन कहते हैं। अब अज्ञान कहने में अपने को शर्म आती है कि ये तो सिंहासन पर जा रहा है। इसका (तो) राज्याभिषेक होनेवाला है। तो इसको (अज्ञान) कैसे कहें हम? है तो राजकुमार लेकिन राजा बननेवाला है कल ही। तो अब आज से ही राजा कहने लगते हैं।

मुमुक्षु:- प्रतीति में फर्क नहीं है, आनंद का वेदन नहीं है-मात्र इतना ही है न बाबूजी, सविकल्प स्वसंवेदन में?

पूज्य बाबूजी:- सविकल्प आनंद है (मगर) वो विषय जैसा नहीं है, विषय जैसा नहीं है। आनंद भी सविकल्प है पर ये लौकिक विषयों जैसा नहीं। हाँ! वो ज्ञायक की ओर उसका मुँह है, उपयोग का। इसलिए उस ज्ञायक के चिंतवन से जो आनंद होना चाहिए, वैसा आनंद होता (है) चिंतन से। हाँ! तब अनुभूति होती है। पूरी परीक्षा के बाद अनुभूति होती है, यूँ समझ लेना चाहिए; कि अब ये इस योग्य है कि इसे सम्यग्दर्शन दे दिया जाए।

मुमुक्षु:- अब इसके योग्य है कि अब इसे सम्यग्दर्शन दे दिया जाए।

पूज्य बाबूजी:- दे दिया जाए।

मुमुक्षु:- Eligiblity (योग्यता)।

पूज्य बाबूजी:- हाँ!

मुमुक्षु:-[2] एक प्रश्न है, अध्यात्मनय किसे कहते हैं?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अध्यात्मनय माने जिसमें परवस्तु विषय नहीं होती - वो अध्यात्मनय; माने जो आत्मा में ही लगते हैं। जैसे यह राग-द्वेष आत्मा के हैं - यह असद्भूत व्यवहार (है); और ज्ञान आत्मा का है यह सद्भूत व्यवहार। इसतरह से अध्यात्मनय में ये होता है; और आगम के जो नय होते हैं वो परवस्तु से चलते हैं कि परवस्तु मेरी है - ये व्यवहार, ऐसा। वो भी जब तत्त्व निर्णय होता हो, तब; यूँ नहीं। कोई यूँ ही कह दे कि ये व्यवहारनय है, ये निश्चयनय है - ऐसा नहीं। तत्त्व का निर्णय हो गया हो, तब वो ऐसा बोले कि ये मेरा मकान है, ये मेरा घर है, ये मेरा परिवार है तो वो व्यवहार - ऐसा।

मुमुक्षु:- माने आत्मा की ओर से चले तो अध्यात्मनय और पर की ओर से चले तो आगम प्रमाणनय?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! आगम की ओर चले तो फिर परपदार्थ में भी निश्चय-व्यवहार लगता है। जैसे राग का कर्ता आत्मा है - ये हुआ निश्चय; और राग का कर्ता कर्म है - ये व्यवहार हो गया।

अब अध्यात्म में ये नहीं होता है। अध्यात्म में तो आत्मा रागी है - ये असद्भूत व्यवहार (है) क्योंकि राग आत्मा में नहीं है। जैसे परपदार्थ आत्मा में नहीं हैं इस तरह राग आत्मा में नहीं है, इसलिए उसको असद्भूत कहते हैं। और वहाँ आगम में उसको सद्भूत कहेंगे।

मुमुक्षु:-[3] और एक प्रश्न अंत में जानने का है कि - केवली के समुद्घात के समय आत्मप्रदेश तीनों लोक में फैल जाते हैं। क्या उन प्रदेशों का स्पर्श सभी जीवों को होता है? माने मूल में समुद्घात कैसे होता है? - वो प्रश्न का मध्यबिन्दु लगता है।

पूज्य बाबूजी:- असल में तो क्या है कि जब केवली भगवान समुद्घात करते हैं तो उसमें चार विकल्प होते हैं, चार भेद होते हैं। और वो उसका जो अंतिम भेद है लोकपूरण, उसमें आत्मा

2 आगमनय और अध्यात्मनय की चर्चा। - 19.52 Mins

3 केवली समुद्घात की चर्चा। - 21.49 Mins

के प्रदेश सारे लोकाकाश में फैल जाते हैं। अब उसमें जितने भी और दूसरे जीव हैं तो वो सब आ जायेंगे उसमें क्योंकि प्रदेशों में कोई ऐसा संकोच नहीं होता है कि वो किसी के भीतर प्रवेश न कर सकें। इसलिए सब उसमें आ जाते हैं पर उससे क्या साध्य है? उससे अपने को क्या लेना-देना है? केवली भगवान के प्रदेश हमारे भीतर आ गए तो हमको कोई केवलज्ञान नहीं हो जाएगा या कोई श्रुतज्ञान नहीं हो जाएगा, वास्तविक।

तो उसके चार भेद हैं। पहला है दंड, प्रतर, कपाट और लोकपूरण - ये चार भेद होते हैं समुद्घात के। और वो उस समय होता है कि जब आयु कर्म तो निकट होता है और बाकी जो तीन अघातिया कर्म हैं, उनकी स्थिति ज्यादा होती है। जब आयु कर्म तो पूरा होने को होता है माने आयु तो पूरी होने की होती है, मोक्ष जाने का समय....

मुमुक्षु:- समय हो चुका (है)।

पूज्य बाबूजी:- समय हो चुका नहीं (मगर) हो जाएगा जल्दी। तो आयु तो कहेगी चलो और तीन कर्म अभी बाकी हैं (क्योंकि) उनकी स्थिति अभी लंबी है - नाम, गोत्र और वेदनीय। इन तीन कर्म (की) स्थिति होती है लंबी। तो उन तीन कर्मों की स्थिति को आयु कर्म के बराबर करने के लिए केवली भगवान को ये सहज (में) समुद्घात होता है। करते हैं - ऐसा नहीं (बल्कि) स्वाभाविक होता है। तो उसमें क्या होता है कि उन तीन कर्मों की स्थिति आयु कर्म के बराबर हो जाती है। और तब आयु कर्म पूरा होते ही भगवान अयोगी बनकर मोक्ष चले जाते हैं।

जैसे कपड़ा है न! तो कपड़ा धोया और हमने निचोड़कर रख दिया। तो उसको सूखने में बहुत टाइम लगेगा। दो दिन लग जायें (या) चार दिन लग जायें। और उसको फैलाकर हमने सुखा दिया तो वो बहुत जल्दी सूख जाता है। इसतरह से वो प्रदेश फैल गए तो उससे कर्म की स्थिति बराबर हो जाती है, आयु कर्म के बराबर। क्योंकि चारों (कर्मों) की स्थिति बराबर हो तब मोक्ष जाने का नियम है। वरना कर्म सहित ही जायेंगे फिर, तो वो तो संभव नहीं है।

मुमुक्षु:-[4] दूसरी गाथा में जैसे ज्ञान की पर्याय एकत्वपूर्वक जानती (हुई) परिणमती है - युगपद्। उसका थोड़ा सा स्पष्टीकरण (कीजिए)।

पूज्य बाबूजी:- वो तो 'समय' शब्द की व्याख्या आई न कि जो जानता है और गमन करता है - ऐसा। माने परिणमन करता है - ऐसी व्याख्या आयी न 'समय' की, तो उसको घटाया इसमें। जो जानता भी है और परिणमन (भी) करता है। परिणमन करता है अर्थात् जाननेरूप परिणति होती है - ये परिणमन। चारित्र की परिणति होती है। जानना-परिणमन माने सबका परिणमन होता है; और जानना माने जानता भी है क्योंकि अन्य द्रव्यों से इसमें विशेषता है न आत्मा में, कि ये जानता है और परिणमन भी करता है। दूसरे द्रव्य जानते नहीं हैं लेकिन परिणमन करते हैं। तो इसलिए दोनों इसमें घटाना पड़ेगा न कि जानता है, स्व को जानता है, पर को जानता है, सारे

4 समयसार दूसरी गाथा की चर्चा। - 25.11 Mins

लोकलोक को जानता है और परिणमन भी करता है। माने मिथ्यादृष्टि हो तो वो मिथ्यात्वरूप परिणमन करता है। सम्यग्दृष्टि हो तो सम्यक्त्वरूप, सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन करता है - इसतरह से घटाया।

एकत्वपूर्वक, ये तो स्वसमय की बात है न! इसलिए यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात लेना। स्वसमय वह है कि जो एकत्वपूर्वक जानता है, परिणमन करता हुआ। तो एकत्वपूर्वक शुद्धात्मा को जानता भी है कि ये मैं हूँ और परिणमन करता है माने तद्रूप परिणमन करता है। मैं ज्ञायक, मैं ज्ञायक, मैं ज्ञायक - उसका नाम परिणति। तो वो भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तीनों उसमें आ जाते हैं परिणति में। और सभी गुणों का परिणमन आ जाता है परिणमन करने में।

मुमुक्षुः- तो एकत्वपूर्वक एक ही समय में जानना और परिणमन होना।

पूज्य बाबूजीः- हाँ होगा न! क्यों नहीं होगा? जाना, तो जानना भी तो परिणमन ही है न! जानना उपयोग जो है, उसको परिणति भी कहते हैं। उपयोगरूप परिणति - ऐसा मोक्षशास्त्र में आता है न! उपयोगरूप परिणति पर-घर जावे और वो निर्दोष बनकर जावे तो उसमें कोई दोष नहीं है। माने राग-द्वेष लेकर न जावे तो उसमें कोई दोष (नहीं है)। ऐसे टोडरमल जी ने सातवें अध्याय में बताया न - उपयोगरूप परिणति। वहाँ परिणति नाम दिया है उसको।

तो जानना, परिणमन करना - ये दोनों समय की ओर से सिद्ध किए हैं दूसरी गाथा में। उसकी ओर से सिद्ध किए हैं। 'अय' धातु है न। 'सम' 'अय' कि एक ही साथ। 'सम' माने एक ही साथ जो जानता भी है और परिणमन भी करता है। क्योंकि 'जानता है', इसमें परिणमन शामिल है। लेकिन सामान्यरूप से देखें तो जानता है, बस। उसमें परिणमन नहीं आता एक तरह से। तो वो जानता भी है और परिणमन भी करता है अर्थात् प्रति समय बदलता भी है। इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सारे गुणों का परिणमन ये सब होता है।

मुमुक्षुः- तो प्रभु! बिना एकत्व जानना नहीं हो सकता क्या?

पूज्य बाबूजीः- बिना एकत्व जानना नहीं होता है। एकत्वपूर्वक (ही) जाने। ये ही मैं हूँ - इसका नाम एकत्व।

मुमुक्षुः- तो जानने में भी दोष लगने की गुंजाईश है क्या?

पूज्य बाबूजीः- नहीं! स्वसमय है न! स्वसमय की चर्चा है इसलिए बिल्कुल निर्दोष है। बिल्कुल निर्दोष है। बिल्कुल निर्दोष केवलज्ञान की तरह। एकत्वपूर्वक जानता है। एकत्वपूर्वक ही भगवान जानते हैं।

मुमुक्षुः- पर अज्ञान से कोई ऐसा सोचे कि - भाई! मैं पर को जानूँ और उसमें एकत्व तो होता नहीं है - (ऐसा) कहा।

पूज्य बाबूजीः- नहीं वो तो परसमय है न! तो वो परसमय है इसलिए उसमें तो अनेक दोष हैं। पर वहाँ भी जानना (और) परिणमन करना रुकता नहीं है। माने परिणमन करता है न

मिथ्यात्वरूप, अज्ञानरूप, मिथ्याचारित्ररूप, अनेकरूप परिणमन करता है और जानता भी है, लेकिन सारा अज्ञान है परसमय में। सारा अज्ञान है क्योंकि वो बताया न पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है। वो भी थोड़ी गहरी बात है कि पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है। तो वो परसमय है - ऐसा बताया न!

मुमुक्षुः- तो ये राग के कर्म के (उदय में) उसमें स्थित होता है, ये किस तरह होता है?

पूज्य बाबूजीः- उसका अर्थ ये कि वो ये मानता है कि ये जो कर्म हैं, इनके उदय में ये सारा काम मेरे में हो रहा है। तो वो कहाँ रहता है सदा? कि वो कर्म के उदय में रहता है। ये पूछा जाए कि अज्ञानी हमेशा कहाँ रहता है? उसका घर कौनसा है? कि वो पुद्गल कर्म के प्रदेशों में रहता है। अर्थात् पुद्गल कर्म के उदयानुसार ही उसकी वृत्ती होती है क्योंकि वो ये मानता है। वो मानता है इसलिए परिणति भी इसी (तरह) की होती है। वो जानता है इसलिए परिणति भी इसी प्रकार की होती है - मिथ्यात्वरूप। और वो जानना जब बंद हो जाए अर्थात् कर्म मेरा कुछ नहीं लगता (ऐसा माने) और कर्म के अनुसार परिणमन करना वो मेरे लिए बिल्कुल अयोग्य, अनुचित कार्य है; और आवश्यक नहीं है कि मैं कर्म के उदय के अनुसार परिणमन करूँ - ऐसा जब जानता है तब वो कर्म से उसका संबंध, जो प्रत्यय संबंध बनाया था कि कर्मोदय के अनुसार ये सब करना होगा - ऐसा माना था.... तो कर्मोदय के अनुसार सब करना होगा - ऐसा जब माने, तो जैसा कर्म का उदय होगा उसी के अनुसार परिणति होगी।

लोक में जैसे हमको ये कह दिया जाए......कोई सज्जन व्यक्ति हो और उसके लिए ये कह दिया जाए कि ये व्यक्ति बहुत दुष्ट है, इससे बचकर रहना। तो अपने को जब कभी वो मिलेगा, तभी दूर से देखते ही (अपने को) भय पैदा होगा क्योंकि अपन ने मान लिया (है) न कि ये व्यक्ति दुष्ट है। है वो सत्चरित्र लेकिन ये मान लिया कि ये दुष्ट है व्यक्ति, उसके कहने के अनुसार। तो जब भी वो हमें दूर से भी दिखायी देगा तो हम बिल्कुल कटकर (चलेंगे)। वो सड़क के एक किनारे होगा तो हम दूसरे किनारे से निकलेंगे। अथवा दिशा बदल लेंगे अथवा वापस हो जायेंगे, कुछ भी करेंगे। लेकिन ऐसा माना है इसलिए तत्काल भय की परिणति होगी। इसको कर्म के प्रदेशों की परिणति मानेंगे.... अपनी गाथा में जो वो पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है।

जैसे जो व्यक्ति मदिरा पीता है वो हमेशा कहाँ रहता है? कि वो मदिरा की खिड़की पर। अगर वो घर भी आता है, घर आकर सोता भी है लेकिन उसके घरवालों से पूछा जाए कि ये कहाँ रहता है? (तो बोलें कि) ये कहाँ? ये घर में तो दिखाई देता है खाली, ये तो रहता वहाँ खिड़की पर है। इसी तरह अज्ञानी हमेशा कर्मोदय में रहता है क्योंकि उसने माना है ऐसा। जिस दिन, जिस क्षण ये मानना छूट जाएगा उसी समय उदयानुसार प्रवृत्ति बंद होकर और उपयोग सवात्मा-शुद्धात्मा की ओर लग जाएगा। उसके चिंतन में लग जाएगा।

मुमुक्षुः- जिस दिन ये मानना छूट जाएगा....

पूज्य बाबूजी:- जिस क्षण, जिस क्षण ये मानना छोड़ देगा तो उसी क्षण उसकी स्वतंत्र परिणति होगी और वो शुद्धात्मा का चिंतन करने लगेगा। गुरु का उपेदश मिल ही जाएगा।

मुमुक्षु:- स्व-पर का विभाग बराबर कर लिया।

पूज्य बाबूजी:- बस! सबसे पहली बात ये कि उसने माना है ऐसा, उसने जाना है ऐसा, सबसे पहली बात है ये। और जिस दिन मानना और जानना छोड़ देगा उसी समय से विपरीत दिशा शुद्धात्मा की ओर हो जाएगी, कर्म से हटकर। पर ये माने पहले कि कर्म मेरा कुछ नहीं लगता और उसका कोई योग(दान) मेरे राग-द्वेष में नहीं है। बिल्कुल वो करता तो नहीं पर उसका सहयोग और प्रभाव भी नहीं है मेरे परिणमन में, मेरे राग-द्वेष के परिणमन में। इस तरह राग-द्वेष के परिणमन में मैं स्वतंत्र हूँ। लेकिन.... यहाँ भी full stop नहीं हुआ, पूर्ण विराम नहीं हुआ। मैं जब राग-द्वेष करता हूँ तब कर्म का उदय रहता है। लेकिन कर्म के उदयानुसार राग-द्वेष करना पड़े - ऐसा बिल्कुल नहीं है। मैं जब राग-द्वेष करता हूँ तो कर्म का उदय रहता है। जैसे जब सूर्य का उदय रहता है तो उल्लू आँख बंद करता है। तो सूरज उल्लू की आँख बंद नहीं करता लेकिन सूरज का उदय होते ही उल्लू आँख बंद कर लेता है। यहाँ शुद्धात्मा का सूर्य तप रहा है और अज्ञानी उल्लू की आँख बंद है।

तो जिस समय ये जान ले, माने सबसे पहले यहाँ से शुरू होगा। उसको हटाने से शुरू नहीं होगा लेकिन यहाँ से प्रारंभ होगा कि सचमुच कर्म का और मेरा रंचमात्र भी संबंध नहीं है। उसका उदय अलग चीज और मेरे परिणाम बिल्कुल भिन्न-अलग। इनमें मेरी स्वाधीनता है कि मैं राग करूँ अथवा न करूँ, मैं अज्ञानरूप परिणत होऊँ अथवा न होऊँ, मैं मिथ्यादर्शनरूप परिणति करूँ अथवा न करूँ - ये मेरी स्वाधीनता है। इसमें कर्म का कोई हिस्सा बिल्कुल नहीं है। यहाँ से शुरू करे तब फिर उससे जो कृत्रिम संबंध बनाया था ये कर्ता-कर्म का कि उधर कर्म का उदय और इधर मेरा मिथ्यात्व और राग-द्वेष, ये संबंध बनाया था न कर्ता-कर्म का - वो संबंध टूट जाता है।

मुमुक्षु:- जानना और परिणमना शब्द लिया, (तो) वो जाननभावरूप process (प्रक्रिया) में जाननभावरूप और परिणमना होता है?

पूज्य बाबूजी:- जानना माने सामान्य जानना, आत्मा को जानना। स्वसमय की बात है न! तो उसमें आत्मा को जानना और परिणमन करना। परिणमन करना माने एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस तरह (से) परिणमन। ये परिणमन करना, तो ये तो सब में होगा। सम्यग्दर्शन में भी होगा, सम्यग्ज्ञान में भी होगा, सम्यक्चारित्र में भी होगा, सारे गुणों में होगा परिणमन।

मुमुक्षु:- वो एकत्वपूर्वक है। लेकिन जानना और परिणमना जब लेते हैं (तो) खाली जानना और परिणमना, वो जाननभावरूप में लगा सकते हैं?

पूज्य बाबूजी:- जाननभावरूप वो जानना भी है और परिणमना भी है - दोनों हैं वो। वो दोनों हैं। वो जानना भी है सामान्यरूप में और परिणति भी है वो। तो उपयोग भी परिणति है और दूसरी भी परिणतियाँ हैं, अन्य भी परिणतियाँ हैं। स्वसमय में तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आता है न! और सम्यक्चारित्र का अंश आता है।

मुमुक्षु:-[5] बाबूजी! १९७६ के आत्मधर्म में आपका एक लेख है पूरा ज्ञानस्वभाव का, १९७६ का। इसमें बाबूजी! आपने लिखा है कि ज्ञेयाकार परिणति ज्ञान का विशेष भाव है और उसी ज्ञेयाकार परिणति में ज्ञानत्व का अन्वय उसका सामान्यभाव है।

पूज्य बाबूजी:- तो हो गया न! ज्ञेयाकार परिणति माने वही 'प्रतिभास'। तो वो तो विशेष है और वो जाननभाव भी है सारा की सारा, सबका सब - वो सामान्य हो गया है। पर्याय के ही सामान्य-विशेष हो गए।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह अद्‍भुत! वो उसको बोलते हैं ज्ञानत्व का अन्वय।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञानत्व का अन्वय।

मुमुक्षु:- अन्वय मतलब?

पूज्य बाबूजी:- अन्वय माने उसका जोड़रूप। माने एक के बाद एक जाननारूप चलना, जाननभावरूप प्रवाह – ऐसा; वो सामान्य।

मुमुक्षु:- वो पर्याय का सामान्य?

पूज्य बाबूजी:- सामान्य, पर्याय का सामान्य।

मुमुक्षु:- वो धारावाहिक है?

पूज्य बाबूजी:- धारावाहिक है माने टूटकर चलता है, एक-एक करके चलता है - सदृश। सदृश जो है वो आता है द्रव्य के लिए। ये तो है विसदृश। विसदृश माने बीच-बीच में एक पर्याय हुई, फिर उसका व्यय हुआ, फिर दूसरी पर्याय आई। इसलिए इसको व्यतिरेक कहते हैं। व्यतिरेक माने उत्पन्न होना और अभाव होना, उत्पन्न होना और अभाव होना; तो वो ज्ञान-सामान्य है। ज्ञान-सामान्य माने ये तो ज्ञान ही है सारा की सारा। वही जैसे अपन चर्चा करते आए हैं (कि) क्या हैं ये सारे के सारे प्रतिभास क्या हैं, जितने भी (जो) हो रहे हैं? ज्ञान ही हैं बस (और) क्या हैं? कुछ नहीं हैं। ज्ञान ही हैं बस - इन विकल्पों को भी तोड़कर जब ज्ञायक में जाता है तो निर्विकल्प हो जाता है। वो निर्विकल्प है।

मुमुक्षु:- माने एक ही ज्ञान की पर्याय का स्वरूप स्वच्छता भी है, ज्ञातृत्व भी है, एकत्व भी है। तो कितने-कितने ....

पूज्य बाबूजी:- एक ही पर्याय का नहीं हुआ ये सब। एकत्व तो अज्ञान में पुद्गल के साथ, कर्म के साथ एकत्व (है)।

5 आत्मधर्म १९७६ के लेख संबंधी प्रश्न। - 37.22 Mins

मुमुक्षु:- वो नहीं कह रहा मैं। मेरा प्रश्न अलग है कि - ज्ञान की पर्याय के स्वरूप से देखा जाए, तो ज्ञान की पर्याय का स्वरूप स्वच्छ भी है, जानना भी है, एकत्वरूप परिणमित भी होना, वह भी है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! बिल्कुल है! बिल्कुल है! निर्मल भी है, सब है। स्वच्छ भी है, निर्मल भी है। जानना भी है और एकत्वपूर्वक परिणमन करना भी है। एकत्वपूर्वक परिणमन करता है तभी तो आनंद का जन्म होता है।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! सही बात है। मात्र जानना उतना ही मर्यादित उसकी विशेषता नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- जानना सामान्य, जानना सामान्य – ऐसा; और वो विशेष। एकत्वपूर्वक जानना शुद्धात्मा को, वो विशेष हुआ।

मुमुक्षु:- तो एकत्व कैसे हो सकता है उसका?

पूज्य बाबूजी:- एकत्व माने ज्ञायक की महिमा।

मुमुक्षु:- इससे हो सकता है.... जुदा है।

पूज्य बाबूजी:- एकत्व दोनों से है न। इधर तो जगत से एकत्व है, कर्म से एकत्व है। कर्म से एकत्व है तो सारे जगत से एकत्व है। और रागादिक से एकत्व है और पर्याय मात्र से एकत्व है। और इधर जो है वो केवल शुद्धात्मा से एकत्व है।

मुमुक्षु:- माने अभेद से एकत्व है।

पूज्य बाबूजी:- अभेद से माने शुद्धात्मा से, शुद्धात्मा से एकत्व है - ऐसा।

तो एकत्व माने अभेद होना। उसके साथ अभेद होना एकत्वपूर्वक, माने यही मैं हूँ। ये मेरा है - ये नहीं (है) एकत्व। यही मैं हूँ - इसका नाम एकत्व (है), ऐसा।

मुमुक्षु:- और परिपूर्णपने एकत्व होता है।

पूज्य बाबूजी:- परिपूर्णपने। परिपूर्णपने एकत्व होता है और परिपूर्ण की ओर (ही) होता है। परिपूर्ण के प्रति होता है। परिपूर्ण के प्रति होता है। तो परिपूर्ण के प्रति होता है इसलिए एकत्व भी परिपूर्ण है क्योंकि वो अपने को परिपूर्ण जानता हुआ परिणमित होता है। परिपूर्ण जानता हुआ परिणमित होता है - ऐसा। तो वो जानना परिणमन करना दोनों आ गए न।

मुमुक्षु:- माने जिससे परिपूर्णता न हो उससे एकत्व ज्ञान की पर्याय नहीं कर सकती।

पूज्य बाबूजी:- नहीं करती। हाँ! एकत्व नहीं करती (उससे) जिसमें परिपूर्णता न हो....शक्ति तो है (एकत्व करने की) पर मिथ्यादर्शन में करती है। मिथ्यादर्शन में करती है।

मुमुक्षु:- माने इसका मतलब ये हो गया प्रभु कि वो भेद से एकत्व नहीं कर सकती।

पूज्य बाबूजी:- भेद में एकत्व है ही नहीं। जब वो अभेद मिल गया माने उन सबका समुदाय मिल गया, उन सबका एक कोष मिल गया तो वो एक से क्यों करेगा? और अंश में करके

उसे क्या मिलनेवाला है? भाई! वो विधान ऐसा है आत्मा का.... आत्मा के गुण यद्यपि न्यारे-न्यारे हैं, माने सबका स्वरूप न्यारा-न्यारा है। पर न्यारा-न्यारा (होने) पर भी उन सबमें एक ऐसा रूप है कि एक गुण में अनंत गुण का रूप रहता है। इस तरह वो सारे के सारे इस तरह संगठित हैं कि उनमें से किसी एक गुण को हम उपयोग के द्वारा आमंत्रित करना चाहें invite करना चाहें तो वो आएगा नहीं। बोलेगा कि मैं अकेला नहीं आता हूँ। मैं आऊँगा तो (यदि) सबको आमंत्रित करोगे तो आऊँगा। और सबको आमंत्रित करना माने एक शुद्धात्मा को आमंत्रित करना क्योंकि उसमें सब समाहित हो जाते हैं। उसमें सब समाहित हो जाते हैं। ऐसी सुंदर व्यवस्था है आत्मा की क्योंकि अकेला नहीं आता हूँ मैं। मैं तो सबसे बंधा हुआ हूँ। तुम मुझे तोड़ने की कोशिश करते हो, मेरे घर में फूट डालने की कोशिश करते हो, वो चलनेवाला नहीं है।

मुमुक्षु:- माने श्रद्धा गुण के अंदर सोचें तो......

पूज्य बाबूजी:- श्रद्धा गुण में तो सोचना नहीं होता है।

मुमुक्षु:- नहीं! (श्रद्धा गुण) के स्वरूप को सोचने की बात है। श्रद्धा गुण का स्वरूप अगर ज्ञान से सोचें तो श्रद्धा (गुण) के साथ अन्य गुणों के रूप से रूपित होती हुई श्रद्धा की पर्याय दिखती है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अन्य गुणों से नहीं। अन्य गुणों से समान्वित जो एकत्व है एक शुद्धात्मा, उन रूप (है), उस रूप। एक गुण रूप नहीं। इसलिए तो सातवीं गाथा में बताया न कि आत्मा (में) दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है। तो वो जो मिथ्यादर्शन था गुण के आश्रित होनेवाला और अज्ञान था गुणों के आश्रित होनेवाला, उन दोनों को तोड़ने के लिए है वो। इसलिए इतना इनकार किया आचार्य ने कि आत्मा (में) दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं। माने तू दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ही अटका हुआ था। अटका हुआ था अर्थात् तेरा चिंतन केवल दर्शन-ज्ञान-चारित्र को लेकर चलता था। मैं दर्शन स्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं चारित्र स्वरूप हूँ (बस) यही-यही तू करता था और ज्ञायक की ओर तेरी दृष्टि नहीं थी। इसलिए तू इसको बिल्कुल भूल (जा) एकदम कि मैं दर्शन भी नहीं हूँ, ज्ञान भी नहीं हूँ, चारित्र भी नहीं हूँ बल्कि मैं तो एकमात्र ज्ञायक हूँ। बस! तो उसका विस्मरण कर तू एक बार। बिल्कुल भूल जा। गुणों को बिल्कुल भूल जा, तो वो हो जाएगा।

मुमुक्षु:- माने कि गुणों के आश्रय से होनेवाला....

पूज्य बाबूजी:- मिथ्यादर्शन...हाँ! और गुणों के आश्रय से होनेवाला अज्ञान।

मुमुक्षु:- दोनों ही मिथ्याज्ञान हैं।

पूज्य बाबूजी:- दोनों ही मिथ्याज्ञान (हैं)।

मुमुक्षु:- तो गुण-भेद में रुकने वाले वहाँ से निकल जाती है।

पूज्य बाबूजी:- वहाँ से निकल जाती है।

मुमुक्षु:- एक तो पर्याय-भेद में अटकता है और आगे आकर गुण-भेद में अटकता है।

पूज्य बाबूजी:- आगे गुण-भेद में अटकता है।

मुमुक्षु:- उस ज्ञान की इस प्रकार की ताकत से और वो घर से निकल जाता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ निकल जाता है न! सद्गुरु का मिला न एक जबरदस्त, माने वज्र-गिरा थी वो तो एकदम, नहीं टलने वाली ऐसी (बात)। सद्गुरु का (योग) कोई सामान्य नहीं होता है न! उसकी वज्र-गिरा कोई झेल सके कि सब भूल एकदम पहले (तो) और तू केवल चैतन्य है - ये स्वीकार कर और सब भूल जा, सारे जगत को भूल जा, अपनी सारी पर्यायों को भूल जा, सारे गुणों को भूल जा। तू एक चिन्मात्र है बस - इतना याद रख तो काम होता है। तो वज्र-गिरा है न माने सारे जगत को भूलना, अपने गुणों को भूलना, अपनी पर्यायों को भूलना, सामान्य है क्या बात?

मुमुक्षु:- और वो भी अनदेखा! देखा होता तो सही था।

पूज्य बाबूजी:- अनदेखा माने इसको देखना ही कहते हैं। मैं ज्ञायक हूँ उसका जो स्वरूप निश्चित किया ज्ञान में, इसको देखना ही कहते हैं।

देखना शब्द दो अर्थों में आता है। एक आता है दर्शनोपयोग के संबंध में, उसमें देखना आता है। और दूसरा ज्ञान में भी देखना शब्द आता है। जैसे हम चक्षु से देखते हैं, कान से सुनते हैं, नाक से सूँघते हैं - ये सब जानना ही है, ये सब जानना ही है। वो अलग-अलग इंद्रियों का अलग-अलग व्यापार बताने के लिए अलग-अलग नाम दिए गए।

मुमुक्षु:-[6] बाबूजी! ये ज्ञेयाकार परिणति में **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३०) सिद्ध करिए। कैसे सिद्ध करें?

पूज्य बाबूजी:- हो तो रहा है। ज्ञेयाकार परिणति माने ज्ञान की परिणति। उसमें उत्पाद और व्यय हो गया और ध्रुव शुद्धात्मा को जो ध्येय बनाया उसने तो वो ध्रौव्य हो गया।

मुमुक्षु:- वो तो बाबूजी अनुभूति के समय में न?

पूज्य बाबूजी:- अनुभूति के समय क्यों? हमेशा ही है। पहले भी है और हमेशा ही है फिर तो।

मुमुक्षु:- हर समय।

पूज्य बाबूजी:- प्रति समय ही है फिर तो (क्योंकि) जान गया न स्वरूप। तो जानने के बाद स्वरूप का जो बोध हुआ है वो निकलता थोड़े ही है। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य प्रति समय है। वो तो मिथ्याज्ञान के समय भी है उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (तो)। वो तो वस्तुमात्र में है, अचेतन में भी है। वो तो जो सत् जो है वो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त होता है। **सद्द्रव्यलक्षणम् (तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ५ सूत्र २९)** द्रव्य का लक्षण सत् है और जो सत् है वो त्रिवेणीवाला होता है - उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य एक ही समय में, एक ही समय में।

6 ज्ञेयाकार परिणति में उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। - 48.06 Mins

मुमुक्षु:- वो वस्तु की व्यवस्था है।

पूज्य बाबूजी:- वो तो वस्तु-व्यवस्था है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! जो सत् है वो ज्ञायक की बात हुई न, त्रिकाली ज्ञायक की बात हुई न।

पूज्य बाबूजी:- जो (भी) अर्थ अपन लें.... अपन अपने सत् की बात कर रहे हैं तो त्रिकाली ज्ञायक की बात हुई। और जगत के सत् की बात कर रहें हैं तो वो अज्ञान है, वो अज्ञान है। ज्ञान हो जाए तब तो अज्ञान नहीं है तब तो सम्यग्ज्ञान है जगत की बात करे तो भी। जगत के परिणमन की बात करे, जगत की ध्रुवता की बात करे, आते ही हैं विकल्प; तो वो तो व्यवहारनय है। व्यवहारनय है (यानि) व्यवहार ज्ञान है लेकिन है सम्यग्ज्ञान क्योंकि उसमें भूल नहीं होती, स्वरूप में। स्वरूप में भूल नहीं है न! स्व और पर के स्वरूप में कतई भूल नहीं है, जरा सी भी भूल नहीं है। इसलिए परत्वपूर्वक परिणमन होता है।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! परत्वपूर्वक परिणमन?

पूज्य बाबूजी:- पर जानते हुए परिणमन होता है।

मुमुक्षु:-[7] और वो जानने की technology है कि स्वयं अपनी ही ज्ञान की पर्याय को जानता हूँ और परिणमन करता हूँ।

पूज्य बाबूजी:- वो तो खास (है) वो। वो तो हमेशा ही apply (लागू) होता है। लेकिन ये जो व्यवहार की जो चर्चा है, ये व्यवहार के बिना वो निश्चय समझ में नहीं आता (है)। क्योंकि कोई ये प्रश्न करे कि ये तुम्हारे चित्र-विचित्र प्रतिभास हैं ज्ञान में, ये क्यों हो रहे हैं? इसका क्या कारण है? तो पागल है तुम्हारा ज्ञान तो कि जो कभी बिल्ली का आकार बनाता है, कभी कुत्ते का आकार बनाता है, कभी हाथी का आकार बनाता है, कभी दीवार का आकार बनाता है, कभी पर्वत का आकार बनाता है। कभी आत्मा का.... आत्मा का तो बनाएगा ही क्यों अज्ञान दशा में? तो कहते हैं कि पागल है ज्ञान। ऐसा क्यों हो रहा है - ये प्रश्न है न! तो इसका उत्तर यूँ नहीं होगा कि वो तो ज्ञान को ज्ञान जानता है, ये नहीं होगा उत्तर। उत्तर ये होगा कि ऐसे पदार्थ हैं जगत में, ऐसी वस्तुयें जगत में हैं। इसलिए ज्ञान में स्वतः ही इस तरह रचना (करने) का, संरचना करने का स्वभाव है। तो वो करता है अपने भीतर ही भीतर।

विद्यार्थी है न, student है न, तो उसने college में सीखा। अब जिस समय परीक्षा हुई उस समय क्या है? पुस्तकें हैं क्या उसके पास? नहीं हैं। लेकिन वो जो लिख रहा है, वो पुस्तकों में है। और (जो) लिख रहा है वो अपनी बुद्धि से लिख रहा है सारा, लेकिन वो बात पुस्तकों में है। चतुर विद्यार्थी है। तो इस तरह मेल होता है बराबर। माने बिल्कुल ज्ञान में फर्क नहीं होता है। छद्मस्थ ज्ञान में जो लौकिक पदार्थ हैं, उनके संबंध में संशय हो सकता है, विपर्यय हो सकता है, अनध्यवसाय हो सकता है लेकिन उससे कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि मूल प्रयोजन ये है कि ये

7 पर को जानना स्व को जानते हुए ही होता है। - 50.26 Mins

पर है। बस! अब पर में वो सारे लोकालोक को जाने ऐसा तो छद्मस्थ ज्ञान में होता नहीं है। इसलिए उसमें ये हो सकती है, तो उस भूल को भूल नहीं कहते हैं। क्योंकि वो ये जाने कि जैसे ये मकान है - ये इतना जाननामात्र ज्ञान नहीं है। ये मकान मेरा नहीं है - ये है सम्यग्ज्ञान (और) वो भी व्यवहार ज्ञान (है)। लेकिन मेरा नहीं है - ये जाने; और ये मेरा है ज्ञायक (ऐसा जाने) - ये सम्यग्ज्ञान है।

मुमुक्षुः- ये मेरा नहीं है, वो जाने वो मूल है।

पूज्य बाबूजीः- वो मूल जानना (है)। किसका है इससे क्या मतलब (है) उसे? इससे उसे क्या प्रयोजन (है)? वो अगर गलत भी जानता है कि मेरा नहीं है लेकिन वो उनका है। तो वो जो स्वामी है उसका नाम नहीं बताकर किसी दूसरे का बता देता (है)। और वो मकान बिक चुका है, इसलिए उसका स्वामी दूसरा हो चुका है। लेकिन फिर भी वो पहले स्वामी का नाम बताता है। तो भूल गया है न! तो भूल गया (है) लेकिन इसको भूल नहीं कहते हैं। (क्योंकि) असली जानना ये है कि ये दूसरे का है, मेरा नहीं है। वास्तविक, ज्ञान में जो वास्तविक भेद है (वो) ये होना चाहिए स्व और पर का। बाकी और गिनती ही नहीं है (पर) पदार्थों की। जो पदार्थों की गिनती में जाता है उसकी intention (अभिप्राय) ठीक नहीं है। इसलिए वो तो बंध के व्यवसाय में है, अपराधी है वो जो गिनती में जाता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर प्रभु! बहुत सुंदर! एकदम स्पष्ट!

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वो उचक्का है वो कि जो पदार्थों की गिनती में जाता है।

जैसे कोई यूँ कहे कि भाई, जैसे आपकी जेब में पर्स है। तो ये जरा देख सकता हूँ क्या? पर्स देख सकता हूँ? क्यों मतलब? तुमको मलतब? हमारा यही (उत्तर) होगा न उसको कि तुमको मतलब क्या है? मतलब कुछ नहीं, देखना है खाली (कि) कितने नोट हैं (ये देखना है)। तो हम क्या कहेंगे कि ये आदमी अनाचारी है। बस इतना जाने कि पर्स है लेकिन दूसरे का है। अब पर्स नहीं तो कुछ भी जाने उसे, लेकिन मेरा नहीं है। ये मेरा नहीं है - इतना (जाने)।

सम्यग्ज्ञान में इतना ही है जरा सा, इसलिए तो संक्षेप है। अगर ज्यादा बोझ धर देते ज्ञान के सिर पे तो वो तो दुख पाता है। सम्यग्ज्ञान में तो हर्ष होता है, प्रसन्नता होती है। इसलिए जो लोग ये कहते हैं कि हम में बहुत कम ज्ञान है और हम तो समझते नहीं हैं तो उनका यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि वो जगत की बातों में इतने चतुर हैं, इतने बारीक जाते हैं कि यहाँ इतनी जरूरत ही नहीं है इतने ज्ञान की। उस ज्ञान को तो भले अलग से धर दो और (बस) इतना सा याद रखो कि दाल अलग है और छिलका अलग है। इतना सा याद रखो। तो ये स्व और पर का भेद बस यही मुख्य है। सम्यग्ज्ञान होने में यही मुख्य कारण है।

मुमुक्षुः- फिर सम्यग्दर्शन होने के बाद कोई क्षयोपशम में गलती हो....

पूज्य बाबूजीः- वो गलती गलती नहीं कहलाती है। उसमें गलती नहीं है। जैसे यहाँ जितने भाई बैठे हैं उनका नाम मुझे बताया गया और मैं किसी को किसी (और) नाम से पुकार देता हूँ।

तो भयंकर अपराध माना जाता है क्या? नहीं साहब! कोई बात नहीं, भूल हो जाती है। पर इतना है कि हैं पराये (हैं) दूसरे (हैं), मेरे नहीं हैं।

इसलिए वो भूल तो होगी, वो भूल तो होगी। वो तो कई होंगे, उदयभाव तो कई होंगे। पर उसने जो ये जाना लिया है कि मेरा तो एकमात्र ये ज्ञायक ही है सिर्फ, चैतन्यमात्र, और सारे के सारे पराये हैं ये जितने भी (हैं)। उदय है पराया और उस उदय के अनुसार होनेवाले मेरे जो राग-द्वेष हैं, पुण्य-पाप हैं, वे सारे के सारे पराये हैं। इसतरह परत्व की कोटि में जिसने रख दिया (है) तो उससे भले ही जगत में कैसी (भी) भूल हो, तो वो भूल नहीं कहलती। उसे भूल नहीं कहते हैं।

मुमुक्षुः- आपकी सभी बातें एक ज्ञायक पर रुक जाती हैं।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वो है ही ऐसा, अपन हैं ही वही।

मुमुक्षुः- पर के जानने में कोई गलती हो भी गई तो इतना ही काफी है कि ये पर जाना है।

पूज्य बाबूजीः- वो हो नहीं सकता है न, क्योंकि ज्ञान अल्प है। इसलिए हम उससे ये अपेक्षा करें कि वो तीन लोक को बिल्कुल केवलज्ञान की तरह जाने, ये हो नहीं सकता। इसलिए भूल होगी ही होगी। कभी जो है वो जो कोई सफेद-सफेद वस्तु पड़ी हो तो उसे चाँदी समझ लेगा। कोई पीतल पड़ा हो तो उसको सोना समझ लेगा। ठगाएगा, दिवाला भी निकल जाएगा, सभी कुछ होगा इसमें। वो कुछ नहीं (है) लेकिन, उसमें कोई भूल चूक नहीं है।

मुमुक्षुः- क्योंकि ये जानता है कि ये मैं हूँ....

पूज्य बाबूजीः- मेरा नहीं है, मैं नहीं हूँ बस। बस इतना! स्व-पर का विभाग ये जबरदस्त है बस। और इसमें कहाँ मेहनत है? माने ज्ञान को बढ़ाने की अपेक्षा ज्ञान को तीक्ष्ण और सूक्ष्म बनाना। ज्ञान को बढ़ाने की जो चेष्टा है वो ज्ञान को तकलीफ देना है। और जब ज्ञान तकलीफ पायेगा तो प्रसन्नता आएगी कहाँ से? इसलिए जिनवाणी में मैंने तो केवल समयसार ही पढ़ा है, अथवा मुझे तो समयसार की केवल इतनी ही गाथायें पढ़ी हैं मैंने तो। अब और मैंने पढ़ी ही नहीं (हैं)। तो इत्यादि इत्यादि विकल्प भले ही आवें लेकिन उनमें अत्यधिक पश्चाताप नहीं होना चाहिए कि मेरा अल्प ज्ञान है। अल्प ज्ञान कभी नहीं मानना। वो अल्प है (मगर) वो इतना सामर्थ्यशाली है कि वो जो है वो ज्ञायक को अपने में उतार लेता है, इतनी सामर्थ्य है उसकी। उस अमूर्त को अपने में उतार लेता है स्वयं अमूर्त बनकर। अमूर्त ही है।

मुमुक्षुः- स्वयं अमूर्त बनकर! अमूर्त को अपने में उतार लेता है, अमूर्त बनकर।

पूज्य बाबूजीः- अमूर्त बनकर माने अमूर्त होकर। पहले मूर्त मानता था, पहले मूर्त मानता था। अब अपने में उतार लेता है इसलिए बहुत सामर्थ्यशाली है ज्ञान। इसलिए इतना सा हो बस स्व और पर (का ज्ञान) - इतना।

तो ज्ञान को कष्ट देने की कोशिश नहीं करना जिनवाणी के बहाने भी। हाँ! कि अभी तो एक ही शास्त्र पढ़ा है। अब दूसरा तो दो-चार तो पढ़ते कम से कम जीवन में। अथवा मैं तो निरक्षर

हूँ और मैं जो है वो, मुझे तो हस्ताक्षर करने भी नहीं आते। तो मैं कैसे सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता हूँ? तो कहते हैं - ये सब बहुत बड़ी भूल है।

एक ८० वर्ष की वृद्धा हो न वो भी कोई छोटी-मोटी दुकान करती हो। तो उससे पूछा जाए कि माँ तेरा कितना पैसा लेना बाकी है लोगों से? तो वो ऐसे गिनाएगी जैसे लिख लिया हो - ऐसे, इस तरह गिना देगी। बीस नाम गिना देगी। उसमें दो पैसे हैं मेरे, उसमें चार पैसे बाकी हैं। उसमें एक आना बाकी है, उसमें दो आना बाकी हैं, उसमें चार आना बाकी हैं। इस तरह गिना देगी वो। तो इतना गिनानेवाली 'मैं ज्ञायक हूँ' - ये नहीं जान सकती (है क्या)? चैतन्यमात्र हूँ। चैतन्यमात्र हूँ - ये नहीं जान सकती (है)? जान सकती है। वो तो बहुत ज्यादा है वो ज्ञान तो। वो तो कुए में डाल देने लायक है। उसकी जरूरत ही नहीं है।

मुमुक्षु:- बोझा बनाकर रखा है। वास्तव में कुछ बोझा नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! बोझा डालता है ज्ञान पर। ज्ञान को बोझल बनाता है। ज्ञान है हल्का-फुल्का एकदम फूल की तरह। हल्का-फुल्का है क्योंकि उसमें कोई आता ही नहीं (है)। वो हल्का-फुल्का रहेगा कि नहीं? उस पर वजन ही नहीं (है) कोई, जगत का। इसलिए निर्भार-निश्चिंत रहना चाहिए। लेकिन ये जोड़-तोड़ करता है साथ में तो वो अपने आप ही बोझल हो जाता है। बोझल हो जाता है।

मुमुक्षु:- है तो हल्का-फुल्का!

पूज्य बाबूजी:- हल्का-फुल्का! बोझल कर लेता है। बोझल कर लेता है।

जैसे आलसी स्त्री हो न तो खाना तो रोज बनाना ही पड़े। पर (उसको लगे कि) अभी तो मैं सोती तो मुझे मजा आता। तो अभी तो ये सारा जो है चूल्हे के साथ टकराना है, चूल्हे के साथ मुझे वो करना है। तो ये कहाँ तक करूँगी? तो (ये) आलस्य है। अरे भाई! भूखी मारेगी क्या? क्या करेगी भोजन नहीं बनाएगी तो? वो तो तेरा कर्तव्य है।

इस तरह हल्का-फुल्का रहना ये ज्ञान का कर्तव्य है। क्योंकि उसमें कोई आता नहीं (कोई) जाता नहीं, कोई वजन नहीं, कुछ भार नहीं (है) थोड़ा भी, किसी के साथ कोई एकत्व नहीं (है)। केवल एकमात्र आत्मा के साथ उसका एकत्व है वास्तव में तो। वास्तव में तो उसी के साथ है न उसका जुड़ान। अब वो एकत्व करना वो एक पर्याय का धर्म है, वो भूल गई है। तो उतना ही है।

ज्ञानी से पूछा जाए कि संसार कितना? कि ये वर्तमान राग जितना। अनादि का? कि अनादि का कुछ नहीं (है)। अनादि का गया सब, समाप्त हो गया। अब कितना संसार (है)? कि वर्तमान राग जितना। ये वर्तमान का राग अगले क्षण में समाप्त हो जाए तो मैं मोक्ष चले जाऊँ। तो क्या कपड़े पहने चले जाओगे? मुनि नहीं बनोगे? तो बोले कि सब हो जाएगा वो, सब हो जाएगा। वो शंका करने की आवश्यकता नहीं (है), पर इतना है संसार। इसलिए ज्ञानियों के लिए जो संसार है वो है गाय के खुर के समान और अज्ञानी के लिए महासागर है। गाय का खुर जैसे होता है न, गाय

का पैर। उससे जो गड्ढा होता है उसमें पानी (भर जाता) है, तो उसे उल्लंघन करने में देर लगती है क्या? तो अज्ञानी महासागर मानता है और ज्ञानी जो है वो निर्भय रहता है कि जान लिया, जान लिया संसार को (कि) संसार क्या है। एक फूँक में उड़ जाएगा अनुभूति के.. ऐसा जानता है ज्ञानी।

मुमुक्षुः- निर्भार और निश्चिंत हो जाता है।

पूज्य बाबूजीः- निर्भार और निश्चिंत होता है। निश्चित निर्भार हो जाता है। बाहर से बोझल दिखाई देता है लेकिन भीतर हल्का-फुल्का रहता है। एकदम हल्का-फुल्का रहता है। सभी कुछ अज्ञानी जैसी क्रियायें दिखाई देती हैं, विकल्प भी दिखाई देते हैं लेकिन भीतर (से) बदल गया है न असल में। अज्ञानी का भीतर-बाहर एक है।

मुमुक्षुः- वाह रे! और ज्ञानी अंदर से हल्का-फुल्का है और बाहर की प्रवृत्ति अज्ञानी जैसी (है)।

पूज्य बाबूजीः- बाहर से बोझल दिखाई देती है। अज्ञानी माप नहीं कर पाता (है)।

मुमुक्षुः- अज्ञानी माप नहीं कर पाता (है)?

पूज्य बाबूजीः- नहीं माप कर पाता (है) ज्ञानी को।

मुमुक्षुः- बाबूजी! पर्याय की ओर से देखें तो ज्ञायक ही दिखता है।

पूज्य बाबूजीः- अब तो समय हो गया होगा न! अब कल पर रखें।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

जिनवाणी-स्तुति

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १३, तारीख ६-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:-[8] पूज्य बाबूजी! एक प्रश्न है - प्रतिभास...

पूज्य बाबूजी:- आप तो प्रश्न बोल दिया करो। पूज्य वगैरह की कहाँ जरूरत है?

मुमुक्षु:- (ऐसा) लिखा है। भाई! मेरा काम तो ये है (कि) जो लिखा है उसे पढ़ें।

प्रतिभास माने सामान्य उपयोग। ये अपने मन में जो स्पष्टीकरण है (पहले) वो कहते हैं कि प्रतिभास माने सामान्य उपयोग। अब प्रश्न है क्या सामान्य उपयोग में जाननक्रिया और परिणमन - ये दो एक साथ होता है? - पहला प्रश्न। (दूसरा प्रश्न-) जिसे समय कहते हैं (सामान्य उपयोग को), तो विशेष उपयोग किसे कहते हैं? इसमें उत्पाद-व्यय सहित जाननक्रिया है माने (यदि) ये प्रमाण का विषय है तो फिर निरपेक्ष कैसे है? कृपया खुलासा करें।

पूज्य बाबूजी:- विचित्र प्रश्न है।

प्रतिभास माने सामान्य उपयोग - ऐसा नहीं है। प्रतिभास माने विशेष उपयोग। उपयोग की जो विशेष ज्ञेयाकार जैसी जो दशा है उसका नाम प्रतिभास है। और उस प्रतिभास को गौण करे तब सामान्य उपयोग होता है। ये प्रतिभास ज्ञान ही है - ये सामान्य हुआ। केवलज्ञान में भी ऐसा ही होता है (कि) सब गौण हो जाते हैं सारे प्रतिभास और एकमात्र ज्ञान (रहता है)। अर्थात् वहाँ तो इतना विचार होता नहीं है। ये तो अपनी विचार-श्रृंखला है, अंतर्मुख होने के लिए। तो वहाँ नहीं होता है लेकिन वो सब गौण-कक्षा में ही रहते हैं। हेय-कक्षा में रहते हैं, हेय-कक्षा में। इसलिए प्रतिभास विशेष को कहते हैं। लेकिन वो जो विशेष है, वो सारा का सारा प्रतिभास जो ज्ञेय जैसा आकार है ज्ञान में, वो सब ज्ञान ही है, तब सामान्य हुआ।

(दूसरा प्रश्न) कि सामान्य उपयोग में जाननक्रिया और परिणमन - ये दो एक साथ होता है? एक साथ ही होता है। कल आई थी न सारी बात! एक साथ ही होता है। सामान्य उपयोग में.... माने जाननक्रिया उसी का नाम सामान्य उपयोग (है); और परिणमन माने एक क्रिया से दूसरी क्रिया, दूसरी से तीसरी क्रिया। इस तरह क्रिया के बाद क्रिया होना उसका नाम परिणमन है। (प्रश्न - कि) जिसे समय कहते हैं। हाँ! उसे समय कहते हैं। माने वो समय की जो पहले परिभाषा है न - जानना माने जाना और गमन करना। 'अय' धातु है, 'अय' क्रिया है एक। इसलिए जानना और

8 क्या सामान्य उपयोग में जाननक्रिया और परिणमन - ये दो एक साथ होता है? - 0.15 Mins

परिणमन करना! तो वो दोनों (ही) आचार्य ने इसमें लिये (हैं)। एकत्वपूर्वक जानता और परिणमन करता हुआ। माने 'मैं ज्ञायक हूँ' - इस प्रकार परिणमन करता हुआ।

तो विशेष उपयोग किसे कहते हैं? विशेष उपयोग माने प्रतिभास। ज्ञेय जैसे आकार ज्ञान के द्वारा जो बनाए जाते हैं अपनी स्व-शक्ति से, स्व-सामर्थ्य से, उसका नाम प्रतिभास (है अर्थात्) ज्ञान का विकल्प।

वो जो प्रतिभास है, वो ये जाननक्रिया स्वरूप भी है वो प्रतिभास। माने वो ज्ञान का ही बना हुआ है, वो सारा का सारा। इसलिए जिस समय हम सामान्य कर लेते हैं उपयोग को तो प्रतिभास का अभाव नहीं हो जाता। और प्रतिभास को हम गौण कर देते हैं क्योंकि प्रतिभास तो प्रतिसमय ही रहेगा। निगोद से लेकर केवलज्ञान तक प्रतिभास तो प्रतिसमय होना ही है ज्ञान में। इसलिए वो जो प्रतिभास है उसमें कोई विशेषता नहीं। ज्ञान के अतिरिक्त उसमें कुछ नहीं है। माने वो ज्ञान से अधिक कुछ नहीं है। ऐसा जो जाना तो वो पर्याय का सामान्य जाननक्रिया हो गई, पर्याय की। और वो पर्याय का विशेष था। विशेष-सामान्य में कोई भेद नहीं (है) ज्ञान ही है वो। बस इतना!

(प्रश्न में-) इसमें उत्पाद-व्यय सहित जाननक्रिया है माने ये प्रमाण का विषय है। प्रमाण का विषय नहीं है (बल्कि) निश्चय नयात्माक चल रहा है सब कुछ। क्योंकि वो जो व्यवहार था न! जो प्रतिभास है उसको ज्ञेयाकार कहते हैं। ज्ञेयाकार माने ज्ञेय का आकार, तो वो व्यवहार है। ज्ञेय जैसा आकार ज्ञान का ही है - ये हुआ निश्चय। और वो जो प्रतिभास है वो ज्ञान ही है - ये उसके बाद का निश्चय। और ये ज्ञान है सो मैं ही हूँ - ये परमशुद्ध निश्चय।

मुमुक्षुः- फिर से, फिर से प्रभु! बहुत सुंदर!

पूज्य बाबूजी:- जो प्रतिभास है वो सचमुच जाननक्रिया स्वरूप ही है। उसमें दो भेद नहीं हैं क्योंकि एक ही पर्याय है वो अखंड। प्रतिभासरूप एक ही पर्याय है। वो प्रतिभास ज्ञान का ही बना हुआ है इसलिए वो प्रतिभास जानता भी है। जाननभाव स्वरूप भी है वो उसमें जाननक्रिया भी है और परिणमन भी है। माने उत्पाद-व्यय होता है प्रतिसमय ऐसा ही। प्रतिभास माने एक प्रतिभास का व्यय हुआ, दूसरा प्रतिभास आया दूसरे ज्ञेय जैसा। फिर उसका व्यय हुआ फिर तीसरा (प्रतिभास)। इस तरह से प्रवाहरूप चला करता है प्रतिभास। तो ये परिणमन उसमें होता है बराबर। और वो जानन स्वभावरूप ही है वो। ऐसा जब जाना तो उपयोग सामान्य हो गया तो प्रमाण का विषय नहीं (हुआ)। यहाँ निश्चय व्यवहार चल रहा है। वो सब ये व्यवहार हो गया अब। ये (जो) प्रतिभास है ये ज्ञान ही है - तो वो ज्ञान निश्चय हो गया (तो) वो व्यवहार हो गया। और ये ज्ञान है वो मैं ही हूँ तो वो व्यवहार हो गया (और) ये निश्चय हो गया। वो सब हेयकोटि में चले गए। और ये मैं ज्ञायक चिन्मात्र हूँ - ये उपादेयकोटि में आ गया।

मुमुक्षुः- उपादेयकोटि में आ गया। मैं ज्ञान हूँ - वो उपादेयकोटि नहीं है?

पूज्य बाबूजी:- वो नहीं है। वो हेय हो गया फिर, हेय हो गया। पर्याय है न! तो वो हेयकोटि में चली गई।

मुमुक्षु:- जो एक समय निश्चय था वो दूसरे समय व्यवहार हो गया।

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि निरपेक्ष कैसे? निरपेक्ष तो सभी हैं द्रव्य-गुण-पर्याय। इसमें तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। निरपेक्ष ही है सब कुछ। एक पदार्थ में जो कुछ भी होता है जो कुछ भी परिणमन, गुण और द्रव्य - ये सारे के सारे निरपेक्ष ही हैं। सापेक्षता उसका नाम व्यवहार। सापेक्ष कहना माने भीतर सापेक्षतारूप विकल्प होना ज्ञान में, उसका नाम व्यवहारनय। भाई! आत्मा ऐसा है तो ऐसा जानना उसका नाम व्यवहारनय हुआ - ऐसा। हो गया खुलासा?

मुमुक्षु:- बाबूजी! कल एक (प्रश्न) पूछ रहा था कि जो कल आपने ज्ञानत्व का अन्वय लिया था कि वो पर्याय का सामान्य है। बराबर? तो वो....

पूज्य बाबूजी:- ज्ञानत्व का अन्वय नहीं, वो तो द्रव्य में होता है अन्वय तो।

मुमुक्षु:- नहीं! ज्ञेयाकार परिणति में।

पूज्य बाबूजी:- वो तो व्यतिरेक हैं सब। सब पर्यायें हैं ये सारी की सारी। वहाँ तक पर्याय है 'मैं ज्ञायक ही हूँ - चिन्मात्र' वहाँ तक पर्याय है। पर्याय है, लेकिन पर्याय द्रव्याकार है इसलिए अपने आपको द्रव्य घोषित करती है। चिन्मात्र-ज्ञायक घोषित करती है, ऐसा। तो स्वयं जो है अदृश्य हो जाती है। ये अभेदता की पराकाष्ठा (है), मिलन की पराकाष्ठा।

मुमुक्षु:- बहुत अच्छा! अभेदता माने मिलन की पराकाष्ठा।

पूज्य बाबूजी:- मिलन की पराकाष्ठा!

मुमुक्षु:- यही प्रश्न था दृष्टि के विषय में किस तरह सहायकभूत होता है?

पूज्य बाबूजी:- दृष्टि का विषय आ गया न वो। 'मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ' ये दृष्टि का भी आ गया (और) ये ज्ञान का भी गया, दोनों आ गए। दोनों अहंरूप होते हैं। ज्ञान भी अहंरूप जानता हुआ और श्रद्धा (भी) प्रतीति करती हुई अहंरूप। श्रद्धा की प्रतीति माने अहम् (और) ज्ञान का जानना माने उसका एकत्व।

मुमुक्षु:- श्रद्धा की प्रतीति माने अहम् और ज्ञान का जानना माने एकत्व।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए वो भी अहंरूप होता है। वो एकत्व भी अहंरूप होता है। वो जाननरूप अहम् है और ये प्रतीतिरूप अहम् है, श्रद्धारूप अहम्। दोनों अलग-अलग (हैं) क्योंकि उसमें space (खालीस्थान) नहीं रहना चाहिए। थोड़ा भी अंतर नहीं रहना चाहिए कि ये ज्ञान मैं ही हूँ - यहाँ space (खालीस्थान) है - ये व्यवहार है ये।

आया न इस गाथा में, श्रुतकेवली वाली गाथा में कि ज्ञान है सो मैं ही हूँ, इसका नाम व्यवहार श्रुतकेवली। और सीधा आत्माभिमुख होकर आत्मदर्शन करना, आत्मा का अनुभव करना उसका नाम निश्चय श्रुतकेवली। और ये ज्ञान है सो मैं ही हूँ, इसका नाम व्यवहार श्रुतकेवली। ऐसे तो

द्वादशांग के ज्ञाता को श्रुतकेवली कहते हैं। लेकिन वो.... कथन की ओर से है। वैसे सामान्य कथन में तो यही है क्योंकि हर एक द्वादशांग का ज्ञाता (तो) होता नहीं है। फिर भी जहाँ निश्चय श्रुतकेवली है तो वहाँ व्यवहार श्रुतकेवली होना चाहिए। तो वो द्वादशांग का ज्ञाता तो नहीं है, तो भी **तुष मास भिन्नम्** जैसे वो भी व्यवहार श्रुतकेवली और निश्चय श्रुतकेवली - दोनों हो गए। जब तक वो उसको रटते रहे तब तक व्यवहार और जब उतर गए तो निश्चय।

मुमुक्षु:- परिणमन हो गया, इसलिए। माने एक जाननभावरूप अहम्।

पूज्य बाबूजी:- एक जाननभावरूप अहम् और एक प्रतीतिरूप अहम्, श्रद्धारूप अहम्।

मुमुक्षु:- ये क्या कहा है?

पूज्य बाबूजी:- श्रद्धा अहम् ही करती है और वो ज्ञान भी (अहम् करता है) क्योंकि उसमें जब तक थोड़ा भी भेद रहेगा (कि) ज्ञान है वो मैं ही हूँ - ये अंतर है ये space (गैप) है इसमें। इसलिए वो space (गैप) सिमटनी चाहिए, खतम होनी चाहिए कि मैं ज्ञायक ही हूँ - ये अभेद हो गया है चिन्मात्र।

मुमुक्षु:- ज्ञान (और) श्रद्धा का युगपद् परिणमन हुआ?

पूज्य बाबूजी:- युगपद्, युगपद् परिणमन चारित्र का भी। जितना चारित्र प्रगट हुआ उतना चारित्र का भी परिणमन और उतना ही सुख का परिणमन, आनंद का परिणमन। उस समय उपयोग जब स्वभाव की ओर हो (तो) उसका नाम आनंद और वो चले जाने के बाद माने ज्ञान जब बाह्य विषयों की ओर चला जाए, तब भी सुख और दुखरूप परिणमन मिश्ररूप से चलता है। तो जितनी अनुभूति हुई (तो) उस समय सुख प्रगट हुआ चारित्र के फलस्वरूप, तो वो सुख और शेष जो अभी जितनी कषाय बाकी है, उतना दुख (है)। इस तरह मिश्रदशा चारित्र में, सुख में इन सबमें चलती है। सिर्फ़ श्रद्धा और ज्ञान में नहीं चलती।

ज्ञान में दो पर्याय नहीं होतीं कभी।[9] वो जैसे जो बात आती है न १७-१८ गाथा की कि वो आबाल-गोपाल सबको जानने में आता हुआ...... (तो) जानने में आता है 'किन्तु' शब्द है फिर आगे। तो आबाल-गोपाल सबको जानने में आता हुआ उसका सामान्य अर्थ है बिल्कुल। जानने में आता है - ऐसा नहीं। जानने में आता है तो अनुभूति हो जाये। उसके लिए तो (फिर) अंतर्मुहूर्त चाहिए केवलज्ञान होने में (तो) खाली। इसलिए वो जानने में आता है - ऐसा नहीं। उस समय वो जाननस्वभाव क्या है? 'मैं ज्ञायक हूँ' - ये कौन है ज्ञायक? और इसका जानना क्या है? इस बात का जब तक वो निश्चिय नहीं करता, तब तक अज्ञानी ही रहता है और अन्य में प्रतिबद्ध रहता है। अन्य में ममत्वशील रहता है। अन्य में एकत्व करता हुआ परिणमन करता है इसलिये अज्ञानी है वो। वो बात अज्ञानी की है। ज्ञानी की नहीं है। ज्ञानी की तो पहले आ चुकी, प्रथम से।

मुमुक्षु:- ऐसा है न सबको अनुभव में आ रहा है।

9 १७-१८ गाथा की चर्चा। - 14.24 Mins

पूज्य बाबूजी:- अनुभव मतलब जानने में आ रहा है। अनुभव शब्द परपदार्थ के लिए भी आता है और अनुभव शब्द अचेतन में भी आता है। नमक को हमेशा लावण्य की, क्षार की अनुभूति होती है इसलिए उसके लिए भी (अनुभव शब्द) आता है। तो जहाँ जैसा हो वैसा समझना। अनुभूति होती है माने क्षाररूप परिणमन करता है।

मुमुक्षु:- माने स्वाभाव में परिणमन।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! क्षाररूप परिणमन होना।

मुमुक्षु:- तो बाबूजी मतलब ये हुआ कि १७ (-१८वीं) गाथा का जो भाव है, उसको सामान्य स्थिति मत लेना कि ऐसा अनुभव में आ रहा है - ऐसा मत लेना?

पूज्य बाबूजी:- नहीं नहीं! ऐसा नहीं (है), बिल्कुल नहीं है। वो जाननेवाले ही जानने में आता है उसका अर्थ ये नहीं है कि जानने में आता है। जाननेवाला प्रतिसमय जानने में आता है अगर ऐसा हम मान लें, तो कहाँ लंबे टाइम की जरूरत है? वो तो अंतर्मुहूर्त का नियम है (फिर तो) आगम में, केवलज्ञान होने का। इसलिए ये जो श्रेणी होती है उपशम श्रेणी (और) क्षपक श्रेणी, तो उपशम श्रेणी में तो वो आगे बढ़ता नहीं है, ११ वें गुणस्थान से आगे। और जो क्षपक श्रेणी होती है तो क्षय करता हुआ वो सीधा १२वें में जाता है १०वें से। ११वें में नहीं रहता है, ११वाँ से तो गिरता है नियम से। और फिर जब क्षपक श्रेणी होती है तो वो सीधा १२वें में जाता है। तो वो अंतर्मुहूर्त में सब हो जाता है वो और १२वें से फिर १३वें में जाता है तो अंतर्मुहूर्त में तो केवलज्ञान हो गया है (उसको) उस क्षण में। इसलिए उसे सही नहीं लेना कि वो ज्ञायक अनुभव में आ रहा है। अनुभव में आता हो तो फिर क्या है? फिर तो आगम कह रहा है कि अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान होना चाहिए। उसमें तो मुनिदशा भी होगी और केवलज्ञान हो जाएगा अंतर्मुहूर्त अगर होवे तो, क्षपक श्रेणी चढ़कर। इसलिए जानने में नहीं आता है। उसका वास्तविक स्वरूप जानने में नहीं आता है। मैं जानता हूँ बस, इतना जानने में आता है। लेकिन जानना क्या होता है और जाननेवाला क्या होता है - इसका उसे पता नहीं है। इसका असली स्वरूप उसे पता नहीं है। वो असली स्वरूप पहले कहा पहले पेरे (पैराग्राफ) में। दूसरे पेरे (पैराग्राफ) में ये अज्ञानी की बात कही।

वो इसलिए कहा है कि जीव को इतनी सरलता से कि वो तो तेरे हर ही समय जानने में आ रहा है, तू ढूँढने कहाँ जाता है? यहाँ इतने सरल हो गए हैं आचार्य। माने पहले जो प्रमत्त-अप्रमत्त कहा था न, तो उसमें थोड़ी कठिनाई लगी। यहाँ कहते हैं कि तेरे हर समय ही तो जानने में आ रहा है। तू कहाँ ढूँढ रहा है उसको? ये जो ज्ञान है ये आत्मा ही तो है, बस इतना (लेना)। ये जो जाननक्रिया है ये आत्मा ही तो है ये। बस! ये लक्षण है न! तो लक्षण से लक्ष्य की प्रसिद्धि हो जाती है। तो ये लक्षण है, ये जाननक्रिया जो है प्रतिसमय ये आत्मा ही है ये। बस! हो गया। तब वास्तव में जानना हुआ। तब हुआ वास्तव में जानना।

लेकिन वो क्या है कि मिश्रण करता है। जानने में, जाननक्रिया के साथ और ज्ञायक के साथ दोनों में मिश्रण करता है वो। तो मिश्रण करता है तो शुद्ध अनुभूति नहीं होती है (बल्कि) अशुद्ध अनुभूति होती है। और प्रतिसमय जानने में आता है उसका अर्थ केवल इतना (लेना) कि मैं जानता हूँ - बस, ये हर जीव मानता है। हर जीव इस बात जानता और मानता है कि मैं जानता हूँ। पर जानने का स्वरूप नहीं जानता वो, ज्ञाता का स्वरूप नहीं जानता। ज्ञायक का स्वरूप नहीं जानता। वो मिश्रण करता है इसलिए पहले पैराग्राफ में मिश्रण हटाया है, तब अनुभूति हुई है वहाँ। और दूसरे में इतना सरल कर दिया कि ढूँढ रहे हो, ढूँढ रहे हो। वो कहाँ ढूँढ रहे हो? ये है तो सही ये विद्यमान साक्षात्। जो जाननक्रिया हो रही है उसी का नाम अनुभूति है वहाँ। पर्याय की बात है। पर्याय की बात है। पर्याय से आचार्य स्वभाव पर ले गये हैं। ज्ञायक पर ले गये हैं। जानने की पर्याय से ज्ञायक पर ले गए हैं, जाननेवाले पर ले गये हैं। सरल है वो चीज, बहुत सरल। सरल किया आचार्य ने!

मुमुक्षुः- उसका हौसला बढ़ाने के लिए सरल किया।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! इतना सरल कि तू ढूँढता है, तुझे तो थोड़ा संकोच होना चाहिए (कि) ये जो जानना ये है न...... ये-ये कौन है ये? ये जो जानना चल रहा है ये कौन है ये? कि ये आत्मा ही तो है। बस! हो गया और क्या? लेकिन ये जानना सिर्फ इतना; जानना माने वो राग सहित नहीं। ये राग का मिश्रण नहीं (है) वो कल्पना में..... कि वो कल्पना में (जो) राग का मिश्रण करता है, वो नहीं। सिर्फ जानना! जानना शुद्ध है, इतना मान ले वो। वो मिश्रण करता है तो वो अशुद्ध हो जाता है, मिथ्याज्ञान हो जाता है। क्योंकि मिश्रण होता नहीं (है) लेकिन वो कल्पना करता है। तो कल्पना में से अशुद्ध हो गया (तो) वो ज्ञान मिथ्या हो गया। तो वो मिथ्याज्ञान है। उस गाथा में गड़बड़ी बहुत है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! ऐसा ही लगता था कि ये अनुभूति स्वरूप (भगवान आत्मा) आबाल-गोपाल सबको जानने में आ रहा है।

पूज्य बाबूजी:- अनुभूतिस्वरूप माने ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वरूप माने जाननक्रियारूप।

मुमुक्षुः- आबाल-गोपाल सबको जानने में आ रहा है। आ रहा है मतलब कि वर्तमान परिस्थिति में ऐसा हो रहा है?

पूज्य बाबूजी:- वहाँ fullstop (पूर्ण-विराम) क्यों कर दिया? वहाँ पूर्ण विराम क्यों कर दिया? 'किंतु' आगे क्या कहा? कि 'किन्तु' माने 'मैं जाननेवाला हूँ' - ऐसा वो जानता है। लेकिन जाननेवाला क्या होता है - ये नहीं जानता। और जानना क्या होता है - ये (भी) नहीं जानता।

मुमुक्षुः- इतना तो वो जानता है कि मैं जानता हूँ। पर जाननक्रिया क्या है और जानना क्या है वो दोनों ही बात नहीं जानता।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञाता क्या है.... दोनों ही नहीं जानता वो। मिश्रण करता है (तो) पहले मिश्रण को हटाया है, पहले पैराग्राफ में, और ज्ञान को शुद्ध किया - ये अनुभूति। ये बिल्कुल राग-द्वेष, पुण्य-पाप सबसे रहित राग-द्वेष-मोह से रहित सिर्फ जाननक्रिया.... हो गया बस! ये जाननक्रिया सो मैं हूँ - ऐसा (तो) पहले निर्णय करके चला ही है। पहले निर्णय नहीं किया हो तो वो जाएगा ही नहीं। वो यही करता रहेगा कि ये जाननक्रिया मैं हूँ, जाननक्रिया मैं हूँ। वो तो विकल्पमूढ़ होकर मिथ्यादृष्टि ही रहेगा।

मुमुक्षु:- मैं एक ज्ञायक हूँ, वहाँ से शुरू होती है बात।

पूज्य बाबूजी:- वहाँ जाएगा माने, वहाँ पहुँचेगा। इससे वहाँ पहुँचेगा।

मुमुक्षु:- माने हर समय जीव ये तो जानता है कि मैं जानता हूँ।

पूज्य बाबूजी:- जानता हूँ। ये तो निगोदिया भी जानता है। उसको दुख होता है कि नहीं? तो जानता है कि नहीं? तो हो गया बस! दुःख होता है तो जानता है न! तो जानना तो साबित हो गया कि जानता हूँ। क्या जानता है? कि दुखी हूँ - ये जानता है। बस हो गया अज्ञान। और क्या? पर से प्रतिबद्ध हो गया वो, शरीर से प्रतिबद्ध हो गया। **पर के साथ प्रतिबद्धता के कारण** साफ आया है न! **किन्तु पर के साथ प्रतिबद्धता के कारण दुखी रहता है।**

मुमुक्षु:- होता नहीं है लेकिन मिथ्या मान्यता से दुखी (है), अज्ञान हो गया वो।

पूज्य बाबूजी:- अज्ञान हो गया। असली स्वरूप जानने में नहीं आता। वास्तविक स्वरूप जानने में नहीं आता।

मुमुक्षु:- वो इतना जानता है कि मैं जानता हूँ मगर जाननहार क्या है, वो नहीं जानता।

पूज्य बाबूजी:- वो नहीं जानता। जाननक्रिया क्या है ये ही नहीं जानता। पहले जाननक्रिया को तो जाने कि ये मिश्रण रहित है, मिश्रण रहित ही रही है सदा से। लेकिन मैं ये जो इसके parallel (समानांतर) चलनेवाले राग-द्वेष जो हैं और उनका जो प्रतिभास ज्ञान में होता है, तो उस प्रतिभास को मैं ज्ञान न मानकर राग-द्वेष मानता हूँ। तो इस तरह ज्ञान को मिलावटवाला मानता रहा हूँ। बस! यही अज्ञान है सदा से। जैसे मैं रागी-द्वेषी ऐसा अनुभव करता है।

मुमुक्षु:- बराबर! एकत्व कर लिया। मैं ज्ञायक हूँ (ऐसा) अनुभव कर सकता था, फिर भी नहीं कर पा रहा (है)। इसमें आगे आया है (कि) ये जो अनुभूति है सो ही मैं हूँ - ऐसा भेदज्ञान उदित न होने से। वो अनुभूति कौनसी है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! साफ आया न वो 'अनुभूति'। अनुभूति माने वो ज्ञान की पर्याय। ये प्रतिसमय चल रही है प्रतिभासरूप, पर में अहंरुप। पर में अहंरुप नहीं है लेकिन वो है शुद्ध पर ये शुद्ध नहीं मान रहा। ये जो अनुभूति है सिर्फ ज्ञान-ज्ञान, जानना-जानना-जानना, ये जानने में राग-द्वेष कहाँ से आया? क्योंकि ज्ञान तो राग-द्वेष को तोड़ता हुआ उदित होता है और राग-द्वेष जोड़ते हुए आते हैं। वो पर के साथ संबंध जोड़ते हुए आते हैं और ये तोड़ता हुआ आता है क्योंकि

ये वस्तु-व्यवस्था को जानता है कि वस्तु-व्यवस्था में सब टूटे हुए हैं। सब न्यारे-न्यारे अपने-अपने (में) संलग्न हैं बिल्कुल, अवस्थित हैं अपने स्वरूप में सारे के सारे, जगत के जड़-चेतन सारे पदार्थ। ये चीज (तो) जब ज्ञान का उदय होता है और वो ज्ञान जाननक्रिया को मिश्रण रहित जानता है, तो फिर वो शुद्ध हो जाता है, सम्यग्ज्ञान हो जाता है। ये अनुभूति है सो मैं ही हूँ। तो जाननक्रिया को अनुभूति कहा है वहाँ।

मुमुक्षुः- जाननक्रिया को अनुभूति कहा है?

पूज्य बाबूजीः- अनुभूति कहा है, ऐसा।

अनुभूति शब्द कई अर्थों में आता है। अचेतन के अर्थ में आता है, चेतन के अर्थ में। प्रतिसमय चलनेवाली ज्ञान की पर्याय के अर्थ में आता है और अनुभूति शब्द द्रव्य (के) अर्थ में भी आता है, ज्ञायक के अर्थ में।

मुमुक्षुः-[10] ये आ गई बात, इसमें मेरा एक प्रश्न भी था। जाननक्रिया को भी मैं हूँ (यदि) ऐसा लेंगे, तो वो पर्याय की बात नहीं आई?

पूज्य बाबूजीः- नहीं आई। ये जाननक्रिया है सो मैं ही तो हूँ। मैं ही तो हूँ "मैं" पर गया न वजन। जाननक्रिया से छूट गया क्योंकि उससे अलग हो गया। दृष्टि अलग होकर वहाँ थम गई, ज्ञायक पर। क्योंकि अंतिम वही है इसलिए उसमें थम जाती है।

मुमुक्षुः- वहाँ से दृष्टि का विषय सीधा हाथ में आ जाता है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! दृष्टि का विषय हो गया। अनुभूति है सो मैं ही हूँ तो अनुभूति माने सिर्फ ज्ञान, सिर्फ ज्ञान; रागादिक नहीं। रागादिक का प्रतिभास हो उसमें झगड़ा नहीं (है) कुछ। पर उस प्रतिभास को ज्ञान मानेंगे। इसलिए ज्ञान मिश्रण रहित हो गया न! तो बस! मिश्रण रहित जाना कि ये अनुभूति है सो मैं ही हूँ, हो गया सम्यग्ज्ञान।

मुमुक्षुः- ये अनुभूति का अर्थ द्रव्य स्वरूप है ये क्या कहा आपने?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! है न! द्रव्य स्वरूप है। देखो! समयसार का ९०वाँ कलश है, नयों के विकल्पों से निकालने का।

मुमुक्षुः- ९०वाँ कलश कर्ता-कर्म अधिकार है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! कर्ता-कर्म।

मुमुक्षुः- २२५ वाँ पृष्ठ, समयसार शास्त्र। **इसप्रकार जिसमें बहुतसे विकल्पोंका जाल अपने आप उठता है....**

पूज्य बाबूजीः- बहुत विकल्प माने नय के विकल्प।

10 यदि जाननक्रिया को मैं हूँ - ऐसा लेंगे, तो वो पर्याय की बात नहीं हुई? - 27.31 Mins

मुमुक्षुः- ऐसी बड़ी नयपक्षकक्षाको (नयपक्षकी भूमिको) उल्लंघन करके (तत्त्ववेत्ता) भीतर और बाहर समता-रसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है ऐसे अनुभूतिमात्र एक अपने भावको (-स्वरूपको) प्राप्त करता है ।९०।

पूज्य बाबूजी:- ये द्रव्य के अर्थ में (है)। ये द्रव्य के अर्थ में (है)। और जगह भी आता है ७३वीं गाथा में आता है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! ये जाननभावरूप ये ज्ञान का शुद्ध स्वरूप है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! जाननभाव शुद्ध स्वरूप है। माने जाननक्रिया जो है वो लक्षण है, उपयोग जिसे कहते हैं। यहाँ पर उपयोग को अनुभूति कहा।

मुमुक्षुः- ७३ गाथा टीका। **मैं यह आत्मा — प्रत्यक्ष अखण्ड अनन्त चिन्मात्र ज्योति — अनादि-अनन्तनित्य-उदयरूप विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ; (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरणस्वरूप) सर्व कारकोंकी समूहकी प्रक्रियासे पारको प्राप्त जो निर्मल अनुभूति.....**

पूज्य बाबूजी:- निर्मल अनुभूति ये है।

मुमुक्षुः- तो यहाँ निर्मल अनुभूति का अर्थ पर्याय-वाचक नहीं है?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय नहीं है। वो आ गया न! पर्याय आ गयी न **सर्व कारकोंकी समूहकी प्रक्रियासे पारको प्राप्त जो निर्मल अनुभूति,** वो ज्ञायक है।

मुमुक्षुः- माने वो यहाँ त्रिकाल द्रव्य के अर्थ में में कहा गया है। **उस अनुभूतिमात्रपनेके कारण मैं शुद्ध हूँ;** ज्ञानी ऐसा विचार करता है कि मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ।

पूज्य बाबूजी:- पर्याय से थोड़ी (ना) शुद्ध मान रहा है। मैं शुद्ध हूँ - जो सम्यग्दर्शन का विषय है न, वो सम्यग्ज्ञान का विषय है।

मुमुक्षुः- अनुभूतिमात्रपना इस शब्द का अर्थ क्या है प्रभु?

पूज्य बाबूजी:- अनुभूतिमात्र माने जिसमें ज्ञान भरा हुआ है। ज्ञान भरा हुआ है जिसमें, ज्ञान से लदा हुआ है जो, ऐसा; लबालब भरा हुआ है-ऐसा, ऐसा अनुभूतिमात्र। जाननक्रिया नहीं, जाननक्रिया नहीं। नहीं! जाननक्रिया नहीं। अनुभूतिस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनुभूतिमात्र, ज्ञानमात्र; ज्ञानमात्र माने आत्मा - ऐसा आया न।

मुमुक्षुः- द्रव्यभाव सूचक है उसका अर्थ।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! द्रव्यसूचक।

मुमुक्षुः- द्रव्यसूचक।

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि विषय वो चल रहा है अनुभूति का। विषय अनुभूति का चल रहा है। पर इस अनुभूति के अवलंबन से वो अनुभूति प्रगट होती है। इस अनुभूति के अवलंबन से वो अनुभूति प्रगट होती है, उसका नाम पर्याय।

मुमुक्षुः- जो निर्मल पार उतरी हुई जो अनुभूति है, उसके अवलंबन से (वो अनुभूति) प्रगट होती है।

पूज्य बाबूजीः- मैं तो अनुभूतिमय हूँ सदा। वो ही है न बात कि जब ये विचार करेगा (कि) मैं तो सदा ही अनुभूतिमय हूँ। मेरा ज्ञान कहाँ चला गया? ज्ञान कहाँ चला गया मेरा? इसलिए सदा ही अनुभूतिमय हूँ। मुझे अनुभूति की आवश्यकता नहीं है। इसलिए उस अनुभूति को तो वो हेय समझता है, होनेवाली अनुभूति को तो। तब वो अनुभूति होती है। उसको हेय समझे तो वो अनुभूति होती है। तिरस्कार न करे, निरादर न करे, राग-द्वेष न करे (वो) हेय है। हेय माने मैं नहीं। हेय का अर्थ ऐसा। उपादेय माने मैं (और) हेय माने 'मैं नहीं' - ऐसा।

मुमुक्षुः- बस! वो द्वेषवाचक वाच्य नहीं (है)?

पूज्य बाबूजीः- नहीं नहीं! द्वेषवाचक (का अर्थ कि) वो तो राग-द्वेष करना सिखाया आचार्य ने।

मुमुक्षुः- (और) ये तो नहीं हो सकता।

पूज्य बाबूजीः- संभव नहीं है न!

मुमुक्षुः- सीधा द्रव्य की बात आ गई बाबूजी!

पूज्य बाबूजीः- हाँ! पर के प्रति राग-द्वेष नहीं तो यहाँ कहाँ राग-द्वेष (होगा)?

मुमुक्षुः- वो जो अनुभूति प्रगट हुई वो षट्कारक की प्रक्रिया वाली?

पूज्य बाबूजीः- नहीं! नहीं! षट्कारक की प्रक्रिया से पार ....षट्कारक का जो परिणमन हो रहा है उससे पार ... उससे तो अशुद्ध हो जाती है वो। उसको मिला दे तो अशुद्ध हो जाती है।

मुमुक्षुः- इनका प्रश्न था प्रगट जो हुई, वो अनुभूति तो पर्यायवाली हुई कि नहीं?

पूज्य बाबूजीः- वो प्रगट अनुभूति, वो (तो) षट्कारकों की प्रक्रिया.... जो अनुभूति प्रगट हुई वो षट्कारकों की प्रक्रिया (है)।

मुमुक्षुः- और प्रगट है अनुभूति, वो तो द्रव्य है।

पूज्य बाबूजीः- वो सदा (ही) प्रगट है। जिसमय ये ज्ञायक सदा प्रगट है अनुभूतिस्वरूप, वो अनुभूतिस्वरूप १७-१८ गाथा का अलग रहा और ये अलग है। ये सीधा द्रव्य है ये, और वो पर्याय है प्रतिसमय चलने वाली।

मुमुक्षुः- बराबर! माने ज्ञानी के हृदय में ये उनका अर्थ रहता है। बाबूजी! अच्छा बताया आपने। इसमें क्या अनुभूति में क्या, एक ही बात मान ली जाती है कि बस वो पर्याय की बात है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! पर्याय की मान लेते हैं। वो द्रव्य के अर्थ में आती है पर; और जगह भी आयी है।

मुमुक्षुः- इसका कोई दृष्टांत?

पूज्य बाबूजी:- दृष्टांत दिया ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञायक हूँ।

मुमुक्षु:- (कृपया) लौकिक दृष्टांत से साबित करें, सिद्ध करें? ......

एक समय भले एक विद्या का उपयोग चले।

पूज्य बाबूजी:- एक समय चले।

मुमुक्षु:- (परंतु) स्वरूप तो सभी विद्यायों का पड़ा है।

पूज्य बाबूजी:- पड़ा है न! ढीम-ढीम पड़ा है। ढीम पड़ा है। ज्ञान का ढीम उसका नाम यहाँ अनुभूति।

मुमुक्षु:- मुझे अनुभूति लेनी कहाँ है? पानी (प्राप्त करनी) कहाँ है? मैं तो अनुभूति (स्वरूपी) हूँ न सदैव!

पूज्य बाबूजी:- सदैव अनुभूतिस्वरूप! उसमें तो बहुत पश्चाताप हुआ (कि) अभी तक अनुभूति नहीं हुई, अभी तक अनुभूति नहीं हुई। तुझे अनुभूति प्यारी है कि वो प्यारा है? कौन प्यारा है तुझे? भाई! एक बार उसकी ओर देख ले तो अनुभूति हो जाती है। ये कहता है (कि) अनुभूति नहीं हुई, अनुभूति नहीं हुई। तो कैसे होगी अनुभूति? तू अनुभूति में उलझा है, वो प्यारी है तुझे तो।

मुमुक्षु:- दृष्टी वहाँ पड़ी है।

पूज्य बाबूजी:- वहाँ पड़ी है। और उधर एक बार देखते ही अनुभूति हो जाती है। तो इसको हेय समझे पहले तो, हेय समझे।

मुमुक्षु:- माने मैं-पना करने लायक नहीं है, उतना समझे।

पूज्य बाबूजी:- बस इतना! उतना माने बहुत बड़ी है बात।

मुमुक्षु:- अनंत पुरूषार्थ है इसमें।

पूज्य बाबूजी:- बहुत बड़ी बात है।

मुमुक्षु:-[11] प्रभु! एक प्रश्न है ६वीं गाथा में....

पूज्य बाबूजी:- प्रभु क्यों कहते हो आप? मैं तो सामान्य आप लोगों जैसा ही मैं हूँ।

मुमुक्षु:- भगवान आत्मा!

ये छठवीं गाथा में आया है कि **ज्ञेयाकार होनेसे उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;** तो **ज्ञेयाकार होनेसे उस 'भाव'....** "भाव" शब्द लिखा गया है into inverted comma में।

पूज्य बाबूजी:- भाव माने ज्ञायक.... पारिणामिकभाव, परम पारिणामिकभाव।

मुमुक्षु:- ज्ञेयाकार होनेसे उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; तो ये ज्ञेयाकार, उस 'भाव', ज्ञायकपना और प्रसिद्धि - ये सब लफ्जों का थोड़ा सा विस्तारण ज्यादा हो जाए।

11 समयसार - ६ वीं गाथा संबंधी प्रश्न। - 37.40 Mins

पूज्य बाबूजी:- सीधा है वो। **ज्ञेयाकार होनेसे उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है** माने चूँकि वो ज्ञेयाकार होता है.... ज्ञेयाकार माने ज्ञानाकार - वो लेना है अपने को। तो वो ज्ञानाकार होता है और वो ज्ञानाकार ऐसे होते हैं जैसे (कि) ज्ञेय होते हैं। ज्ञानाकार ऐसे होते हैं, वो प्रतिभास ऐसा होता है कि जैसे ज्ञेय होते हैं। इसलिए इस भाव को ज्ञायकता प्रसिद्ध है, इसलिए इसको ज्ञायक कहते हैं - ऐसा सीधा अर्थ है उसका। उसमें बहुत गहराई नहीं है कुछ।

ज्ञेयाकार होने से माने जैसा जगत में ज्ञेय है पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और अन्य जीव, तो उनके आकाररूप होने से माने उनका प्रतिभास होने से इस भाव को ज्ञायक कहते हैं। इस आत्मा को ज्ञायक कहते हैं। ज्ञायक जो एक भाव है, वो पहले आया न वो है ज्यादा वजनी चीज। इसके ऊपर जो आया है पहले कि **ज्ञायक जो एक 'भाव' है** वो है असली चीज कि उसको भाव नहीं माना इसलिए मिथ्यादृष्टि रहा अनादिकाल से। उसको माना ही नहीं कि मैं तो अशुद्ध हूँ वर्तमान में।

मुमुक्षु:- एक हूँ - वो भूल गया।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञायक जो एक 'भाव' है ये है। **ज्ञायक जो एक 'भाव' है** ये बहुत वजनदार है चीज कि जो ज्ञायक वो एक भाव माने अस्तित्वस्वरूप चीज़ है वो। वो तूने नहीं मानी, तूने नहीं मानी। (उसको) नश्वर केवल पर्यायमात्र माना और वो है स्थाई। बहुत वजनी है वो बात।

ज्ञायक जो एक 'भाव' है माने भाव है माने वो अस्तिस्वरूप है वो। पर तूने अस्तित्व स्वरूप माना ही नहीं। आज ही अस्ती स्वरूप इस समय मान ले तो इसी समय निहाल है। इसमें विशेष नहीं है। **ज्ञेयाकार होनेसे उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है** उसे, ठीक है। ज्ञेयाकार होने से उसे ज्ञायक कहा जाता है। लेकिन तो भी **उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;** माने वो जो ज्ञेयाकार बनाता है, ज्ञेय जैसे आकार बनाता है उसमें ज्ञेय का कोई अहसान नहीं (है)। उसमें कोई obligation (आभार) नहीं है ज्ञेय का। वो स्वयं अपने (आकार) बनाता है इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।

मुमुक्षु:- इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए नहीं है।

मुमुक्षु:- वो जाननभावरुप होता है इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं होती (है)।

पूज्य बाबूजी:- निरपेक्ष है वो माने। कि वो निरपेक्ष है इसलिए (उसमें) ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। ज्ञेय को कारण नहीं मानता, ज्ञेय से प्रभावित नहीं मानता। ज्ञेय का असर नहीं मानता, ज्ञेय का कोई सहयोग नहीं मानता लेकिन स्वयं रचना करता है ज्ञेयाकार जैसी। इसलिए उसको ज्ञायकता प्रसिद्ध है क्योंकि सारे लोकालोक (को) देखो अथवा इस एक पर्याय को देखो, हो गया।

मुमुक्षु:- सारे लोकालोक (को) देखो!

पूज्य बाबूजी:- अथवा इस एक पर्याय को देखो, केवलज्ञान की एक पर्याय को देखो (वो) एक ही बात है। एक ही बात है। फिर लोकालोक को देखने की तकलीफ क्यों करते हो? भाई! ये अपनी पर्याय ही देख लो न एक। इसमें सारे अपने गुण, अपना द्रव्य और सारा लोकालोक, वो सब उस एक पर्याय के वश (है)। कितने सुख की चीज़ है! कितने आराम की चीज है! वो तो लोकालोक को देखने जाओ और एक केवल अपनी पर्याय को देख लो। इसमें सब आ गया, ज्ञायकाकार आ गया, सारे गुण आ गये, सारी पर्यायें आ गईं और सारा लोकालोक आ गया।

मुमुक्षुः- तो बाबूजी! जो ज्ञेयाकार हुआ है उस भाव को ज्ञायकभाव बोला है न।

पूज्य बाबूजी:- हाँ!

मुमुक्षुः- जो ज्ञेयाकार हुआ है वर्तमान में?

पूज्य बाबूजी:- नहीं! नहीं! पर्याय में जो ज्ञेयाकार होता है, ज्ञेयाकार माने ज्ञानाकार। तो पर्याय में वो जो ज्ञेयाकार अर्थात् ज्ञानाकार होता है इसीलिए उसे ज्ञायक कहते हैं। लेकिन फिर भी उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं (है)। माने ज्ञेयाकार होने से उसमें ज्ञेय का कुछ नहीं है - ये कहना चाहते हैं आचार्य। ज्ञेयाकार होते हुए भी उसमें ज्ञेय का कुछ नहीं है। वो सब ज्ञान ही ज्ञान है। बस वहीं आते हैं अपन।

मुमुक्षुः- बराबर! ज्ञान ही ज्ञान है तो ज्ञेयकृत अशुद्धता कुछ नहीं है?

पूज्य बाबूजी:- ज्ञेयकृत अशुद्धता बिल्कुल नहीं है। ज्ञेय कहाँ कारण था? ये तो अपनी रचना करता है स्वयं निरपेक्ष अलग, बिल्कुल मौनभाव से चुपचाप; जैसे विद्यार्थी वो परीक्षा देता है।

मुमुक्षुः- चुपचाप अपने स्वयं के भाव से।

पूज्य बाबूजी:- चुपचाप! निरपेक्ष भाव से, ज्ञेय से अत्यंत निरपेक्ष। वो रचना करता है ज्ञेय जैसी इसलिए उसे ज्ञायक कहते हैं। उसे ज्ञायकता प्रसिद्ध है बस इसलिए उसे ज्ञायक कहते हैं। वो एक ही बात है।

मुमुक्षुः- भाव का अर्थ? माने परम पारिणामिकभाव?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! भाव माने? आया है न! भाव में परम पारिणामिकभाव में आया न, इसीलिए यहाँ कहा कि वो एक भाव है। भाव माने अस्तित्व स्वरूप है - यहाँ ऐसा लेना। अस्तित्व स्वरूप है वो। क्योंकि ये ज्ञायक को अस्तिस्वरूप मानता नहीं है। इसने तो पर्यायमात्र को ही सारा ज्ञायक मान लिया था। संपूर्ण द्रव्य जो है वो पर्यायमात्र को ही माना था। तो ज्ञायक का तो अभाव कर दिया था इसने। चिन्मात्र आत्मा है उसका तो अभाव ही कर दिया था। तो इसलिए कहता था वर्तमान में अशुद्ध हूँ, बस। इसलिए वो एक भाव है, बहुत ही वजनदार है वो चीज। इतना स्वीकार कर ले अभी इसी लाइन में कि ज्ञायक जो है, वो एक भाव है। एक भाव है माने अस्तिस्वरूप चीज

है वो जो तूने अब तक स्वीकार नहीं की। अब तक ये अगर स्वीकार कर लेता तो होता ही नहीं। यहाँ ही नहीं होता, सिद्धों में जा मिलता। वो एक भाव है - ऐसा वजन है उसमें।

मुमुक्षु:- बाबूजी! ज्ञेयाकार को देखते ही उसे ऐसा हो जाता है कि मैं एक ज्ञायकभाव हूँ।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञेयाकार को देखते हुए कुछ नहीं। ज्ञेयाकार को (तो) देखता ही नहीं है।

मुमुक्षु:- मतलब उसका स्वरूप समझने से।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञेयाकार तो ज्ञेय के पास है, ये तो अपने ज्ञानकार को देखता है।

मुमुक्षु:- ज्ञेयाकार मतलब वो ज्ञेय नहीं, अपना ही ज्ञान है वो। वो अपना ही ज्ञान है। तो उसको देखते ही, वो समझते ही वो मैं एक ज्ञायकभाव हूँ - ऐसी बात आती है।

पूज्य बाबूजी:- ऐसी बात आती है।

मुमुक्षु:- बस! वो ही कहना है।

पूज्य बाबूजी:- वो तो अभी स्पष्टीकरण कर रहे हैं आचार्य। आगे स्वरूपप्रकाशन की बात आगे आएगी। अभी तो स्पष्टीकरण है ये।

मुमुक्षु:- अज्ञानी ने आज तक, अभी तक ये नहीं माना कि ये एक भाव है। हमेशा पर्याय दृष्टि.....

पूज्य बाबूजी:- ज्ञायक अस्ति स्वरूप है ये नहीं माना उसने (और) पर्याय को ही संपूर्ण आत्मा माना। इसलिए पर्याय के नाश में इसको तीव्र आकुलता हुई, अनंत अकुलाता हुई, पर्याय के नाश में। वरना पर्याय के नाश में आकुलता कि कहाँ जरूरत है? पर्याय तो अमर हो गई। जो पहले मौत-मौत करती थी, मौत का अनुभव करती थी, उस पर्याय ने जब ज्ञायक की ओर देखा तो वो तो अमर हो गई; कि मैं तो अमर हूँ अब वो ये बोलती है। (अब) अमरता की अमराइयों में केली करती है वो, अब मौत का नाम ही नहीं लेती है वो। कि मौत किसको? जीवन को मौत होती है क्या? मैं तो जीवन तत्त्व हूँ।

मुमुक्षु:- कार्य सम्पन्नता यहीं हो जाती है यदि ऐसी मान्यता चले तो कि 'एक ज्ञायकभाव हूँ' - यहाँ से?

पूज्य बाबूजी:- वो तो हो जाता है, सफल हो जाता है। सफलता में क्या है? एक भाव स्वीकार कर लेता है तो उससे सब कुछ हो जाता है।

मुमुक्षु:- हमेशा उसने अपने स्वरूप को उत्पाद-व्ययरूप (ही) माना है?

पूज्य बाबूजी:- उत्पाद-व्ययरूप माना है। आत्मा को ही उत्पाद-व्ययरूप माना है न। श्रद्धा उत्पाद-व्ययरूप नहीं मानती। श्रद्धा तो जो है वो उसको ध्रुव ही मानती है। और श्रद्धा आत्मा के सिवाय दूसरा नाम देती ही नहीं है। चाहे वो पुद्गल हो, धर्म हो, अधर्म हो, आकाश हो (या) काल हो, अपनी पर्याय हो राग-द्वेष वाली, कुछ भी हो। वो तो (बस) आत्मा-मैं; इस मैं के सिवाय उसके पास (कोई) दूसरी बात भी नहीं (है) श्रद्धा के पास। इसलिए उसमें दूसरा पहलू नहीं होता, श्रद्धा

में। चाहे पर में हो (या) स्व मैं हो, किसी में (भी) हो, उसमें दूसरा पहलू होता ही नहीं है। मैं; वो तो आत्मा ही मानती है वो, अहंरूप चलती है। वो सारे जगत को आत्मा ही मानती है। जो भी उसका विषय बनेगा "मैं", बस।

मुमुक्षु:- यहाँ बाबूजी ज्ञान की करामात आ गई।

पूज्य बाबूजी:- अहंरूप, अहंरूप। (और) ज्ञान भी वही करेगा। मिथ्यादर्शन में भी वही करता है। ज्ञान का भी अहम् ऐसा ही होता है। पर ज्ञान में तो (एक) दूसरा विकल्प होता है (कि) मेरा। जो अपने से, जैसे शरीर से दूसरे हैं मकान-परिवार दुनिया, ये मेरे हैं - ज्ञान में ऐसा विकल्प हो जाता है, श्रद्धा में ऐसा नहीं होता। ज्ञान में ऐसा कर्ता-कर्म आ जाता है। कर्ता-कर्म अधिकार इसीलिए लिखा है।

नहीं तो ज्ञान की एक और भी स्थिति होती है, अज्ञान की। अज्ञानरूप एक और भी स्थिति होती है। वो है कर्ता-कर्मरूप (कि) मैं कर्ता और ये मेरे कर्म। और दूसरी एक स्थिति जो उसी में आ गई पहले अधिकार में (कि) "मैं"। जैसा श्रद्धा का अहम् है और वैसा ही ज्ञान का अहम् है। जैसे श्रद्धा का विषय शरीर हुआ तो उसने माना कि मैं आत्मा हूँ, (तो) उसी तरह ये भी आत्मा मानता है, ज्ञान भी। ज्ञान भी (शरीर को) आत्मा मानता है। शरीर ही आत्मा है बस और क्या है? यदि इससे लंबा (अर्थात् ज्यादा) माने, माने लंबा माने तो अनंत मानना पड़ेगा। तो ऐसा मानेगा तो दुख क्यों होगा? ये ठीक है! ये तो पर्याय की करवट है अमरता की। सम्यग्दृष्टि को तो ऐसा अनुभव होता है, प्रतिसमय ऐसा अनुभव हो उसे। अनुभव माने ऐसा पड़ा (ही) है, प्रतिसमय।

मुमुक्षु:- पड़ा है। होता है नहीं?

पूज्य बाबूजी:- पड़ा है। होता है माने वो अनुभूति जिसे कहते हैं, वो नहीं होती। प्रतिसमय नहीं होती है न। जैसे बाह्य पदार्थों में हो तो वो भी पड़ा है वो 'अमर हूँ मैं, मौत नहीं है मेरी'। मौत नहीं है ऐसा भीतर से (लगता है)। बाहर से अगर जैसे कोई किसी जानवर को देख ले तो भाग जाये। कोई डरानेवाला आ जाए तो भाग जाए। बाहर से तो ऐसा होता (है) सम्यग्दृष्टि को। और भीतर से परिणमन चलता है निरन्तर (कि) अमर हूँ, मौत नहीं है (मेरी)। मौत आती ही नहीं मेरे को। जीवन तत्त्व को मौत कैसे आएगी? जो अनादि-अनंत जीवन तत्त्व है, उसकी मौत कैसी? तो ये भी अमर हो जाती है पर्याय (जो कि) मरने वाली है। (जो) अंतरूप है, प्रतिसमय व्ययरूप है, उत्पादरूप है, वो भी अमर हो जाती है। अमरता का अनुभव करने में ये भी अमर हो जाती है और बोलने लगती है (कि) मैं अमर हूँ। मैं अमर हूँ - ये बोलने लगती है। तो अब दुख कैसे होगा? दुःख नहीं होता है। वो (जो) दुख होता (हुआ दिखता) है वो सब ऊपर ही ऊपर तैरनेवाली चीजें हैं सारी। आया न **ऊपरितरन्ति** ऊपर ही ऊपर तैरते हैं सब। भाई जितने भी हैं, ज्ञायक के अतिरिक्त जितने भाव हैं वो सब ऊपर ही ऊपर तैरते हैं। अनुभूति भी बाहर निकल गई पर्याय वाली, वो भी बाहर है। वो भी बाहर निकल गई। सब अदृश्य हैं, एकमात्र ज्ञायक बस; अनुभव में ऐसा (है)। हैं

सब पर्याय; हो सब पर्याय में ही रहा है लेकिन वो पर्याय (भी) द्रव्याकार होकर द्रव्य बन गई। इसीलिए प्रतिसमय अमरता का अनुभव है (उसको)। अनादि-अनंत द्रव्य में क्या होना है? और मैं तो वो हूँ।

मुमुक्षुः- अनादि अनंतद्रव्य में क्या होना है? माने मौत तो होनी नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- मौत तो होनी ही नहीं है। और मैं वही हूँ। मैं भी अमर (हूँ)। ये प्रतिसमय मरनेवाली पर्याय अमर हो गई। प्रतिसमय अनुभूति बदलती है न! वो प्रतिसमय है तो सही, उत्पाद-व्यय पर वो तो निकाल दिया इसने सारा का सारा, और ज्ञायक को पसार दिया।

मुमुक्षुः- तो मरकर भी अमर हो गई।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! अमर हो गया। वहाँ उत्पाद-व्यय का अनुभव थोड़ी (ना) होता है। वहाँ तो अनादि-अनंत का अनुभव होता है।

मुमुक्षुः- बराबर! और अनादि से उत्पाद-व्यय का अनुभव उसे हो रहा था।

पूज्य बाबूजीः- उसे हो रहा था। उत्पाद-व्ययरूप ही अपने को मानता था।

मुमुक्षुः- तब जब ये स्वीकार किया कि **ज्ञायक जो एक 'भाव' है** 'है' तो उत्पाद-व्यय से रहित (ऐसा) उसने स्वीकार कर लिया है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञायक एक भाव है माने अस्तिस्वरूप है वो, बस। वो तो सब उसमें पहले विशेषण दे दिए न कि वो संक्रमित होता ही नहीं (है) पुण्य और पाप में, ऐसा अनादि-अनंत है। ये सारा पहले आ गया न! ऐसा ज्ञायक जो एक भाव है वो जबरदस्त है चीज़।

मुमुक्षुः- और उत्पाद-व्ययरूप नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- नहीं है। नहीं है, वो तो पहले ले लिया अनादि-अनंत।

मुमुक्षुः- उसका कारण स्वरूपप्रकाशन?

पूज्य बाबूजीः- उलझन नहीं है, सब सुलझ जाती है। सब सुलझ जाती है। वो...पर्याय-पर्याय की (ही) याद आती है न अपने को बार-बार। पर्याय को तो यूँ कह देना चाहिए कि यह तो द्रव्य ही बन गई है। अभी इसकी क्या बात करना? ये तो द्रव्य बन गई। माने इसका गोत्र ही बदल गया। गोत्र बदल गया इसका। पहले क्रिया थी (मगर) अब निष्क्रिय हो गई। पहले मौत थी अब अमर हो गई।

मुमुक्षुः- पहले उत्पाद-व्यय थी अब त्रिकाल हो गई।

पूज्य बाबूजीः- अब त्रिकाल हो गई। त्रैकालिक हो गई।

मुमुक्षुः- उसके आगे कहा है कि **क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्थामें जो ज्ञायकरूपसे ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशनकी अवस्थामें भी ....** तो कारण क्या (है)?

पूज्य बाबूजीः- वो है बढ़िया (बात)! वो बहुत बढ़िया बात है कि **ज्ञेयाकार अवस्थामें जो ज्ञायकरूपसे ज्ञात हुआ** माने ज्ञेयाकार अवस्था में अज्ञानी को तो वो ज्ञेयाकार लगता है माने उसे

ज्ञेय का आकार ही लगता है। वो ज्ञान में ज्ञेय का अस्तित्व मानता है तो उसे ज्ञेयाकार लगता है ज्ञान। तो वो ज्ञेयाकार नहीं, पर उस ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञानी को वो ज्ञायक (ही) अनुभव में आता है। वो जो ज्ञेय जैसी आकारवाली जो अवस्थायें हैं आत्मा में अर्थात् ज्ञानाकार हैं, तो वो सब उसमें वो ज्ञायक ही उसको अनुभव में आता है। उसमें बाह्य पदार्थों के समय भी - ये उसमें कहना है आचार्य का।

तो **वह स्वरूपप्रकाशनकी अवस्थामें भी** 'भी' शब्द है यहाँ पर। इसका अर्थ ये है कि ये ऊपर ले जाती है वो (बात) कि **ज्ञेयाकार अवस्थामें जो ज्ञायकरूपसे ज्ञात हुआ** .... कि जो ज्ञेयाकार अवस्था होती है उसमें भी वो अपने आप को ज्ञायक ही अनुभव करता है। तो स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में तो ज्ञायक हूँ - ये अनुभव कर ही रहा है साक्षात्। उसमें तो कर ही रहा है लेकिन उसमें भी ज्ञायक ही अपने आपको मानता है, ज्ञेयाकार अवस्था में भी। क्योंकि उस समय तो बहिर्मुख है न! जिस समय यह ज्ञेयाकार अवस्था हो रही है उस समय तो उपयोग बहिर्मुख है, लेकिन उसमें (भी) ज्ञानी को ज्ञायक अनुभव में आता है। तो ज्ञायक मानता है वो ज्ञेयाकार अवस्था में। स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है। स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में मैं अनुभव कर रहा हूँ - ऐसा नहीं (है)। पर्याय नहीं पर ज्ञायक हूँ - ऐसा। और ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायक ही हूँ। **ज्ञायकरूपसे ज्ञात हुआ** इसमें लिखा है।

मुमुक्षु:- हाँ! जानने में आया। जानता हूँ नहीं (बल्कि) जानने में आया।

पूज्य बाबूजी:- जानने में आया। ज्ञायकपने जानने में आया ज्ञेयाकार अवस्था में। अब इससे अधिक और क्या होगा? कि बहिर्मुख उपयोग में भी वो जो है ज्ञानियों को ज्ञायक ही अनुभव में आता है, प्रतिसमय। माने माने बैठा है वो उसको। माने बैठा है हर समय। उपयोग में चाहे कुछ भी हो!

मुमुक्षु:- माने ज्ञानी होने के बाद अपनी वर्तमान की परिस्थिति का वर्णन हो गया?

पूज्य बाबूजी:- हाँ हो गया न! पूरा हो गया। हर समय माने प्रतिसमय जो ज्ञानी है उसको तो ज्ञायक ही अनुभव में आता है। **ज्ञायकपने जानने में आया** माने उसने जब देखा कि ये ज्ञानाकार कौन है? कि ये तो ज्ञायक ही है ये तो। ये तो ज्ञायक ही है। तो स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में तो ज्ञायक है ही सही। वो तो प्रत्यक्ष ही ज्ञायक मान रहा है।

मुमुक्षु:- कर्ता-कर्म का अनन्यत्व ही तो....

पूज्य बाबूजी:- तो हो गया न कर्ता-कर्म का अनन्यत्व। वहाँ भी कर्ता-कर्म का अनन्यत्व है क्योंकि ज्ञायकपने जानने में आया न। तो वहाँ भी कर्ता-कर्म का अनन्यत्व है। स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी कर्ता-कर्म का अनन्यत्व होने से ज्ञायक ही है। तो कर्ता-कर्म का अनन्यत्व माने 'मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञायक' बस। ऐसा भेद भी समाप्त होकर 'मैं ज्ञायक'।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! कर्ता-कर्म का अनन्यत्व मतलब 'मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञायक' - ऐसा अनन्यत्व (भी) समाप्त होकर मैं ही ज्ञायक (बस)।

पूज्य बाबूजी:- मैं ही ज्ञायक, मैं ज्ञायक।

मुमुक्षु:- मगर स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में तो ऐसा कोई भेद नहीं है। अभेद परिणमन ही है। फिर यहाँ कर्ता-कर्म का अनन्यत्व क्यों बोल रखा (है)?

पूज्य बाबूजी:- कर्ता-कर्म का अनन्यत्व.... ये पहले अज्ञान अवस्था में अपने को तो और ज्ञेय मेरे जानने में आनेवाले - ऐसा मानता था तो वो हुए इसके कर्म। (लेकिन) अब कर्म हो गया ज्ञानाकार। जब ज्ञानी हुआ तो वो जो प्रतिसमय जो प्रतिभास हैं ज्ञानाकार, तो प्रतिभास वो (तो) हो गया कर्म और ये हो गया ज्ञाता। है विकल्प ये भी, लेकिन ये ज्ञाता हो गया है (और) वो प्रतिभास जो है वो हो गया इसका कर्म। और अज्ञानी मानता था (कि) मैं ज्ञाता और ये जगत मेरा ज्ञेय, ये रागादिक मेरे ज्ञेय - वो ऐसा मानता था, अज्ञानी।

मुमुक्षु:- बराबर! तो परसन्मुखता ही थी १०० परसेंट।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! १०० परसेंट माने सदा ही ज्ञायक है। सदा ही ज्ञायक है, चाहे पर को जाने.... पर को जानना कहा जाए अथवा स्व को जाने, ज्ञायक ही है। प्रतिसमय ज्ञानी को ज्ञायक ही अनुभव में आता है। इसे ज्ञायक की अनुभूति कहते हैं सतत्, लगातार। वो ज्ञान तो बहिर्मुख है पर बहिर्मुख होने पर भी भीतर (तो ये) पड़ा है न कि 'मैं तो ज्ञायक ही हूँ'। ऐसी श्रद्धा की पर्याय चल रही है और ज्ञान की पर्याय ने भी एक बार उसको प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है, इसलिये वो लब्धरूप में पड़ी है वो ज्ञान-चेतना। उसको ज्ञान-चेतना कहते हैं, लब्धरूप।

मुमुक्षु:-[12] ज्ञान-चेतना की परिणति किसको कहते हैं?

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान-चेतना की परिणति स्वानुभूतिरूप।

मुमुक्षु:- स्वानुभूतिरूप?

पूज्य बाबूजी:- स्वानुभूतिरूप।

मुमुक्षु:- और वो स्वानुभूति आनंदरूप?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! आनंदरूप तो है ही सही। इसका फल आनंद होता है। ज्ञान-चेतना माने स्वानुभूति। ज्ञान में जो चेतता है माने आत्मा में चेतता है।

मुमुक्षु:-[13] ज्ञान में जो चेतता है वो ज्ञान-चेतना, माने आत्मा में चेतता है।

बाबूजी! ये परिणति शब्द बहुत जगह आता है (तो) वास्तविक परिणति (मतलब)?

पूज्य बाबूजी:- परिणति माने क्या? परिणति माने क्रिया; क्रिया। क्रिया-कर्म-कार्य कुछ भी नाम लो। एक पर्याय का व्यय होकर दूसरी पर्याय होना। बस!

12 ज्ञान-चेतना की परिणति किसको कहते हैं? - 1.01.33 Hours

13 परिणति माने क्या? - 1.02.03 Hours

मुमुक्षुः- एक छोटा सा last (अंतिम) प्रश्न है। सम्यग्दर्शन की practise ज्ञानाकार-ज्ञान ज्ञायक के साथ ही स्वयं को अखंडरूप एकरूप अनुभव करे (तो) इस प्रकार होती है या दूसरे किसी तरीके से होती है?

पूज्य बाबूजीः- यही रीति (है)। यही रीति। बस हो गया प्रश्न.... अच्छा है सीधा अर्थ। स्वयं ही उत्तर दे दिया है न उसमें। अंतर्मुख होने की पद्धति यही है और (कोई) दूसरी पद्धति नहीं है। परप्रकाशक माने तो वो ज्ञान बाहर गए बिना रहेगा ही नहीं। उपयोग बाहर गए बिना रहेगा ही नहीं।

मुमुक्षुः- परप्रकाशक माने.....

पूज्य बाबूजीः- तो उपयोग बाहर गए बिना नहीं रहेगा। और जब स्वप्रकाशक माने तब अनुभूति हुई तो फिर परप्रकाशकता व्यवहारनय (हो गई)। (फिर) वो व्यवहार का विषय। और अगर अनुभूति नहीं हुई और परप्रकाशक माने तो उसका नाम मिथ्यादर्शन-अध्यवसान।

मुमुक्षुः- माने स्वपरप्रकाशक की बात तो अनुभव के बाद है।

पूज्य बाबूजीः- स्वपरप्रकाशक भी व्यवहारनय का विषय है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का विषय है। (स्वपरप्रकाशक) भी व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षुः- माने पर्याय का स्वरूप होने से व्यवहारनय का विषय है?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि वो 'स्व' के साथ 'पर' भी आ गया न, तो परप्रकाशक कहा न (उसको)। और परप्रकाशकता का स्वरूप क्या है? कि वो स्वप्रकाशकता ही परप्रकाशता कहलाती है और ये मानता है परप्रकाशक। ये परप्रकाशक ही मानता है। तो वो परप्रकाशक मानता है तो (उसको) अपने में पर का अस्तित्व मानना पड़ता है। तन्मय मानना पड़ता है अपने आपको पर से। बस! ये हो गया अज्ञान और मिथ्यादर्शन।

मुमुक्षुः- मानना पड़ता है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! मानना पड़ेगा न! जब पर का अस्तित्व अपने में होगा तो अपने को पररूप मानना ही पड़ेगा। तो वो मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान हो गया।

तन्मय मानना पड़ेगा न उससे? मेरे में पर का प्रकाशन होता है इसका सीधा अर्थ (ये है कि) वहाँ प्रकाशन तब होगा जब पर तेरे में आएगा, तेरी मान्यता के अनुसार। और वो (तो) आता नहीं है और तू मान ही रहा है; मान रहा है तो आकुलता नहीं मिटेगी। होता नहीं (है) लेकिन मान रहा है इसलिए आकुलता मिटनेवाली नहीं है। क्योंकि पर मेरे भीतर आता है - यही तो आकुलता का कारण कहा। ये (ही) तो आकुलता का कारण है। और ये मान ले कि मेरे तो वज्र (की) दीवारे हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ही वज्र का बना हुआ मेरा तो। Sealed सीमायें हैं; किसी का प्रवेश, माने अणु का ही प्रवेश नहीं हो सकता।

मुमुक्षुः- यहाँ ही बाबूजी स्व-पर का विभाग करना चाहिए, बस।

पूज्य बाबूजी:- बस! स्व-पर का विभाग, पर्याय तक का विभाग कर डालो।

मुमुक्षु:- बराबर! पर में सब आ गया।

पूज्य बाबूजी:- पर्याय... अपनी पर्याय तक का विभाग कर डाले वो। एकमात्र को ज्ञायक को सिंहासन पर रखे न, सर्वोच्च सिंहासन पर एकमात्र, चिन्मात्र।

मुमुक्षु:- परप्रकाशक को माने और अनुभव के पहले माने, तो वो मिथ्या।

पूज्य बाबूजी:- मिथ्यादर्शन-अध्यवसान।

मुमुक्षु:- और अनुभव के बाद में है.....

पूज्य बाबूजी:- अनुभव के बाद कहे, ऐसा विकल्प चले, ज्ञान में भी ऐसा (ही) विकल्प चले तो उसका नाम है व्यवहारनय। क्योंकि (वो) परप्रकाशन होता नहीं (है), लेकिन परप्रकाशन (मात्र) कहा जा रहा है। कहा जा रहा है माने ज्ञान में भी विकल्प होते हैं। ऐसा नहीं है कि (वो मात्र) वाणी का (ही) विषय हो। वाणी का विषय (हो तो) वो तो अचेतन है वो तो। पर भीतर व्यवहारनय जैसे विकल्प भी चलते हैं कि मेरे ज्ञान में ये दिखाई दे रहा है - ऐसा। तो वो व्यवहारनय।

जैसे दिखाई नहीं दे रहा है, उसको दिखाई देनेवाला मानता है..... तो व्यवहारनय ये ही तो करता है। (तो) उसका निषेध किया जाए कि मेरे ज्ञान में पर प्रकाशित हो रहा है - इसका निषेध करो पहले, तब व्यवहारनय बनता है। वरना व्यवहारनय भी नहीं बनता है वो। वो तो व्यवहार भी निश्चय के स्थान पर हो जाता है। अज्ञानी को व्यवहार निश्चय के स्थान पर है।

मुमुक्षु:- जब परप्रकाशन नहीं होता तो पर को जाननेवाली बात तो कहाँ रही?

पूज्य बाबूजी:- कहाँ परप्रकाशन की (बात)? होता ही नहीं!

मुमुक्षु:- मेरे में परप्रकाशन होता ही नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! परप्रकाशन नहीं होता है। मेरे में तो मैं ही प्रकाशित होता हूँ।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! मेरे में तो मैं ही प्रकाशित होता हूँ।

पूज्य बाबूजी:- मैं ही प्रकाशित होता हूँ।

मुमुक्षु:- मेरे में परप्रकाशन कहाँ होता है?

पूज्य बाबूजी:- कैसे होगा? पर है ही नहीं तो प्रकाशित कैसे होगा? है ही नहीं। ये जाता नहीं (और) वो आता नहीं।

मुमुक्षु:- ये जाता नहीं (और) वो आता नहीं। ये जाता नहीं। मेरे में परप्रकाशन नहीं हो रहा है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! नहीं हो रहा है। ये तो एकदम १०० प्रतिशत सत्य (बात) है।

मुमुक्षु:- ये बात दोहराने से इतना अच्छा लग रहा है कि स्वपरप्रकाशक का जो स्वरूप है (वो) एकदम स्पष्ट, स्वप्रकाशकरूप से स्पष्ट होता जाता है। एकदम सही बात है! परप्रकाशन माने स्वप्रकाशन ही है।

पूज्य बाबूजी:- स्वप्रकाशन ही है। उसी को ज्ञेय की ओर से, ज्ञेयाकार की ओर से, माने (कि) ज्ञानाकार की ओर से परप्रकाशन कहते हैं। और कहना (भी) चाहिए। कहना (भी) चाहिए, अवश्य कहना चाहिए वरना वो सिद्धि नहीं होगी उधर। उधर जगत का अभाव (सिद्ध) होता है अगर नहीं कहेंगे तो। सर्वज्ञता का अभाव होता है (उसमें)। जगत का अभाव तो सर्वज्ञता का अभाव (ठहरा)।

मुमुक्षु:- सही बात है! सही बात है! जगत की सिद्धि भी करते हैं जैनदर्शन और (उससे) बचकर भी चलते हैं।

पूज्य बाबूजी:- जगत से बचकर तो पूरी तरह चलता है।

मुमुक्षु:- है तो वो निरपेक्ष।

पूज्य बाबूजी:- निरपेक्ष है, एकदम निरपेक्ष। निरपेक्ष तो है ही माने सापेक्षता (तो) कथन की (बात) है केवल, उसका नाम व्यवहारनय (है)।

मुमुक्षु:- क्योंकि पर आ जाता है तो कथंचित् हो जाता है। पर आ तो नहीं रहा।

पूज्य बाबूजी:- निश्चय-व्यवहार के रूप बदलते जाते हैं असल में, ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है।

मुमुक्षु:- और (बस) एक का रूप नहीं बदलता।

पूज्य बाबूजी:- एक का नहीं बदलता। वो अंतिम है - पराकाष्ठा।

मुमुक्षु:- पराकाष्ठा है। बात सही है!

6

परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

जिनवाणी-स्तुति

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १४, तारीख ७-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:- [14]ज्ञेयों के आकार का प्रतिबिंब और सामान्य उपयोग में होते ज्ञेयों का प्रतिबिंब (इन) दोनों में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है या नहीं? - एक प्रश्न। कर्ता-कर्म संबंध नहीं है ऐसा स्वीकारने से (जब) कि दोनों ज्ञेय और ज्ञान दोनों निरपेक्ष हैं, दोनों ही निरपेक्ष हैं, परंतु निमित्त-नैमित्तिक संबंध माना जाए तो कर्ता-कर्म संबंध क्यों नहीं माना जाए? कारण (कि) निश्चितपने ज्ञेयों का प्रतिबिंब ज्ञान में होता है।

कहना क्या है कि.. ज्ञेयों के आकार के प्रतिबिंब और सामान्य उपयोग में होते हुए ज्ञेयों का प्रतिबिम्ब (इन) दोनों में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि नहीं? कर्ता-कर्म संबंध नहीं ऐसा स्वीकारें? कि दोनों ज्ञेय और ज्ञान दोनों निरपेक्ष हैं। परंतु निमित्त-नैमित्तिक संबंध मानेंगे तो कर्ता-कर्म संबंध क्यों नहीं (मानें)? कारण कि निश्चितपने ज्ञेयों का प्रतिबिंब ज्ञान में होता ही है न!

पूज्य बाबूजी:- प्रतिभास, प्रतिबिंब और सामान्य उपयोग में होनेवाला ज्ञेयों का प्रतिभास, दोनों में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है तो सही। वो तो ही पर्याय है। उसमें कहाँ निमित्त-नैमित्तिक संबंध (है)? सामान्य ज्ञान है वही प्रतिसमय विशेषरूप हो रहा है। ये तो याद रखने की बात (है), पक्की-हमेशा कि ज्ञान त्रिकाल ही प्रतिभास स्वरूप है, हमेशा ही। क्योंकि कोई न कोई ज्ञेय उसका विषय बनता है और उस जैसा प्रतिभास ज्ञान अपने भीतर बनाता है। तो प्रतिभास माने ज्ञेय जैसा आकार। तो वो ज्ञेय जैसे आकार हुआ भी पूरी ज्ञान की पर्याय है। उसमें जाननेवाला कोई अलग नहीं है और जानने में आनेवाला कोई अलग ऐसा नहीं है, बिल्कुल (भी)। इसलिए एक ही पर्याय है।

इसलिए पहला प्रश्न जो है वो सही नहीं है। प्रश्न सही नहीं है। पर उत्तर हो गया कि प्रतिबिंब तो कोई पड़ता नहीं है। प्रतिबिम्ब कहा जाता है इसलिए कि जैसा ज्ञेय का आकार है, ठीक वैसा का वैसा ज्ञान का प्रतिभास है, ज्ञान का आकार है। इसलिए उसे प्रतिबिंब कहते हैं।

जैसे हम कहते हैं कि मैं दर्पण में अपना मुँह देखता हूँ, उसका नाम प्रतिभास। लेकिन मेरी कोई छाया दर्पण में पड़ती हो, मेरा कोई प्रभाव दर्पण में होता हो, तो ऐसा है? दर्पण और देखनेवाला इन दोनों का सानिध्य होता है, तो दर्पण में प्रतिबिंब हो जाता है। वहाँ (से) हट जाता है

14 प्रतिभास की चर्चा। - 0.15 Mins

तो कोई दूसरा आ जाता है। माने कोई न कोई इस दर्पण के सामने रहता ही है, कमरे का कोई न कोई पदार्थ।

तो इसी तरह ज्ञान हमेशा ही प्रतिभासरूप होता है, एकेन्द्रिय का ज्ञान भी। एकेन्द्रिय मानता है न (कि) मैं दुखी हूँ। ये देह ये मेरी है - ऐसा तो वो भी मानता है। मानना-जानना बंद नहीं होता। जानना भले ही थोड़ा है। ये जानना भी थोड़ा ही है कि ये शरीर मेरा है। अब इसमें तो सिर्फ 'नहीं है' - इतना लगाना है सम्यग्ज्ञान बनने के लिए। वो लगा नहीं पाता है न कि 'नहीं है'।

तो वहाँ उसका उस शरीर का प्रतिभास अथवा होनेवाले दु:ख का प्रतिभास, तो ये प्रतिभास वहाँ एकेन्द्रिय को भी होते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय सभी को माने जैसा-जैसा वो विषय करता है पदार्थ को, तो इसी प्रकार प्रतिभास.. प्रतिभास-प्रतिबिंब ये एकरूप ही हैं। लेकिन प्रतिबिंब में ऐसा लगता है कि जैसे उस ज्ञेय का उस ज्ञान में कुछ जा रहा हो, कोई प्रभाव ही हो रहा हो, असर ही हो रहा हो, तो वो बिल्कुल नहीं होता (है)। क्योंकि निरपेक्षता स्वीकार कर लेने के बाद ये सारे के सारे निषिद्ध हो जाते हैं। इन सबसे इन्कार करना पड़ता है कि निरपेक्ष है।

उधर ज्ञेय निरपेक्ष है, अपने में परिणमन करता हुआ। इधर ज्ञान अपने प्रतिभास बनाता हुआ निरपेक्ष है और वो अपनी शक्ति से बनाता है, अपनी सामर्थ्य से बनाता है। तभी तो चतुराई है वरना चतुराई में, नकल में क्या अकल? कि नकल में क्या अकल? तो इसने नकल नहीं की है उसकी। हाँ! उसने तो चुपचाप अपने भीतर, अपने भीतर ही भीतर प्रदेशों में सारा आकार बना लिया है।

अब निमित्त-नैमित्तिक संबंध की बात, कि - सचमुच तो पहले जो निरपेक्षता स्वीकार की, तो उसमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध का परिहार हो जाता है। परिहार हो जाता है। माने निमित्त-नैमित्तिक संबंध रहता ही नहीं है। लेकिन अब दूसरी जो व्यवहार व्यवस्था है.. तो व्यवस्था है तो ज्ञान में जानने में आएगी। चाहे वो कैसी भी हो, चाहे वो दो पदार्थों के सहयोगवाली हो, लेकिन ज्ञान में तो वो आयेगी न! जैसी ये निरपेक्षता ज्ञान में समझ में आई, उसने निश्चित की कि निश्चितरुप में हर पदार्थ अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में निरपेक्ष है। इसी तरह मैं, मेरा ज्ञान, मेरे गुण (और) मेरी पर्याय - ये हर स्थिति में निरपेक्ष ही हैं। किसी अन्य से किसी प्रकार का मेरा संबंध नहीं है।

आया न समयसार में? **नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः (समयसार कलश २००)** अब इसमें क्या बच जाता है? तो इनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध इसका नाम व्यवहार (है)। तो उसका अर्थ ये (है) कि ये ज्ञान में प्रतिभास बना है, उसके संबंध में हमें प्रश्न पैदा हुआ कि भाई! ये चित्र-विचित्र लीला ये क्यों कर रहा है ये? आखिर जगत में कोई होना (तो) चाहिए तो ये ऐसी लीला करे। जैसे राम हुए या कृष्ण हुए, तो उनका वर्तमान में हम नाटक करें तो एक बात है (कि) वो हुए (हैं भूत में) तो हम (वर्तमान में) नाटक करें। अब वो हुए ही नहीं तो उनका नाटक कैसे किया जा सके? वैसा का वैसा कैसे किया जा सकेगा?

इसी तरह ज्ञेय पदार्थ होने (तो) चाहिए तो वहाँ पर ज्ञान में (उनका) प्रतिभास होता है। लेकिन वो ज्ञेय पदार्थ निमित्त कहलाते हैं उसका अर्थ ही ये हुआ कि कर्ता-कर्म भाव नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक का अर्थ ही ये (हुआ), वरना ये निमित्त-नैमित्तिक नया क्यों पैदा किया हमने अगर कर्ता-कर्म है तो? इसलिए निमित्त-नैमित्तिक का अर्थ ये (है) कि जब ज्ञान जाननेरूप प्रवृत्त होता है तब वहाँ जो परपदार्थ या कोई पर विषय होता है, तो वो निमित्त कहलाता है और ज्ञान की पर्याय नैमित्तिक कहलाती है। वो ज्ञान का प्रतिभास, वो नैमित्तिक कहलाता है। बस! ये कहलाता है ये भी व्यवहार है। व्यवहार है अर्थात् ये बात भी, नहीं होते हुए भी, संबंध बिल्कुल नहीं होते हुए भी हम ये बात कहते हैं और भीतर ज्ञान में भी इस प्रकार का विकल्प होता है कि मेरा मुँह दिखाई देता है क्योंकि दर्पण है न। और इधर कि मैं हूँ, तो दर्पण में (मुँह) दिखाई देता है। इस तरह की कई बातें उस व्यवहार में की जा सकती हैं माने उसमें कोई दिक्कत नहीं (है)। लेकिन निरपेक्षता पहले स्वीकार कर ली जाए कि निरपेक्षता अपनी जगह से हिलती नहीं (है) और ये जो संबंधों की जो बकवास है, वो चला करती है। क्योंकि संबंध हैं ही नहीं, फिर भी वो स्थिति बनती है कि बाहर ज्ञेय होते हैं (उनका) भीतर ज्ञान में प्रतिभास होता है - एक ऐसी स्थिति (है) इसको भी ज्ञान जानेगा कि नहीं जानेगा? कि भाई! ये मेरे ज्ञान में ये जो हो रहा है, तो ज्ञान स्वयं तर्क करेगा कि क्यों हो रहा है ये मेरे ज्ञान में? क्योंकि बाहर इस प्रकार के कोई पदार्थ विद्यमान हैं, तो ज्ञान में ऐसे दर्पण की तरह नजर आते हैं। इसीलिए निमित्त-नैमित्तिक संबंध अगर हमने स्वीकार कर लिया तो वहाँ पर कर्ता-कर्म संबंध का संपूर्ण परिहार हो गया। ज्ञान और ज्ञेय में अगर कर्ता-कर्म संबंध मान लिया जाए तो दो पदार्थों में संबंध बन गया। आत्मा हो गया कर्ता और वो ज्ञेय पदार्थ हो गए कर्म। और कर्ता और कर्म अनन्य होते हैं। वो अलग-अलग जगह नहीं रहते। एक ही पदार्थ में होते हैं, इसलिए ये दोनों एक हो गए माने आत्मा जड़ हो गया। इतने दोष इसमें आते हैं।

तो ये संबंध जहाँ भी आवे, जहाँ भी संबंध की बात आवे, बस तुरंत आँख बंद करके ये स्वीकार कर लेना कि ये संबंध जो है ये केवल व्यवहार है, कहने मात्र की बात है। कहने मात्र की बात है, इसमें जरा भी सच्चाई नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध, इसमें भी सच्चाई नहीं है वास्तव में। क्योंकि जब कुछ करते ही नहीं हैं और आप अपना-अपना करते हैं तो इसमें सच्चाई क्या है? फिर संबंध कहाँ बैठा? ज्ञेय अपने परिणमन में, ज्ञान प्रतिभासरूप अपने परिणमन में निरपेक्ष भाव से (रहा, तो) संबंध कहाँ रह गया बीच में? तो संबंध की रेखा कहाँ रह गई?

मुमुक्षु:- ज्ञेय अपने भाव से अपने परिणमन में।

पूज्य बाबूजी:- अपने परिणमन में (और) अपनी शक्ति से।

मुमुक्षु:- और ज्ञान?

पूज्य बाबूजी:- अपनी शक्ति से अपने परिणमन में, अपने प्रतिभास में। तो बीच में हम कौनसी दोनों को जोड़ने की कोई रेखा लगायेंगे (या) क्या लगायेंगे? और वो होगा नहीं। संभव ही

नहीं है क्योंकि कुदरत का है। कुदरत तो दंड देगी अगर ऐसा करेगा तो। इसलिए ये सब आत्मदर्शन के बाद की बातें हैं ये। पहले विकल्प दशा में भले हम इनको जानें तो वो बहुत अच्छा है निर्णय के लिए। लेकिन सब (ये) आत्मदर्शन के बाद निमित्त-नैमित्तिक संबंध, एकक्षेत्रावगाह संबंध, संयोग संबंध इत्यादि इत्यादि, अथवा तो सिर्फ जैसे तादात्म्य संबंध, ये संबंधों के नाम से जितना भी पुकारते हैं तो वो सारा का सारा व्यवहार है क्योंकि संबंध मात्र नहीं है।

तादात्म्य संबंध में भी क्या है? वो तो एकमेक हैं। एक ही हैं, एक ही पदार्थ के हैं, उसी को तादात्म्य संबंध कहते हैं। पर संबंध क्या है? कहीं से आया है कोई चीज? बाहर से तो आई नहीं है फिर ये क्या संबंध है? स्वयं का स्वयं के साथ संबंध त्रिकाल बना हुआ है, अनंत गुणों के साथ।

मुमुक्षुः- वाह वाह वाह! अद्भुत! स्वयं का स्वयं के साथ।

पूज्य बाबूजी:- त्रिकाल अनंत गुणों का संबंध और अनंत पर्यायों का संबंध बना हुआ है, जैसा बना है वैसा। उसमें किसी का हाथ, किसी का हिस्सा, किसी की partnership (साझेदारी) बिल्कुल नहीं है। कुदरत ही निरपेक्ष है न सारी की सारी। तो वहाँ से स्वीकार कर लेने पर तो स्वयं ही हमारा ज्ञान ही फिर आगे बढ़ चलता है कि मैं निरपेक्ष स्वीकार कर चुका हूँ। तो उसको स्थापित रखकर अब ये विचार करना।

कहीं से आए न कोई जैसे, हमारे मामा के घर से कोई मेहतरानी आवे, तो हम उसे मौसी कहते हैं। अब वो कितनी मौसी है? उसको बुलाओ चौके में? तो वो कहने की है या है वास्तव में (है)? और (अगर) नहीं कहे, उसको मेहतरानी कहे, तो तू ज्यादा चढ़ गया दिखता है। तेरा दिमाग ज्यादा चढ़ गया दिखता है। पहले मौसी-मौसी कहता था (और) अब मेहतरानी कहने लग गया। तो ये व्यवहार बिगड़ जाएगा। इसलिए कहना चाहिए लेकिन मानना बिल्कुल अधर्म (है)। और नहीं कहे तो वस्तु-व्यवस्था समझ में नहीं आती।

मुमुक्षुः- [15]बराबर! बराबर! बाबूजी! भावमन में उत्पन्न हुआ राग का प्रतिबिंब, भावमन में उत्पन्न हुआ राग का प्रतिबिंब, वो ज्ञान में सामान्य उपयोग में प्रतिबिंबित होता है न? तो दो पर्याय होगी कि एक (ही) पर्याय होगी?

पूज्य बाबूजी:- एक पर्याय है। वो तो प्रतिभासरुप ही होता है हमेशा। हमेशा वो पर्याय पूरी की पूरी प्रतिभासरूप है। उसमें कुछ अलग से थोड़ा सा अंश नहीं पड़ा है जो (कि) अलग जाने उसको। वो प्रतिभास जाननभावरुप है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! ये आ गया जवाब।

पूज्य बाबूजी:- तो जाननभावरूप है वो प्रतिभास। ज्ञान का बना हुआ है शांतिभाई? प्रतिभास ज्ञान का बना हुआ है, तो जानना कहाँ चला जाएगा जब ज्ञान का बना हुआ है तो? ज्ञान

15 भावमन में उत्पन्न हुआ राग का प्रतिबिंब, वो ज्ञान में सामान्य उपयोग में प्रतिबिंबित होता है न? तो दो पर्याय होगी कि एक (ही) पर्याय होगी? - 15.40 Mins

तो जाननस्वरूप हमेशा ही रहता है। अब यदि उसका आकार बदला, तो उससे ज्ञान में क्या फर्क पड़ गया?

मुमुक्षु:- फिर भी..अगर राग का उत्पाद-व्यय हुआ फिर भी उसका ज्ञान हो जाता है, पहले से?

पूज्य बाबूजी:- पहले से क्यों होगा? प्रतिभास और ज्ञान एक ही साथ है। प्रतिभास ज्ञान ही है न वो तो, उसी समय का है। आगे-पीछे का भी हो सकता है, क्या दिक्कत है उसमें? जो पर्यायें बीत गईं हैं वो भी याद आ सकती हैं। उनका भी प्रतिभास हो सकता है। आगे की पर्यायें जितनी भी श्रुतज्ञान में आ सकती हैं, उनका भी हो सकता है। वहाँ कहाँ दिक्कत है? अपन वैसे ही लगाते हैं कि जैसे आज इतवार (रविवार) है। अब इतवार (रविवार) कितने दिन बाद आनेवाला है? कि सात दिन के बाद। ये हो गया ज्ञान। अगले इतवार (रविवार) का प्रतिभास हो गया, नहीं है तो भी।

मुमुक्षु:- इसी तरह भूतकाल का?

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि वो जाननामात्र है, यूँ। सीधा यूँ कर देना कि वो सब जाननामात्र है, वो जो प्रतिभास है। लेकिन प्रतिभास हमेशा रहनेवाला है अनादिकाल से अनंतकाल तक, केवलज्ञान में भी अनंतानंतकाल तक। प्रतिभास में से शून्य होनेवाला नहीं है ज्ञान।

मुमुक्षु:- पर फिर भी अपने जाननभाव से भी शून्य हो नहीं सकता।

पूज्य बाबूजी:- नहीं! जाननभाव ही है वो। वो जाननभाव स्वरूप है, वो जान ही रहा है स्वयं। वो ही जान रहा है और वो ही जानने में आ रहा है। इसलिए ज्ञान ज्ञान की पर्याय को ही जानता है - ऐसा कई बार आया न गुरुदेव (के व्याख्यान में)। ज्ञान ज्ञान की पर्याय को ही जानता है। तो उससे आगे चलना (है) अभी। पर अभी इतना तो जाने।

मुमुक्षु:- हाँ! फिर आगे क्या है?

पूज्य बाबूजी:- आगे क्या है? ज्ञान की पर्याय को जानता (हूँ) इसमें भी क्या रखा है? कि ज्ञान ही हूँ मैं, बस! ज्ञान ही हूँ। और ज्ञान ही हूँ माने बस ज्ञायक हूँ, चिन्मात्र हूँ बस।

मुमुक्षु:- माने ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय को जानती है, उससे आगे ये बात है कि मैं ज्ञान ही हूँ।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान ही हूँ।

मुमुक्षु:- और ज्ञान हूँ माने मैं ही हूँ।

पूज्य बाबूजी:- मैं ही हूँ, मैं ही हूँ, ज्ञायक ही हूँ। ज्ञायक ही हूँ। क्योंकि ये हमेशा याद रखने कि ये निर्णय पहले हो चुका है कि तुझे किसके पास जाना है? कि मुझे ज्ञायक के पास जाना है। इसलिए वो यहाँ इन व्यवहारों में नहीं रुकेगा। ये व्यवहार हो गए ये सारे। ज्ञान ज्ञान की पर्याय को जानता है, मैं ज्ञान ही हूँ - ये सब व्यवहार हो गया। और परम निश्चय वो हो गया (कि) अरे! मैं तो

ज्ञायक हूँ। और ये निर्णय पहले नहीं हो तो वो यहाँ अटक जाएगा और वो ही मिथ्यादृष्टि ही बना रहेगा, पर्यायमूढ़। ये अपने ज्ञान की पर्याय को ही जानता हूँ और मैं ज्ञान ही हूँ, इससे आगे अगर वो नहीं बढ़ता है और ये आत्मा के विकल्पों में अटक जाता है तो वो तो पर्यायमूढ़ अज्ञानी है वो, वहाँ तक। वो तोड़ना नहीं चाहता है उसको। यहाँ (पर) अपने में भी लिहाज नहीं है, पर को जानने की बात तो बहुत दूर रह गई।

मुमुक्षु:- अपने में भी लिहाज नहीं है मतलब?

पूज्य बाबूजी:- नहीं! नहीं! लिहाज है कि मैं ज्ञान ही हूँ, तो वो ज्ञान नहीं तू आत्मा बोल।

मुमुक्षु:- आहाहा!

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान बोल रहा है खाली अभी ज्ञान में अटका है एक में। ज्ञान की पर्याय में अटका है। इसलिए बोल 'ज्ञायक हूँ' - ऐसा बोल। वो नहीं बोलता है और वो तो इसे साधन मान लेता है कि मैं ज्ञान ही हूँ, मैं ज्ञान ही हूँ, ऐसा करते-करते ये ज्ञायक अनुभव में आ जाएगा। तो हो गया खतम, बस! व्यवहार को निश्चय मान लिया। वो था व्यवहार और उसको निश्चय का साधन मान लिया, तो हो गया मिथ्यादर्शन, अज्ञान हो गया।

मुमुक्षु:- माने निज स्वरूप के विकल्पों में ही अटका हुआ रहता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तो अटक गया विकल्पों में क्योंकि विकल्पमूढ़ है ये तो। इसके लिए विकल्पों में से आनंद आता है। निर्विकल्प अभी इसने देखा नहीं है। तो निर्विकल्प का आनंद आ जाए तब तो ये विकल्पों को तो बिल्कुल मिट्टी कर दे। लेकिन वो देखा नहीं है अभी। देखने की पद्धति ये है। तो इस पद्धति में बीच में रुकाव नहीं (है)। ज्ञायक के पास जाकर पूर्ण विराम है। उससे आगे कोई नहीं, तीन लोक तीन काल में।

मुमुक्षु:- [16]माने ज्ञायक के गुण-भेद में भी विराम होने की कोई गुंजाईश नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! बिल्कुल नहीं है। बिल्कुल नहीं है। गुण भेद तो क्या करेगा? एक-एक गुण को लेकर क्या करेगा?

जैसे हमने दस चीजों की ठंडाई बनाई। अब उसकी जगह अपन ठंडाई नहीं बनाएँ, अलग-अलग खाएँ, तो शकर-शकर ही खायें कोरी तो क्या स्वाद आएगा? फिर उसमें इलायची खावें तो क्या स्वाद आएगा? फिर केशर खा लें तो क्या स्वाद आएगा? अरे! वो तो सबका जो निचोड़ है उसका नाम आनंद है। इसलिए अनंत पर्यायों के निचोड़ का नाम उपयोगात्मक आनंद।

मुमुक्षु:- अनंत पर्यायों के निचोड़ का आनंद उसका नाम ..

पूज्य बाबूजी:- शुद्ध, शुद्धता का.. शुद्धता का ..

मुमुक्षु:- उसका नाम उपयोग का आनंद।

16 ज्ञायक के गुण-भेद में भी विराम होने की कोई गुंजाईश नहीं है? - 21.36 Mins

पूज्य बाबूजी:- उपयोगात्मक आनंद। और दूसरा तो परिणति में रहता है न! सुख गुण की पर्याय जो शुद्ध हुई है, वो तो फिर भी रहेगी जब उपयोग बाहर चला जाएगा तब भी। क्योंकि उतना दुख तो कम हो ही गया है, अनंतानुबंधी जितना तो। वो तो कम ही गया माने क्या है? उसकी तो जड़ ही खत्म हो गई, जड़ समाप्त हो गई। इसलिए अब उसको फिकर नहीं रही माने बिल्कुल, बिल्कुल निश्चिंत है ज्ञानी भीतर से कि कुछ हुआ ही नहीं है, न कुछ हो रहा है (और) न अनंतकाल में कुछ होना है। ये सब मेरी मिथ्या कल्पनायें थीं, झूठी कि कुछ हुआ है मेरे भीतर। क्योंकि मैं तो अनहोना तत्त्व हूँ। जो होता है वो पर्याय में होता है और उससे मैं बिल्कुल अनासक्त हो गया हूँ।

होनी तो पर्याय है। इसलिए होना जो है वो सब पर्याय का धर्म है। होना मेरा धर्म नहीं है क्योंकि मैं (तो) अनहोना तत्त्व हूँ। तो होना तो घटना को कहते हैं। कुछ हुआ इसका नाम तो घटना है न? आत्मा में कौनसी घटना घटी है आज तक? कोई घटना घटी होती तो अवश्य विकृत हो गया होता, टुकड़े हो गए होते। आधा रह गया होता, नष्ट हो गया होता (यदि) कोई घटना घटे तो।

तो वो उसकी वज्र दीवार को तो कोई छूता ही नहीं। उसकी वज्र दीवार पर सारा विश्व मिलकर भी आक्रमण करे तो एक निशान नहीं होनेवाला है। इतना सुंदर तत्त्व मेरे पास है माने मैं हूँ ऐसा तत्त्व तो उल्लास नहीं आएगा? एक ऋषि का वरदान मिल जाए जिसमें कितना उल्लसित रहता है कि अपने को मरना ही नहीं है; कहीं चलो, कहीं भी। किसी भी विपत्ति में धस जाओ भले, तो भी ऋषि का वरदान है कि मरना नहीं (है)। यहाँ भी कुंदकुंद ऋषि का वरदान है।

मुमुक्षु:- होनी तो पर्याय में होनी है।

पूज्य बाबूजी:- होना तो पर्याय में होता है।

पतझड़ में पेड़ के पत्ते खिर जाते हैं और आती बरसातें तो बदन भर जाते हैं। पतझड़ में पेड़ के पत्ते खिर जाते हैं। पतझड़ माने autumn; और आती बरसातें तो बदन भर जाते हैं। पुण्य और पाप ये तो मौसमी हवाएँ हैं रे! तू बेमौसम है, मौसम बदल जाते हैं।

मुमुक्षु:- आहाहा! बहुत सुंदर! बहुत सुंदर! तू बेमौसम है, मौसम बदल जाते हैं। पुण्य पाप मौसम हैं। वाह रे!

पूज्य बाबूजी:- पतझड़ में पेड़ के पत्ते खिर जाते हैं। आती बरसातें तो बदन भर जाते हैं। पुण्य और पाप ये तो मौसमी हवाएँ हैं रे! तू बेमौसम है, मौसम बदल जाते हैं।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! वाह रे वाह!

पूज्य बाबूजी:- चतुष्पद ये है।

मुमुक्षु:- कितना अद्‌भुत न्याय बाबूजी समझाया। आस्रव को कहाँ डाल दिया?

पूज्य बाबूजी:- वो तो बिन मौसम है।

मुमुक्षु:- बेमौसम!

पूज्य बाबूजी:- ये सब मौसम हैं पुण्य और पाप तो, बदला करते हैं।

मुमुक्षु:- बाबूजी! मतलब अपनी पर्याय ही जो प्रगट हुई, वो ही घटना हो गई न?

पूज्य बाबूजी:- वो ही घटना हुई।

मुमुक्षु:- वो ही घटना।

पूज्य बाबूजी:- तो वो बाहर निकाल दिया उसको।

मुमुक्षु:- आहाहा!

पूज्य बाबूजी:- निकाल दिया न बाहर? अपनी पर्याय में अनुभूतिरुप जो पर्याय है, तो उस अनुभूतिरुप पर्याय को भी निकाल दिया न बाहर। वो भी तो अदृश्य हो गई न वहाँ। वहाँ तो दृश्यमान एक मात्र ज्ञायक (है) और पर्याय स्वयं ज्ञायक बन गई है। द्रव्य बन गई है।

मुमुक्षु:- वहाँ एक मात्र ज्ञायक और पर्याय ज्ञायक बन गई है।

पूज्य बाबूजी:- द्रव्य बन गई है, तभी तो द्रव्य के स्वर में बोलती है न। पहले तो वो Faminine Gender (स्त्रीलिंग) अब तो Masculine (पुर्लिंग) हो गया न?

मुमुक्षु:- बराबर! बराबर! थी, वो था हो गया है।

पूज्य बाबूजी:- थी, वो था हो गया।

मुमुक्षु:- [17]बाबूजी! जो ज्ञान का स्वरुप है वास्तव में (वो) खाली एक बार समझ लेना चाहिए। बाकी उसके ऊपर अटकना नहीं चाहिए।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान में समझ ही है और ज्ञान को ज्ञान ही समझना है। बस! और ज्ञान माने आत्मा ही है ये निश्चय कर लेना चाहिए।

मुमुक्षु:- अद्‌भुत! अद्‌भुत! ज्ञान माने समझ ही है। ज्ञान में ज्ञान का ही ज्ञान होने का है।

पूज्य बाबूजी:- होना है। ज्ञान को ही ज्ञान समझना है। और ज्ञान समझ लेने के बाद ये ज्ञान आत्मा ही है बस, इतना कर लेना है।

मुमुक्षु:- इतना कर लेना है, इतना मान लेना है।

पूज्य बाबूजी:- इतना कर लेना है।

मुमुक्षु:- [18]एक प्रश्न है प्रभु! स्वपरप्रकाशक शक्ति स्वयं निश्चय है या व्यवहार?

पूज्य बाबूजी:- स्वयं निश्चय है। स्वपरप्रकाशक शक्ति का परिणमन; शक्ति निश्चय नहीं होती।

मुमुक्षु:- उसमें क्या फर्क रहा प्रभु?

पूज्य बाबूजी:- निश्चयनय-व्यवहारनय उसमें होते हैं न, पर्याय में? तो उनका विषय हो सकता है कोई भी। यहाँ तो स्वपरप्रकाशक शक्ति का जो परिणमन है वो निश्चय है क्योंकि वो

17 जो ज्ञान का स्वरुप है वो एक बार समझ लेना चाहिए? - 27.35 Mins

18 स्वपरप्रकाशक शक्ति स्वयं निश्चय है या व्यवहार? - 28.25 Mins

आत्मा की ही पर्याय है, शुद्धरुप से। स्वप्रकाशकता को ही परप्रकाशकता कहते हैं। परप्रकाशकता अलग से कुछ होती ही नहीं है। एक ही पर्याय में हैं न! ज्ञान में एक पर्याय हुई, हम उसको स्वपरप्रकाशक कहते हैं। तो वो परप्रकाशकता है वो भी तो स्वप्रकाशकता की (ही) पर्याय हुई न। क्योंकि एक अखंड पर्याय है वो तो और नाम उसके दो हैं। तो दो नाम यूँ हैं कि वो ज्ञेय की ओर से प्रतिभास होते हैं तो उनका उनसे मिलान करके ये बताने के लिए कि इस समय ज्ञान का विषय कौनसा है? ये सारा व्यवहार (है)। क्योंकि व्यवहार के बिना समझा नहीं जा सकता न?

अपनी बात आई थी न? कि निश्चय से तो हम एक ही जवाब देंगे। उसके पास जवाब ही एक है। एक तो व्यवहार का निषेध और एक Positive में (अस्ति से) मैं ज्ञायक हूँ। क्योंकि उसके पास बात ही दो हैं। व्यवहार जहाँ भी आवे तो वो कहता है 'नेती' 'नेती' 'नेती'। जहाँ भी व्यवहार बोलता है, जो भी, कोई जगत का कोई व्यवहार, किसी भी तरह का, तो निश्चयनय कहता (है) 'नेती'। 'नेती' माने हाँ 'नथी' (नहीं)।

मुमुक्षुः- ऐसी बात नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- नहीं है।

मुमुक्षुः- अभूतार्थ!

पूज्य बाबूजीः- कोई व्यवहार बोले कोई, कोई (भी) व्यवहार कि - ज्ञान ज्ञान को जानता है, (तो कहे) कि 'नेति'।

मुमुक्षुः- हाँ! ज्ञान ज्ञान को जानता है, नथी (ऐसा नहीं)।

पूज्य बाबूजीः- 'नेति'।

मुमुक्षुः- भेद हो गया।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान ही जानने में आता है।

तुझे अभी रस नहीं लगा है पीने का, तुझे भूख नहीं है अभी। वरना ऐसा करते हुए तुरन्त पहुँच जाता, वो तो तेरे पास ही पड़ा है।

मुमुक्षुः- ये तो डाँटने वाली बात हो गई बाबूजी।

पूज्य बाबूजीः- तो डाँट भी लगे तो..

मुमुक्षुः- अच्छा है! लगे तो।

एक [19]जो श्लोक है प्रभु कि

स्वपर प्रकासक सकति हमारी ।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी ॥
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी ।
निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४६ ॥

19 स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी - श्लोक का विश्लेषण। - 31.23 Mins

(नाटक समयसार, साध्य-साधक द्वार)

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ठीक है वो तो आ गया न अपने उसमें। ठीक है।

मुमुक्षु:- वो थोड़ा श्लोक का विश्लेषण थोड़ा ज्यादा चाहिए। ये लिखा हुआ नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- फिर से, दोबारा बोलो।

स्वपर प्रकासक सकति हमारी ।

तातैं वचन भेद भ्रम भारी ॥

स्वपरप्रकाशक शक्ति है हमारी, इसलिए वचन भेद में भारी भ्रम पैदा होता है। जब हम वचन से स्वपरप्रकाशक कहते हैं तो भारी भ्रम पैदा होता है क्योंकि वास्तव में स्वप्रकाशक है। और परप्रकाशक कहा तो इस वचन-भेद से हमें भारी भ्रम होता है। और

ज्ञान शक्ति दुविधा परगासी ।

निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४६ ॥

ज्ञान शक्ति का जो विवेचन है वो दो प्रकार से हुआ है - एक निजरुप और एक पररुप। हाँ! **ज्ञान शक्ति दुविधा परगासी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४६ ॥** तो पररूपा माने व्यवहार। बस! व्यवहार को भी शक्ति कहते हैं, तो इसको भी शक्ति कहते हैं।

मुमुक्षु:- कितना सरल कर दिया है बाबूजी! है ही सरल। शक्ति कैसे हुई व्यवहारनय?

पूज्य बाबूजी:- व्यवहार से .. अपने आया है। जैसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध है न! उसमें भी आया है आचार्य समंतभद्र का कि **बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगत: स्वभाव:॥६०॥** ऐसा है। बाह्य माने बाहर के पदार्थ और अभ्यंतर माने अपना, अपना आत्मा; माने अपनी आत्मा की पर्याय और बाहर के पदार्थों की पर्याय। तो इन दोनों का निकट होना, इन दोनों का ऐसा एक बनाव बनना कि उसमें काम हो, उपादान में।

तो **बाह्येतरोपाधिसमग्र** बाह्य और अभ्यंतर उपाधि की समग्रता ये कार्य के होने में हे भगवन्! आपके मत में द्रव्यगत स्वभाव है। कहा स्वभाव उसको। अब निमित्त स्वभाव है क्या? लेकिन निमित्त का होना और कार्य का होना (दोनों एक साथ)। कार्य का होना और वहाँ किसी अनुकूल पदार्थ का होना, तो उसका नाम निमित्त-नैमित्तिक। ये द्रव्यगत स्वभाव है, ये किसी ने बनाया नहीं है। हाँ! कोई अपने स्वभाव को जाग्रत करने के लिए, अपनी पर्याय की रचना करने के लिए निमित्तों को ढूँढता फिरे, उनकी व्यग्रता करे, तो वो निमित्त मिलनेवाला नहीं है। ये तो जिसमें उपादान जागता है और कार्यरूप परिणत होता है, तो निमित्त स्वयं वहाँ होता ही है ऐसा तीन लोक और तीन काल की व्यवस्था है ये। माने निमित्त संज्ञा ही (तब) उस पदार्थ को है कि जब कार्य होता है। वरना निमित्त संज्ञा ही नहीं है। सचमुच निमित्त-नैमित्तिक नाम की चीज ही नहीं है जगत में, असली बात तो ये है। क्योंकि वो तो संबंध पैदा करती है बात। द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त और क्या है?

मुमुक्षुः- आहाहा! द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- कुछ नहीं है।

मुमुक्षुः- माने भ्रम हो गया है। स्वपरप्रकाशक में भ्रम हो गया है।

पूज्य बाबूजी:- पर भ्रम हो जाए, तो यहाँ लोक में तो एकदम मिटा देते हैं अपन और यहाँ मिटाना नहीं चाहते हैं। मिट तो रहा है वो। इसके सामने तर्क और युक्तियाँ तो इतनी हैं कि वो मिट रहा है, मिटना चाहता है और फिर भी (हम) मिटाना नहीं चाहते हैं। और लोक में झट मिटा देते हैं कि - अरे! ये तो मैंने गलत काम कर लिया।

मुमुक्षुः- स्व और पर (तो) पर में क्या लेना?

पूज्य बाबूजी:- पर माने ज्ञेय पदार्थ।

सीता जब थी न रावण के पास, तो वहाँ हनुमान उसकी तलाश करने गए। ऐसा अपने यहाँ आता है या (नहीं, मालूम नहीं मगर) वहाँ तो आता ही है दूसरे अजैन शास्त्रों में। तो जब ढूँढने गए हनुमान तो उन्होंने ऊपर से राम की मुद्रिका-अँगूठी वो नीचे डाली। तो सीता को तो पता नहीं था कि हनुमान आया हुआ है। तो अब सीता ने समझा कि ये जो अशोक वृक्ष है, इसने अँगारा डाला है मेरे लिए। तो उसने अँगारा समझकर उसे उठाया, तो वो राम की मुद्रिका दिखी।

प्रतिभास को गौण करके, अदृश्य करके और ये ज्ञान ही है - ऐसा जब किया न, तो ज्ञान ही है तो सामान्य का आविर्भाव हो गया और उसका अनुभव होने लग गया। ये सामान्य का आविर्भाव हो गया। ज्ञान कर देना सबको, सारे प्रतिभासों को, वहीं का वहीं रखकर। वो प्रतिभास जाएगा नहीं। वहीं रहेगा एक क्षण के लिए तो, लेकिन उसको सबको सिर्फ ज्ञान कर देना। ये सब ज्ञान ही है इसके अलावा और कुछ नहीं (है)। इसके अतिरिक्त मैंने माना और मिथ्यादर्शन वापस प्रविष्ट हुआ। इसके अतिरिक्त थोड़ा भी अगर ये लाए कि एक जरा सी भी space अगर मैंने रखी, तो मिथ्यादर्शन (और) मिथ्याज्ञान वापस।

मुमुक्षुः- बाबूजी! हमें तो ऐसा लगता है कि जब आप ज्ञेयाकार कहते हैं तो ज्ञान में ज्ञेयों की लकीरें कैसे भासित होती होंगी? आप तो ये कह रहे हैं कि ज्ञान जाननभाव से ज्ञेयाकार होता है। और हमें ऐसा लग रहा है कि जैसे दर्पण में अग्नि की लकीरें दिखती हैं।

पूज्य बाबूजी:- अब ज्ञान में लकीर कैसे खिंची? जैसे हवा में लकीर खींचो कोई, आकाश में खींचो, प्रकाश में खींचो, तो ऐसे ज्ञान में लकीरें खिंचती ही नहीं है, होती ही नहीं हैं। वहाँ तो सिर्फ इतना जाना है कि ये ऐसा है पदार्थ। ये घड़ा है - ऐसा, ज्ञान में जानने में आया।

तो ये घड़ा है इस पर्याय को अगर अपन ज्ञान की ओर से देखें तो ये ज्ञान है, घड़ा नहीं है। ठीक है? और घड़े की ओर से देखें तो घड़ा जानने में आ रहा है, ऐसा कहने में आएगा ही सही विषय बताने के लिए। और ये विकल्प आया ज्ञान में कि ये घड़ा है। अब देखने की पद्धति दो तरह से हुई न! उसमें से फिर निश्चय करना कि सत्य कौन है? कि सत्य ये है ज्ञान की पर्याय क्योंकि वहाँ

घड़ा नहीं है, वहाँ घट जैसा आकार है, सब कुछ द्रव्य-गुण-पर्याय (है) लेकिन घड़ा नहीं है वहाँ। तो घड़ा नहीं है तो कौन है? कि (वहाँ) ज्ञान है। इसलिए ज्ञान ही है ये। ये घड़ा है ये ज्ञान है।

मुमुक्षुः- ये घड़ा है ये ज्ञान है। ज्ञान ही है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान है। ज्ञान ही है।

मुमुक्षुः- राग संबंधी का ज्ञान ज्ञात होता है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! तो ज्ञान ही है वो।

राग आ जाए तो ज्ञान मिट्टी हो जाए क्योंकि दोनों विपरीत हैं ये तो। घड़ा और ज्ञान ये तो भिन्न हैं (मगर) विपरीत नहीं है। पर राग और ज्ञान तो विपरीत तत्त्व हैं। तो विपरीत तो नाश ही कर दे उसका। घड़ा वो विपरीत नहीं है ज्ञान के, वो भिन्न है और राग विपरीत है।

मुमुक्षुः- तिरस्कार करनेवाला है आत्मा का।

पूज्य बाबूजीः- तिरस्कारी भाव है वो।

मुमुक्षुः- सामान्यरूप से तो बाबूजी जब ज्ञेयाकार सोचते हैं अंतर्मुख होने के लिए। तो प्रतिभास से तो स्व और पर का विभाग, विश्व का जो विभाग है उससे छूटना ही मुश्किल था। अब छूटकर थोड़े हल्के बने तो ऐसा लगता है कि ज्ञेयों का प्रतिभास होने से उसी प्रकार की लकीरें जब ज्ञान में ज्ञात होती हैं, तो वो इधर दिखता है न? तो इस समय पर किस तरह भेदज्ञान की प्रवृत्ति की जाए? क्योंकि पहले तो स्वीकार कर लिया कि कर्ता-कर्म से या स्वस्वामी संबंध से जगत से कोई नाता नहीं है। क्योंकि स्व-पर के विभागपूर्वक रचाया हुआ विश्व है। पर इतना सोचने के बाद, स्वीकृत करने के बाद (भी) जब ज्ञेयों का प्रतिभास अनिवार्य है, उसको तो रोका नहीं जाना है.. अब जब उन्हीं की लकीरें हमारे ज्ञान में ज्ञात होती हैं, तो ज्ञान भी उसी प्रकार की लकीरों वाला दिखता है या कुछ और दिखता है?

पूज्य बाबूजीः- स्वस्वामी संबंध से इन्कार कर देने के बाद ये तो बहुत स्थूल हो गई बात (कि) ज्ञान में लकीरें दिखना। ज्ञान में तो सिर्फ ये है कि ये राग है - ऐसा।

मुमुक्षुः- माने इसका मतलब ये हो गया कि ज्ञान का परिणमन जाननभावरूप होता है और ज्ञेयों का परिणमन ज्ञेयभावरूप होता है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञेयभावरूप होता है। वो जैसे हैं वैसा होता है। ज्ञान का तो सिर्फ जाननरूप ही होता है। राग का जो स्वरूप ज्ञान ने जाना तो वो बोलता है (कि) मैं राग को जानता हूँ। राग के स्वरूप को जानता हूँ। पर राग के स्वरूप को जानता हूँ ऐसा जो ज्ञान बोला, वो ज्ञान है वो। उसमें राग की कारणता नहीं (है) बिल्कुल। कारणता भी नहीं है राग की कि उधर राग चल रहा है इसलिए ज्ञान में प्रतिबिंबित (हो रहा है) - गलत है ये, कहते हैं बिल्कुल झूठ; ये बिल्कुल झूठ है। ज्ञान तो ऐसा चितेरा है, इतना एक कलात्मक चित्रण करता है कि उसे किसी की ओर देखने की जरूरत ही नहीं है। वो तो स्वतः ही अपने आप (चित्रण कर लेता है)। उसकी महिमा

तो देखें अपन कि सारे लोकालोक का जो चित्रण है वो ज्ञान चुपचाप, मौन अपने भीतर बैठकर बना लेता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! ज्ञान अपने आप में मौन चुपचाप बैठकर बना लेता है।

पूज्य बाबूजीः- उनको देखे बिना। उनको देखे बिना और उनके आए बिना। माने नकल भी नहीं करता है, copy नहीं करता है। copy करनेवाला तो पकड़ लिया जाता है।

मुमुक्षुः- वो निरपेक्षता समझ में आ जानी चाहिए।

पूज्य बाबूजीः- वो समझ में आना चाहिए एकदम। सामर्थ्य इसकी इतनी अजब-गजब है कि ऐसा मैं हूँ। ऐसी गजब सामर्थ्य वाला (है)।

एक footpath (फुटपाथ) में चलता हुआ ज्योतिषी कुछ कह जाए तो उसकी तो हमको धुन लग जाती है। (कोई) चिंता की बात हो तो वो चिंता मिटती ही नहीं (है) अगर मरने की बात कह जाए तो। और कुछ नोटों के आने की बात कह जाए तो वो तो झूठ ही बोल गया भले ही एक बार, पर उल्लास तो हो ही जाता है। राह देखते रहते हैं उसके लिए।

तो वो कह जाए इतनी सी बात, इतना सा ज्ञान (और) यहाँ ज्ञान ऐसा कि तीन लोक और तीन काल अनंतानंत, उसको एक समय में अपने भीतर वैसा का वैसा बना लेते हैं। ठीक वैसा का वैसा!

lens है न camera का? उसमें आदमी कारण नहीं (है)। आदमी कारण नहीं है इसमें। नहीं तो फिर तो साधारण पत्थर के सामने आदमी को खड़े कर दो, तो वहाँ चित्र आना चाहिए अगर कारण है आदमी (तो)। तो फिर हर जगह उसका चित्र दिखाई देगा अगर आदमी कारण होगा तो। इसलिए आदमी कारण नहीं (है)। वो lens की ताकत है कि वो वैसा का वैसा बना लेता है।

मुमुक्षुः- ज्ञेय कारणभूत नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- ये ज्ञान lens की ताकत है।

मुमुक्षुः- (तो) जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव में अनुभव में आता है वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव में कैसे अनुभव में आता है? क्योंकि वह तो ज्ञेयाकार ज्ञान है न! - ये प्रश्न है।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न! ज्ञेयाकार जो है वो ज्ञान है। स्वयं प्रश्न में है ये बात कि वो तो ज्ञेयाकार ज्ञान है न! तो जो ज्ञेयाकार (है उस) को ज्ञान माना कि नहीं माना हमने? तो ज्ञेयाकार को ज्ञान मान लिया (ये) सामान्य का आविर्भाव हो गया।

मुमुक्षुः- ज्ञेयाकार को ज्ञान मान लिया (ये) सामान्य का आविर्भाव हो गया।

पूज्य बाबूजीः- हो गया बस!

मुमुक्षुः- [20]मनःपर्यय ज्ञान की प्रवृत्ति कैसे होती है?

20 मनःपर्यय ज्ञान की प्रवृत्ति कैसे होती है? - 48.06 Mins

पूज्य बाबूजी:- मनःपर्यय ज्ञान की भी इसी तरह बनती है। नाम उसका मनःपर्यय है लेकिन वो मन की पर्याय नहीं है, मनःपर्ययज्ञान। वो मन की पर्याय को जानता है। दूसरे के मन की पर्याय को वो जान लेता है..... तो ये व्यवहार की बात माने, व्यवहार से अपन बोल रहे हैं। दूसरे के मन की बात को जान लेते हैं इसलिए उस विषय की अपेक्षा उस ज्ञान का नाम मनःपर्यय रखा। है वो सकल ज्ञान। माने जो शुद्ध ज्ञान होता है उसकी पर्याय है वो सचमुच (तो)। माने विकल, विकल-प्रत्यक्ष! केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष होता है और ये विकल-प्रत्यक्ष है। तो अर्थात् ये दूसरे के मन में जो रूपी पदार्थों का ज्ञान हो रहा है, रूपी पदार्थों का विचार चल रहा है तो ये मनःपर्ययज्ञान उसको जान लेता है। इसलिए उसकी तरफ से नाम इसका मनःपर्ययज्ञान रखा लेकिन ये मन की पर्याय नहीं (है)।

मुमुक्षु:- उसकी ओर से नाम इसका मनःपर्ययज्ञान रखा।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! उसकी ओर से रखा पर ये मन की पर्याय नहीं है। माने ये स्वयं उस मनःपर्यय ज्ञानी के मन की पर्याय भी नहीं है। हाँ! क्योंकि मन की पर्याय तो परोक्ष होती है। इसलिए ये प्रत्यक्ष ज्ञान है, ये विकल-प्रत्यक्ष। तो उसने मनःपर्ययज्ञान ने स्वयं अपनी सामर्थ्य से उसके मन की बात जानी। अगर उसका मन कारण हो तो हम भी जान लेंगे उसकी पर्याय को। लेकिन मनःपर्ययज्ञान की सामर्थ्य ऐसी है कि वो चाहे जैसा, चाहे उल्टा सोचे, सीधा सोचे, कैसा भी सोचे। कोई सीधा सोचता है या सीधा प्रश्न करता है कि गुरुदेव मेरे मन में क्या है? और कोई जो है उल्टा सोचता है। उल्टा सोचता है माने एक बात सोची फिर उसको पलट दिया, फिर सोचा फिर उसको पलट दिया। तो वो वक्र सोचने को भी वो दूसरा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जान लेता है। ये है ऋजुमति कि उसका सीधा सोचना हो तो ये जान लेता है। विपुलमति जो है वो कैसा भी सोचे वो सबको जान लेता है। लेकिन जानता अपनी सामर्थ्य से है क्योंकि इतना क्षयोपशम खिल गया है। क्षयोपशम में उसकी सामर्थ्य (है) उससे जानता है। पर विषय की अपेक्षा से मनःपर्यय नाम रखा उसका। ज्ञान का जो नाम है वो हमेशा ज्ञेय की ओर से होता है - ये हमेशा याद रखने की बात। नाम, भाव नहीं।

मुमुक्षु:- ये point note किया जाए।

पूज्य बाबूजी:- हमेशा किसको जानते हो? कि दीवार को जान रहा हूँ। दीवार दिख रही है। किसको जान रहे हो? कि camera दिख रहा है, Tape-recorder दिख रहा है, light दिख रही है, पँखा दिख रहा है, आदमी दिख रहा है। बस! यही होगा।

तो वो जो ज्ञान (है), किसका ज्ञान (है)? कि दीवार का ज्ञान (है)। इस समय तुमको किसका ज्ञान हो रहा है? कि दीवार का। इस समय किसका ज्ञान है? कि भोजन का। तो ज्ञान भोजन का होता है (या) दीवार का होता है? लेकिन विषय बताने के लिए उसको उसकी ओर से कहा जाता

है, ज्ञेय की ओर से। उसका नाम ही ज्ञेय की ओर से दिया जाता है। अब दिनभर अपन ऐसा ही बोलते हैं। इस समय किसका ज्ञान हो रहा तुमको? वो तो ज्ञेय की तरफ से जवाब देगा।

मुमुक्षुः- एकदम सही बात है!

पूज्य बाबूजीः- लेकिन मानने का नहीं (है), मानने का बिल्कुल नहीं (है)। मानने में तो बिल्कुल निषेध कि उसका नहीं हो रहा है। ज्ञान का ही ज्ञान हो रहा है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! और ज्ञेयों के वर्णन के समय वो ज्ञान का ही वर्णन है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान का ही है। हाँ! वर्णन माने उसका चिंतन, चिंतन।

मुमुक्षुः- अद्‌भुत! पर्याय ये जो कह रहे हैं आप कि ज्ञान का ही (ज्ञान) हो रहा है। ज्ञान ही हो रहा है और ज्ञेय की ओर से ज्ञान का नाम दिया जाता है।

पूज्य बाबूजीः- नाम, विषय बताने के लिए। प्रतिभासता बताने के लिए कि प्रतिभास हो रहा है तो प्रतिभास कौनसे पदार्थ जैसा है। जगत में अनंत पदार्थ हैं, तो ये जो वर्तमान में प्रतिभास है.... और पदार्थ अनंत हैं और कई एक से भी हैं। तो उन एक से पदार्थों में से भी ये किनका प्रतिभास है? जैसे ५० घड़े रखे हुए हैं और उनमें से एक घड़े को हमने देखा। अब उस एक घड़े का प्रतिभास हुआ। तो अब ये कहना पड़ेगा न कि ये इस घड़े का ज्ञान है।

मुमुक्षुः- बराबर! पर ये बात बाबूजी क्या होती है (कि) झूठ बात एक बार १०० बार ५० बार कह दी जाती है तो भूल जाते हैं कि ज्ञान का ज्ञान हो रहा है।

पूज्य बाबूजीः- वो तो सौ बार कहा जाए तो भी एक बार निश्चय कर चुका है। जो अपने परिवार में अपने पिता, अपनी माँ, अपने भाई इनका हम एक बार निश्चय कर चुके हैं। अब दिनभर बाजार में जाकर किसी को भाई साहब, किसी को ताऊजी, किसी को चाचाजी, किसी को काकाजी किसी को पिताजी - ऐसा बोलते ही रहेंगे दिनभर तो कोई झगड़ा नहीं पड़ने वाला (है)। वो स्थिर है, स्थायी भाव है।

मुमुक्षुः- बराबर! तो एक बार स्थायी हो जाना चाहिए। निर्णय कर लिया है।

पूज्य बाबूजीः- घर का निर्णय है न! भाई, पिता, माता, बहन ये तो सब वहीं हैं। अब यहाँ दिनभर बोलेगा बाजार में (कि) आइये भाई साहब! आइये बैठिये! आइये! घर पर भी भाई साहब और ये भी भाई साहब।

मुमुक्षुः- पर एक बार सही निर्णय कर लिया फिर गलती नहीं होती।

पूज्य बाबूजीः- फिर नहीं हिलता है। फिर (तो) वो सारा व्यवहारनय में जाता है।

मुमुक्षुः- इसका ज्ञान, इसका ज्ञान, सबेरे से उठकर ही इसका ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान....

पूज्य बाबूजीः- ऐसा ही आएगा। ऐसा ही आएगा।

मुमुक्षुः- ये आ भी जाता है, फिर भी ज्ञान का ज्ञान ही ज्ञात होता है।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान का ज्ञान ही ज्ञात होता है। उसमें फर्क नहीं पड़ता। वो तो अटल है माने त्रिकाल अटल है, सिद्धांत। उसमें अंतर नहीं पड़ता।

मुमुक्षु:- और ये ज्ञान का ज्ञान ही ज्ञात होता है, वो भी व्यवहार है।

पूज्य बाबूजी:- वो व्यवहार है।

मुमुक्षु:- मैं ज्ञायक हूँ वो निश्चय है।

पूज्य बाबूजी:- वो निश्चय है।

मुमुक्षु:- तो बड़ा लम्बा सफर लगता है बाबूजी।

पूज्य बाबूजी:- मैं ज्ञायक हूँ - ये इतना लम्बा भी नहीं होता है, अनुभूति में। अनुभूति में तो चिन्मात्र भाव जो निश्चय किया, ठीक वैसा का वैसा भासमान होता है। माने चिन्मात्र नाम भी नहीं आता।

मुमुक्षु:- आहाहा! चिन्मात्र नाम भी नहीं आता।

पूज्य बाबूजी:- जैसा निश्चय किया है, ठीक वैसा का वैसा भासमान होता है। नाम नहीं आता है वहाँ, नाम से नहीं होता (है) अनुभव।

मुमुक्षु:- सही बात है! जैसा निश्चय किया है, ठीक वैसा का वैसा अनुभव होता है।

पूज्य बाबूजी:- वैसा का वैसा अनुभव होता है।

मुमुक्षु:- तो अनुभूति के समय चिन्मात्र (क्या) भूल जाता है?

पूज्य बाबूजी:- भूल नहीं जाता है, ये तो साक्षात् हो रहा है। प्रयोग हो रहा है, practical-प्रयोग हो रहा है। भूल नहीं जाता है, नाम भूल जाता है। नाम याद नहीं करता है। नाम याद नहीं करता है। नाम भी कितने हैं! नाम कितने हैं! चिन्मात्र है, ज्ञायक है, जीवस्तिकाय है, जीव पदार्थ है, जीव तत्त्व है, परम तत्त्व है, परम ज्योति है। अब कितने नामों से करेंगे अपन?

मुमुक्षु:- भावरुप परिणमित हो जाता है।

पूज्य बाबूजी:- भावरूप परिणमित होता है।

रसगुल्ले के समय रसगुल्ले का आकार नहीं ज्ञान में आता है, खाते समय। जिस समय स्वाद आता है उसका, असली, एकाग्रता से, उस समय रसगुल्ले का आकार, मिठास उसकी और सफेदी - ये (सब) कुछ नहीं आते हैं। केवल अकेले उसमें निमग्न सम्पूर्ण और उसका स्वाद, वो जानने में आ जाता है। दृष्टि रहती (है) रसगुल्ले पर, स्वाद पर नहीं रहती (है)। स्वाद पर चला जाएगा तो वो गया रसगुल्ले का रस, फालतू गया वो इतना..... इतना चबाना भी बेकार गया। भाव आता है माने ऐसा।

मुमुक्षु:- दृष्टि ज्ञायक से हटी नहीं।

पूज्य बाबूजी:- वो गोल है, वो कैसा है - ये कुछ नहीं आता है। करके रोज ही देख लो न! उसमें क्या है, practical है ये तो। रोज खाकर देख लो। पर उसकी ओर दृष्टि रहे। उसकी ओर

दृष्टि रहे कि ये कोई ऐसी अद्भुत चीज है। बस! तो वहाँ पर आकार-प्रकार और उसकी पर्यायें और उनके गुण, उनका कोई ख्याल नहीं आएगा। और उसका जो भाव है, वो आनंद। बस! उसका अनुभव हो जाएगा।

जैसे नाम के बिना समझाया नहीं जा सकता न! इसलिए ये सारे व्यवहार का प्रयोग करना पड़ता है। माने बिल्कुल निश्चय का तो एक बार निश्चय हो जाता है। उसके बाद सारी प्रवृत्ति व्यवहार में है, अनुभूति को छोड़कर।

मुमुक्षु:- निश्चय का तो एक बार निश्चय हो जाता है और बाकी सारी प्रवृत्ति व्यवहार में है।

पूज्य बाबूजी:- व्यवहार में होती है, अनुभूति को छोड़कर।

मुमुक्षु:- [21]अस्ति-नास्ति आदि धर्म युगल वस्तु हैं। (तो ये) वस्तु की रचना कैसे करते हैं? अस्ति-नास्ति आदि धर्म युगल वस्तु की रचना कैसे करते हैं, धर्म युगल?

पूज्य बाबूजी:- धर्म युगल, धर्मों के जोड़े।

मुमुक्षु:- (वस्तु) की रचना कैसे करते हैं?

पूज्य बाबूजी:- वो इस तरह करते हैं कि जैसे स्वयं मैं अस्तिरूप हूँ, अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, तो अन्य का जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है वो मेरे में प्रवेश नहीं करता। मेरे में प्रवेश कर जाए तो मैं अचेतन हो जाऊँ, जड़ हो जाऊँ। इसलिए साथ में नास्ति धर्म पड़ा है। वो नास्ति धर्म उसका नहीं, दूसरे पदार्थ का नहीं (बल्कि) उसका नास्ति धर्म उसके पास है। लेकिन हमारा नास्ति धर्म हमारे पास है।

तो अस्ति धर्म तो स्वचतुष्टय को सुरक्षित रखता है और नास्ति धर्म जो है (वो) अन्य कोई प्रवेश न करे इसके लिए नास्ति धर्म है। पर झगड़ा नहीं होता कभी कि कोई प्रवेश करे (और) नास्ति धर्म धक्का दे, ऐसा नहीं होता है। आता ही नहीं (है)। इस तरह द्रव्य की, वस्तु की रचना होती है क्योंकि वस्तु में अगर कोई दूसरा प्रवेश कर जाए तो वो वस्तु अशुद्ध हो गई (और) विकारी हो गई। बल्कि अचेतन हो गई, जड़ हो गई कोई चेतन में अगर अचेतन ने प्रवेश कर लिया तो। इसलिए नास्ति धर्म जो है वो वस्तु के भीतर रहता है, बाहर नहीं रहता (है)। वस्तु के भीतर रहता है (और) ये वस्तु के भीतर की ही व्यवस्था है।

तो इस तरह से वो वस्तु की रचना हुई नहीं है। रचना हुई है माने कोई नई बनाई गई - ऐसा नहीं। पर वस्तु की रचना माने वस्तु की रक्षा करते हैं ये धर्म। उसकी रचना करते हैं माने वो बनी रहती है। तो इस तरह बनी रहती है कि स्वयं से तो अस्तिरूप हो वो। माने उसका जितना कुछ है, वो तो उसके पास हो। और दूसरे का उसके पास कुछ न हो थोड़ा भी, तो अपने धर्मों को लेकर सुरक्षित रही - ऐसा।

मुमुक्षु:- और अपना कुछ भी बिखर न जाए।

21 अस्ति-नास्ति आदि धर्म युगल वस्तु की रचना कैसे करते हैं? - 57.01 Mins

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अपना कुछ भी! अपना तो कुछ बिखरेगा ही नहीं। वो तो अस्ति धर्म ने संगठित कर लिया (है)। और नास्ति धर्म में दूसरे का अणुमात्र भी (अंदर) नहीं आया, इस तरह से।

एक प्रहरी होता है न, राजदरबार का। राजा का महल है। तो वहाँ नीचे दरवाजे पर वो प्रहरी, प्रहरी खड़ा रहता है। तो वो जो प्रहरी है, वो रहता तो दरवाजे के भीतर है। लेकिन उसका काम क्या है? कि कोई नहीं आने पावे। और भीतर के जो होते हैं काम करनेवाले, वो भीतर उसके अंतःकरण का, अंतरंग का, अंतःपुर का काम करते हैं। तो वो भीतर के अस्तिरुप और ये बाहर का नास्तिरुप। नास्तिरूप है लेकिन काम अस्ति का कर रहा है। अस्तिस्वरुप है अपने भीतर। नास्ति धर्म हर पदार्थ के भीतर अस्तिस्वरुप है।

मुमुक्षु:- अद्भुत! अद्भुत! नास्ति धर्म हर पदार्थ के भीतर अस्तिस्वरुप है।

पूज्य बाबूजी:- अस्तिस्वरूप है और इस तरह काम करता है। वो प्रहरी खड़ा रहता है सिर्फ। कोई उसमें धक्का-धुक्की नहीं होती। वो जानते हैं कि नहीं! जाना नहीं है भीतर अंतःपुर में। तो वो नास्ति धर्म हो गया। और भीतर जो रहते हैं, अंतःपुर का काम करनेवाले, वो अस्ति धर्म हो गया।

मुमुक्षु:- बाबूजी! इसमें ऐसा बोल सकते हैं कि नास्ति में पात्रता तैयार होती है और अस्ति में अनुभव होता है?

पूज्य बाबूजी:- नहीं वो नहीं। वो कुछ नहीं, वैसा नहीं। वो निषेध है। ये तो अस्तिरुप धर्म है, अंतरंग धर्म है।

मुमुक्षु:- [22]बराबर! अंतरंग धर्म है।

धर्म और गुणों में क्या अंतर है?

पूज्य बाबूजी:- धर्म और गुण में अंतर है। धर्म की पर्याय नहीं होती और गुणों की पर्याय होती है। इसलिए धर्म जो है वो दृष्टि के विषय में नहीं आते।

मुमुक्षु:- बराबर! वाह रे वाह! तो बाबूजी! धर्म को जानने का प्रयोजन क्या है?

पूज्य बाबूजी:- धर्म को नहीं जाने तो पदार्थ का स्वरुप ही नहीं पता लगे। वस्तु के स्वरुप को जानने के लिए ये जो परस्पर विरुद्ध दो धर्म हैं अनेकांतस्वरुप, उनका जानना जरूरी है। ऐसे अनंत युगल, अनंत जोड़े रहते हैं पदार्थ में। अनंत, एक पदार्थ में। अब वो सब वस्तु की रचना करते हैं। विरुद्ध-अविरूद्ध शक्ति, विरुद्ध और अविरुद्ध शक्ति। अविरुद्ध शक्ति माने अस्ति (और) विरुद्ध शक्ति माने नास्ति। इस तरह वस्तु की रचना होती है, स्वक्षेत्र की।

अगर कोई उसमें आने लग जाए, जैसे अस्ति धर्म है केवल और नास्ति धर्म नहीं है। तो उसका अर्थ के हुआ कि वो तो अस्तिरुप अपना काम करेगा। अब नास्ति का तो कोई वहाँ पर

22 धर्म और गुणों में क्या अंतर है? - 1.01.28 Hours

निषेध नहीं है न! वहाँ पर कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए दरवाजा खुला रहेगा। तो बाहर के पदार्थ प्रवेश करके उसे अचेतन बना देंगे। इसलिए उसकी आवश्यकता है। जैसे प्रहरी नहीं तो फिर क्या होगा? जो अंतःपुर है, वो तो साधारण झोपड़ी हो जाएगी। राजा-रानी का जो अंतःपुर है वो तो झोपड़ी हो जाएगी न साधारण! कोई भी जा सके(गा)।

मुमुक्षुः- धर्म की पर्याय हो तो क्या बाधा है?

पूज्य बाबूजी:- धर्म की पर्याय हो तो वस्तु का नाश हो जाए। क्योंकि (जैसे) अस्ति धर्म है। अब वो अस्ति धर्म की पर्याय होगी तो नास्तिरुप होगी। क्योंकि उसमें विकार की भी संभावना है न! पर्याय में ये जरुरी नहीं है कि विकार हो। जैसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल की पर्याय में विकार नहीं होता। लेकिन पर्याय में विकार की संभावना रहती है। वो पुद्गल और आत्मा में होती है। और पुद्गल में भी विकार होता है और आत्मा में भी पर्याय में विकार होता है।

तो अब अस्ति धर्म है। और वो अस्ति धर्म की हम पर्याय मानें तो उसकी विकारी (और) विरुद्ध पर्याय क्या होगी? नास्ति। तो नास्ति माने आत्मा का नाश हो जाएगा।

मुमुक्षुः- ओहोहो! अरे वाह! अद्‌भुत बाबूजी! अद्‌भुत! है धर्म अस्तिरुप, अस्ति धर्म है।

पूज्य बाबूजी:- पर पर्याय तो नास्तिरुप होगी।

मुमुक्षुः- तो विकारी रूप होगी। तो विकार तो नास्ति है।

पूज्य बाबूजी:- तो पदार्थ का नाश हो जाएगा। इसलिए पदार्थ की रचना करने वाले इनको लिखा है।

मुमुक्षुः- पदार्थ का नाश करने वाला नहीं।

पूज्य बाबूजी:- नहीं! पदार्थ की रचना करनेवाले। वस्तु में वस्तुत्व की रचना करने वाले - ऐसा लिखा है। अस्ति नास्ति आदि **स्तुवस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाश-नमनेकान्तः। (समयसार आत्मख्याति टीका)** - ऐसा लिखा है परस्पर विरुद्ध; परस्पर विरुद्ध हैं लेकिन लड़ते नहीं हैं। दोनों (ही) काम (तो) उस वस्तु की रचना का ही करते हैं। नास्ति भी वस्तु की रचना का काम कर रहा और अस्ति भी वस्तु की रचना का काम कर रहा।

मुमुक्षुः- Fantastic! एकदम perfect logic.

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १५, तारीख ८-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

पूज्य बाबूजी:- [23]यह जानन-क्रिया है, आत्मा वहाँ बसता है और जो क्रोध है, वो पुद्गल में बसता है। क्रोध पुद्गल में बसता है, इसलिए दोनों के आधार-आधेय संबंध नहीं है। माने क्रोध वो ज्ञान का आधार नहीं है। क्रोध ज्ञान के आधार से नहीं रहता (है) और ज्ञान क्रोध के आधार से नहीं रहता। तो ज्ञान जो है, ज्ञान माने आत्मा, वो जानन-क्रिया के आधार से रहता है। जानन-क्रिया में आत्मा है और क्रोध जो है वो पुद्गल का है, विकारी है, अचेतन है। इसलिए वो इसमें रहता है। इस प्रकार आधार-आधेय संबंध का अभाव होने के कारण दोनों बिल्कुल न्यारे-न्यारे हैं। दोनों के प्रदेश भेद बताया (है), प्रदेश-भेद।

द्रव्य, काल और भाव, ये तीन से तो न्यारा है ही सही। लेकिन प्रदेश-भेद में थोड़ी दिक़्क़त आती है। प्रदेश-भेद में हम लोग भी प्रश्न कर बैठते हैं कि क्रोध और आत्मा के प्रदेश अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? कि वो तो अत्यंत स्वाभाविक है। ज्ञान जो है वो तो जाननेवाला है और क्रोध जो है वो नहीं जाननेवाला भाव है और वो ज्ञान से विपरीत है। क्योंकि ज्ञान जो है वो तो संपूर्ण विश्व को दो विभागों में देखता है। और क्रोध जो है वो एक विभाग में देखता है। तो इसलिए क्रोध में ज्ञान नहीं है और ज्ञान में क्रोध नहीं है। तो आत्मा जो है वो ज्ञान के आधार से है। और क्रोध जो है वो पुद्गल के आधार से है। इसलिए दोनों में आधार-आधेय संबंध नहीं होने से दोनों के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं। प्रदेश माने रहने की जगह, वो दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

यद्यपि दोनों एक ही साथ देखे जाते हैं, मिले हुए। जहाँ ज्ञान है वहीं क्रोध है, लेकिन दोनों के बीच में एक संधि है। और उस संधि का दर्शन अज्ञानी को नहीं होता। क्योंकि ज्ञान में जो क्रोध भासित हुआ तो वो क्रोध और ज्ञान दोनों को एक मानकर, एकसा अनुभव करता है। तो अशुद्ध अनुभूति आत्मा की होती है। और जो ज्ञानी है, उसने क्रोध और ज्ञान दोनों की संधि को देख लिया है। देख लिया है, क्योंकि क्रोध जो है उसका कार्य न्यारे प्रकार का है। उसका कार्य संबंध बनाने के प्रकार का है। उसका कार्य इष्ट-अनिष्ट की कल्पनायें है। इष्ट-अनिष्ट की कल्पना माने इष्ट-अनिष्ट भी जानना (और) इष्ट-अनिष्ट (का) अनुभव करना। माने ये अच्छा है, ये बुरा है - इस प्रकार इष्ट-अनिष्ट के विकल्प करना। इष्ट-अनिष्ट के विकल्प करना ये तो क्रोध का काम है और ज्ञान के कोष में इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। उसमें इष्ट-अनिष्ट का ही अभाव है। क्योंकि जगत में एक तो मैं

23 ज्ञान और क्रोध में भिन्नता। - 0.15 Mins

और दूसरी ओर एक ही line (पंक्ति) में सारा जगत है, एक ही line (पंक्ति) में। और कोई इष्ट और अनिष्ट नहीं है मेरे लिए क्योंकि सारा विभाग है। हर पदार्थ का अपना-अपना विभाग है द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का। इसलिए मैं न्यारा और जगत न्यारा। तो मैं ज्ञान के आधार से रहता हूँ और क्रोध अचेतन होने से अचेतन के आधार से रहता है। इसलिए ज्ञान और क्रोध दोनों प्रदेश से भी न्यारे-न्यारे हैं। क्योंकि दोनों की रहने की जगह अलग-अलग हो गई न! तो इसलिए न्यारे-न्यारे हैं।

फिर उसमें एक हेतु है कि चूँकि दो विपरीत भाव होते हैं, तो वो दो द्रव्य हैं। दो विपरीत भाव हैं इसलिए वो दो द्रव्य हैं, दो सत् हैं वो। तो जो हर भाव है उसका अपना-अपना रहने का क्षेत्र है, अलग। तो इसलिए ज्ञान जो है वो क्रोध से विपरीत भाव है और क्रोध ज्ञान से विपरीत भाव है। इसलिए ज्ञान की रहने की जगह (पर) क्रोध नहीं हो सकता। अगर ऐसा हो जाए तो दोनों एकमेक होकर (के फिर) चेतन का नाश हो जायेगा या चेतन जो है वो जड़ बन जायेगा।

तो दोनों के दरवाज़े न्यारे-न्यारे (हैं) और रहने का स्थान न्यारा-न्यारा (है)। क्योंकि दो भाव जो न्यारे-न्यारे हैं तो उनका सब कुछ अलग-अलग है..द्रव्य अलग, क्षेत्र अलग, काल अलग और भाव अलग। तो तीन तो अपनी समझ में आ जाते हैं। लेकिन क्षेत्र की अपेक्षा हम उसमें प्रश्न कर बैठते हैं कि क्षेत्र तो, जिस क्षेत्र में ज्ञान है उसी क्षेत्र में क्रोध है। तो दोनों जो हैं वो एक ही क्षेत्र में हैं। क्षेत्र-भेद कैसे हो सकता है? तो ये तो निश्चयनय से कहा है आचार्य ने ऐसा (इस प्रकार) हम उसमें अपनी बुद्धि लगाते हैं और आचार्य को चुनौती देते हैं। उनको challenge करते हैं कि - ये निश्चयनय की बात है। है तो एक ही क्षेत्र, लेकिन निश्चयनय से ऐसा-ऐसा कहा है कि दोनों का न्यारा-न्यारा क्षेत्र है। लेकिन वास्तविकता क्या है? कि दोनों के क्षेत्र न्यारे-न्यारे हैं - इसका नाम निश्चयनय है। निश्चयनय से नहीं कहा (क्योंकि) निश्चयनय से वस्तु-व्यवस्था बनती नहीं है। निश्चयनय तो वस्तु-व्यवस्था को जानता है, जैसी है वैसी। इसलिए क्रोध और ज्ञान दोनों के दोनों, उनका क्षेत्र भी.... क्योंकि दो भाव हैं, तो दो भावों का सर्वस्व न्यारा-न्यारा है। एक नहीं (हैं), वो दोनों न्यारे-न्यारे हैं।

अब यदि हम ये माने कि क्षेत्र से अगर एक मान लिया जाये तो क्या दिक़्क़त है? क्योंकि जहाँ ज्ञान रहता है उसी स्थान पर क्रोध रहता है। क्योंकि ज्ञान की भी पर्याय है, जानन-क्रिया, और क्रोध की भी पर्याय आत्मा में ही होती है। तो ज्ञान की पर्याय भी सारे आत्मा में, संपूर्ण आत्म-प्रदेशों में होती है। उधर क्रोध की पर्याय भी होती न्यारी है लेकिन संपूर्ण आत्म-प्रदेशों में ही वो दिखाई देती है। सम्पूर्ण आत्म-प्रदेशों में ही होती है - ऐसा बोल दें हम एक बार (तो) कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन ये जो न्यारापन है इसमें कभी भी अनुपात और percentage नहीं होता। ये सूत्र है याद रखने लायक है कि जो दो भाव न्यारे हैं, तो उनमें कभी भी एकता का कोई percentage (प्रतिशत) नहीं हो सकता है। माने एकता या तो पूरी होगी या ये बिल्कुल भिन्न-भिन्न होंगे। इसलिए

अगर प्रदेश की अपेक्षा हमने थोड़ा भी एकत्व दिया दोनों को (और) एक माना, तो वे द्रव्य की अपेक्षा भी एक हो जायेंगे, काल की अपेक्षा भी एक हो जायेंगे और भाव की अपेक्षा भी एक हो जायेंगे। इसलिए कोई अपेक्षा उसमें लगेगी (नहीं)। इसलिए नहीं लगेगी कि जो एकत्व और भिन्नत्व है, उसमें कभी percentage (प्रतिशत) नहीं होता। प्रतिशत नहीं होता कि पचास प्रतिशत ज्ञान और पचास प्रतिशत क्रोध, हम ऐसा मान लें? कि ऐसा मान लेंगे तो फिर यहाँ से उन दोनों का एकत्व शुरु हो गया। तो एकत्व वो कभी शुरु और अंत नहीं होता है। पर एकत्व जो है वो एक ही बार में पूरा होता है या फिर बिल्कुल नहीं होता है। इसलिए क्षेत्र की अपेक्षा भी एकत्व नहीं है।

और वहाँ ऐसा विचार करना ये बहुत बड़ा पाप है, बहुत बड़ा पाप कि आचार्य ने इस अपेक्षा से (मात्र) कह दिया है (मगर) वास्तव में तो दोनों के प्रदेश एक हैं, क्योंकि दोनों एक ही जगह रहते हैं। जब (कि) मानने का (और) बोलने का तरीका ये होना चाहिए कि वास्तव में तो दोनों के प्रदेश न्यारे-न्यारे हैं लेकिन व्यवहार से एक कह दिए (गए हैं)। वास्तव में तो न्यारे-न्यारे हैं। और वो वास्तविकता ही आचार्य ने उस गाथा में दर्शाई है - ये प्रयोजन है आचार्य का।

मुमुक्षु:- तो जानन-क्रिया के आधार से, जानन-स्वभाव के .. ।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! यहाँ ऐसा कहा है कि आत्मा जानन-क्रिया में रहता है। वरना कहाँ बताएँगे हम आत्मा को? आत्मा को कहाँ बताएँगे? आत्मा तो द्रव्य है न? तो कहते हैं (कि) रहता कहाँ है, ये बताओ पहले। तो कि वो उसकी जानन-क्रिया में रहता है, जाननभाव में रहता है। और क्रोध कहाँ रहता है? कि क्रोध के जो साथी हैं (वो) उनके साथ रहता है। तो क्रोध का साथी अचेतन-जड़ है, तो वो उनके साथ रहता है। इसलिए दोनों न्यारे-न्यारे हुए, बिल्कुल न्यारे-न्यारे हुए।

इसलिए प्रदेश की अपेक्षा अगर एकत्व मानते हैं तो संपूर्ण एकत्व हो जायेगा, क्योंकि एकत्व में कभी विभाजन या कभी प्रतिशत नहीं हुआ करता (है)। अनुपात नहीं होता है उसमें। ऐसा अनुपात नहीं है, इसलिए दोनों बिल्कुल न्यारे-न्यारे हैं। ऐसा जब जानता है तो क्रोध से आसक्ति तोड़कर मैं क्रोध ही हूँ; पहले ऐसा मानता था कि मैं क्रोध ही हूँ। ऐसा मानने की बजाय, अब मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य हूँ - ऐसा मानता हुआ स्वरूप की अनुभूति कर लेता है, ज्ञायक की अनुभूति कर लेता है और उधर संवर और निर्जरा एक साथ प्रगट हो जाते हैं।

संवर अधिकार है। अधिकार देखना चाहिए कि तरीका क्या दिया (है) आचार्य ने। संवर के उत्पन्न होने की विधि क्या है? विधि ये कि सबसे पहले तुम्हारे भीतर तुम्हें ये जो क्रोध-मान-माया-लोभ आदि राग-द्वेष आदि ये आत्मा के साथ एकमेक दिखाई देते हैं। ये आत्मा के साथ एकमेक कभी हुए नहीं और न कभी होने वाले हैं। ये न्यारे-न्यारे ही रहे हैं, इसलिए इनको न्यारा-न्यारा देखो। जानो पहले, इनके स्वरूप को जानो। क्रोध का जो स्वभाव है, वो तो जड़ है। और ज्ञान का जो स्वभाव है, वो चिद्रूपता है। ऐसा आया है न कि - ज्ञान जो है वो तो चिद्रूपता को धरण

करने वाला ज्ञान और जड़रुपता को धारण करनेवाला राग, इनका प्रज्ञा के द्वारा दारुण-विदारण करना चाहिए। दारुण-विदारण माने उसमें दया नहीं करना चाहिए, उनको भिन्न-भिन्न करने में कि वो चोट जरा धीरे मारो, नहीं तो लग जायेगी इनके - ऐसा नहीं। दारुण-विदारण! दारुण माने निर्दयता से, निर्दयता से दोनों को न्यारा-न्यारा जानना चाहिए। कर देना चाहिए माने? जानना चाहिए। करना तो है नहीं क्योंकि न्यारे-न्यारे ही हैं। इस तरह प्रदेश की अपेक्षा भी निश्चय से, निश्चयनय से वास्तव में वे दोनों न्यारे-न्यारे हैं। व्यवहार से एक कहे जाते हैं।

मुमुक्षु:- बराबर! निश्चय से न्यारे हैं, व्यवहार से एक हैं।

पूज्य बाबूजी:- वरना वहाँ कुंदकुंद को challenge करना तो अनंत तीर्थंकरों को challenge करना बनता है। हमारी बुद्धि जो जटिल है न! वर्तमान में जो हमारा स्वरूप बताया है वो तो ऐसा है कि बुद्धि हमारी बहुत जटिल है; दुर्मेध हैं हम, माने सत्य बात बड़ी मुश्किल से प्रवेश करती है। और श्रुतियों का अंत नहीं है। श्रुतियाँ बहुत हैं, उनके कथन विविध प्रकार के हैं। इसलिए जल्दी से वो काम कर लेना चाहिए जिससे जन्म और मरण का क्षय हो। इसलिए ज्यादा श्रुतियों का पढ़ना, ज्यादा शास्त्रों को पढ़ना, उससे अपने को रोकना चाहिए क्योंकि बुद्धि दुर्मेध है। बुद्धि नहीं है हमारे पास इतनी और वो भी दुर्बुद्धि है माने बुरी तरफ, बुरे काम की तरफ़ जल्दी जाती है। विषयों की ओर जल्दी जाती है। इसलिए वहाँ से हटाकर ज्ञान और राग का भेद जानकर और शुद्धात्मा में पहुँच जाना चाहिए।

मुमुक्षु:- परिणाम में आत्मा है ऐसा कहा। द्रव्य अपने परिणाम में है।

पूज्य बाबूजी:- द्रव्य परिणाम में है, ज्ञान में है।

मुमुक्षु:- ज्ञान में, माने कोई भी द्रव्य अपने परिणाम में है। तो द्रव्य की उपस्थिति तो परिणाम में बता दी। अब परिणाम के अंदर देखें तो परिणाम से तो रहित आत्मा दिखता है।

पूज्य बाबूजी:- नहीं! वो प्रकरण नहीं है यहाँ। वो आ जाये न! वो ही आया माने प्रकरण। प्रकरण वो ही आया कि आत्मा ज्ञान में रहता है, ज्ञान-क्रिया में रहता है। ज्ञान-क्रिया में रहता है अर्थात् वो ज्ञान ही है। जो जिसमें रहता है वो वही होता है। जो जिसका होता है वो वही होता है। तो आत्मा में ज्ञान-क्रिया होती है तो आत्मा ज्ञान ही है और जो ज्ञान है वो आत्मा ही है। इस प्रकार जानता हुआ अनुभूति कर लेता है। तो उस अनुभूति का नाम संवर और उस अनुभूति का नाम निर्जरा (है)।

मुमुक्षु:- माने ये दोनों की अभिन्नता बताई थी।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! दोनों की अभिन्नता बताकर आचार्य को वहाँ पहुँचाना है। माने क्रोध से तो इसको अलग किया ही एकदम। कि क्रोध तो तेरा है ही नहीं, तू उस पर अब विचार करना ही मत। वो तो न्यारा-न्यारा ही है, ऐसा एकबार जान ले। और अब उस पर विचार मत करना। अब तो तू ज्ञान है, सिर्फ ज्ञान-क्रिया में रहनेवाला है। तो ज्ञान-क्रिया में जो रहेगा वो ज्ञान का ही

होगा और वो ज्ञानमय ही होगा। इसलिए तू ज्ञानमय है, माने मैं ज्ञानमय हूँ अर्थात् मैं तो ज्ञायक हूँ। बस! इस तरह वो वहाँ पहुँच जाता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! ज्ञान-क्रिया में रहनेवाला तो ज्ञान ही होता है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान ही होता है।

मुमुक्षुः- अब ज्ञान होता माने मैं ज्ञानमय हूँ।

पूज्य बाबूजीः- मैं ज्ञानमयी हूँ। माने क्रोध नाम का द्रव्य, वो अलग। द्रव्य है वो भी, सत् है और आत्मा नाम का चैतन्य द्रव्य (है), वो न्यारा है। दोनों न्यारे हैं। रहते कहाँ हैं? तुम्हारा निवास-स्थान कौनसा है? मैं तो ज्ञान में रहता हूँ। वो कहता है (कि) मैं तो मेरे साथियों के साथ रहता हूँ। इसलिए इसमें बुद्धि को लगाना नहीं चाहिए कतई। ऐसा बहुत इस गाथा के साथ अन्याय होता है।

अन्याय बहुत होता है (कि) ये तो कह दिया है कि निश्चयनय से, वरना वास्तव में तो एक हैं। तो वास्तव में एक हैं तो (फिर) निश्चयनय कहाँ रहा? निश्चयनय अलग-अलग बता रहा है और हैं तो एक - तो (इसका अर्थ ये हुआ कि) तुमने कुंदकुंद को ठुकराया है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! यहाँ जो उपयोग में उपयोग लिया है, वो सामान्य उपयोग की ही बात है न?

पूज्य बाबूजीः- उपयोग माने आत्मा! उपयोग में उपयोग है। तो उपयोग में माने ये जानन-क्रिया, जानने वाली पर्याय और उपयोग माने आत्मा। ये ज्ञानमय ये आत्मा। बस, ये लेना। पहला उपयोग जो है वो जानन-क्रिया (और) दूसरा उपयोग द्रव्य।

मुमुक्षुः- पहला उपयोग है वो जानन-क्रिया और दूसरा उपयोग है, वो आत्मद्रव्य।

पूज्य बाबूजीः- द्रव्य।

मुमुक्षुः- ज्ञानमय भाव।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! जानन-क्रिया माने ज्ञानभाव और वो उपयोग माने ज्ञानमय भाव। जो द्रव्यात्मक उपयोग है जो ज्ञानमय, माने अनंत गुणात्मक (है).. तो यहाँ ज्ञान से लेना, क्योंकि ज्ञान तो सबको represent करता है। सबका प्रतिनिधी है वो तो, इसलिए।

मुमुक्षुः- ज्ञानमय बोलने से दृष्टि का विषय वो आ गया न?

पूज्य बाबूजीः- ज्ञानमयी हूँ मैं माने ज्ञान ही हूँ, ऐसा। क्योंकि जो ज्ञान है वो आत्मा ही है और आत्मा के अर्थ में ही उसका प्रयोग होता है कि तुम तो इस ज्ञान तत्त्व को ही भजो हमेशा, ऐसा। तो ज्ञान तत्त्व को भजो माने वो ज्ञानमय जो ज्ञायक है, उसको भजो। उसकी निरंतर भावना करो, उसका निरंतर अनुभव करो। इसलिए वो आत्मा ही आता है, हर तरह से। जानन-क्रिया कहकर पर्याय दृष्टि पैदा नहीं की है आचार्य ने। पर्याय दृष्टि पैदा नहीं की है।

हाँ! बहुत सुंदर है वो गाथा, बहुत ही बढ़िया गाथा है। बहुत ही अच्छी! लेकिन जब तक गुरु से नहीं मिले न, तब तक तो वो उसका अर्थ हो ही नहीं सकता। क्योंकि हम तो पर्याय को

आत्मा के आश्रित बोलते हैं, और शास्त्र भी आत्मा के आश्रित बोलते आए हैं। भगवान तीर्थंकर भी गुण और पर्याय को आत्माश्रित बोलते हैं। यहाँ आत्मा को वो पर्याय आश्रित बताया। आत्मा पर्याय में, ज्ञान पर्याय में रहता है। वरना कहाँ बतायेंगे निवास? बताओ आत्मा का निवास क्या है? तो उत्तर तो ये होगा कि आत्मा तो आत्मा में ही रहता है (मगर) इससे संतोष नहीं होगा। तो इसलिए उसका स्वरूप बताया (है) कि वो तो वहाँ रहता है अपने स्वरुप में। ज्ञान में रहता है, जानन-क्रिया में रहता है।

मुमुक्षु:- और जानन-क्रिया और आत्मा में कोई भेद नहीं है, तो वो ज्ञायक ही है।

पूज्य बाबूजी:- जानन-क्रिया और आत्मा में भेद नहीं है, बस! क्योंकि उसको तो करना अभेदता है न! इसको तो संवर है न अधिकार। संवर अधिकार माने स्वरूप की अनुभूति! वो करना है। तो स्वरूप की अनुभूति की जो विधि है उससे कैसे चूक जायेगा? ये जानन-क्रिया में कैसे अटक जायेगा? अटकेगा ही नहीं। पहले ही निर्णय कर चुका है कि पर्याय मात्र जो है उस पर मेरा बल है ही नहीं। होना ही नहीं चाहिए पर्यायमात्र पर बल। जानन-क्रिया भी तो पर्याय है न! तो उस पर बल नहीं होगा। उस पर बल नहीं है। जानन-क्रिया में आत्मा रहता है - ये कहा है। वो आत्मा तो है ही नहीं। उससे न्यारी चीज (है) शुद्ध ध्रुव!

मुमुक्षु:- जानन-क्रिया में आत्मा रहता है।

पूज्य बाबूजी:- जानन-क्रिया में आत्मा रहता है।

मुमुक्षु:- पर्याय के आधार से आत्मा दिखाया, आहाहा!

पूज्य बाबूजी:- बताना पड़ता है न! नहीं तो आत्मा आत्मा में रहता है, बस एक ही उत्तर होता। एक ही उत्तर होता। तो वो तो logic (तर्क) नहीं बैठता है। इसलिए बताओ! आप तो घर बताओ इसका (कि) कहाँ रहता है ये हमेशा? हमेशा कहाँ रहता है? ये हमेशा ज्ञान में ही रहता है, ज्ञान-क्रिया में ही रहता है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! ये गाथा सुनने से दृष्टि दूसरी ओर से हट जाती है कि ज्ञानमयी भगवान आत्मा, वो मैं हूँ।

पूज्य बाबूजी:- बस! ज्ञानस्वरूप हूँ मैं, तो हो गया। ज्ञायक आ गया और वही चाहिए था हमको। निर्णय के समय से लेकर हमको वही चाहिए। उसके बाद चिंतन में भी और अनुभूति में भी वही चाहिए। चिंतन में भी वही ज्ञायक चिन्मात्र और अनुभूति में भी वही चिन्मात्र! इतना निर्णय तो पहले द्रव्य-गुण-पर्याय का कर ही लिया है। उसमें से select (चयन) उसको किया है न! तो फिर ये selection बदल जायेगा क्या? कि आचार्य (को) क्या पर्याय में उलझा रहे हैं हमको? या पर्याय का आविर्भाव कर रहे हैं (और) द्रव्य का तिरोभाव कर रहे हैं (मगर) ऐसा (तो) संभव नहीं है। जैनदर्शन में ऐसा पूर्वापर विरोध कहीं, कहीं भी नहीं है। कहीं भी, किसी भी स्थान पर भी पूर्वापर विरोध रहित (है) इसलिए तो इसकी विजय होती है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! इतनी-इतनी बात कहने पर १८१ गाथा में ये भाव क्यों रखा? बहुत सारी बातें आ गईं फिर भी आचार्य ने....

पूज्य बाबूजी:- अधिकार के अनुसार रखा। अधिकार के अनुसार रखा, पहले बहुत बातें आ गईं। ज्ञायक की बात पहले नहीं आयी क्या? आयी। आयी, सब में ही आयी। आस्रव अधिकार, बंध अधिकार सब में आयी। उनका स्वरूप बताते हुए उनसे न्यारा चैतन्य है, उनसे न्यारा परम पारिणामिकभाव है - ये आयी सबमें। सबमें आयी। पर यहाँ संवर की विधि बताना है (कि) संवर कैसे होता है? कि सबसे पहले ये मानो कि आत्मा ज्ञान में रहता है अर्थात् ज्ञान ही है। और ज्ञान है अर्थात् वो चैतन्य, ज्ञायक ही है बस। क्योंकि ये तो हमारा पूर्व का ही निर्णय है। उसमें अभी कैसे अटका जा सकता है? पर्याय में या गुण में अटका कैसे जा सकता है? वरना निर्णय ही स्वच्छ नहीं हुआ, तो फिर ये ज्ञानधारा चलेगी नहीं आगे। कभी नहीं चलेगी! वो तो क्रोध को मिलाती हुई ही चलेगी फिर।

मुमुक्षुः- इसमें किसी को कोई प्रश्न हो तो स्पष्ट कर लेना। कोई संकोच नहीं रखना क्योंकि यह अद्‌भुत गाथा है। इसलिए कुछ भी मन में रह जाता हो तो पूछ लेना। अद्‌भुत बाबूजी!

मुमुक्षुः- [24]प्रश्न है प्रभु! जो आत्मा को जानता है वो विश्व को जानता है और जो विश्व को जानता है वो आत्मा को जानता है। वो साधक अवस्था कैसे (है)? कृपा करके स्पष्टता किजीये।

पूज्य बाबूजी:- जिसने आत्मा को जाना तो उसने ये देखा कि उसकी जो ज्ञान पर्याय है, उस ज्ञान पर्याय में सारा विश्व झलकता है। सारा विश्व अपने प्रतिभासों को ज्ञान को समर्पित कर देता है। ज्ञेयाकार जितने भी हैं, उनके जो प्रतिभास हैं वो सारे के सारे ज्ञानात्मक हैं, माने वो सब ज्ञानस्वरूप हैं। तो सारा विश्व ऐसा लगता है कि सारे विश्व ने उस ज्ञान को आत्म-समर्पण कर दिया हो, ऐसा लगता है।

मुमुक्षुः- आहाहा! माने सारे विश्व ने उस ज्ञान को आत्मसमर्पण कर दिया हो। ओहोहो!

पूज्य बाबूजी:- आत्म समर्पण कर दिया है और उस ज्ञान पर्याय को देखने पर ये लगता है कि सारा विश्व जो है वो मानो मेरे में आ गया है, ऐसा लगता है। तो इसलिए ज्ञान पर्याय को देख लेने से सारा विश्व और सारे विश्व को देखने से आत्मा क्योंकि आत्मा उन-मय है, उन प्रतिभासों सहित। इसलिए वो आत्मा (अर्थात्) स्व और पर का प्रतिभास। तो दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई देते हैं न! तो ज्ञान में स्व और पर का, परज्ञेयों का, अनंत ज्ञेयों का प्रतिभास वो एक ही साथ हुआ है। इसलिए केवल सिर्फ़ ज्ञान पर्याय को देखने से स्व और पर दोनों का विभाग जानने में आ जाता है कि ये जितने प्रतिभास हैं और, ज्ञेय जैसे प्रतिभास, ये तो सारे के सारे अन्य हैं, मेरे से न्यारे हैं। न्यारे ही हैं। हैं ज्ञान, पर ज्ञान होने पर भी इनसे मेरे को क्या मतलब है? इस तरह न्यारे हैं, और वो

24 जो आत्मा को जानता है वो विश्व को जानता है और जो विश्व को जानता है वो आत्मा को जानता है। वो साधक अवस्था कैसे? - 24.08 Mins

उनके आकार ठीक ज्ञेयों जैसे हैं। इसलिए वो जान लेता है कि ये सारे के सारे विश्व से संबंधित आकार हैं। तो इनसे भी मेरा वास्तव में कोई संबंध नहीं है। इस तरह जानता हुआ मैं तो.. जैसे (कि) प्रतिभास ज्ञान है, उसी तरह संपूर्ण आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा जानता हुआ, ज्ञानमय आत्मा का अनुभव कर लेता है।

एक सिर्फ़ ज्ञान की पर्याय को देखा, एक सिर्फ़ केवलज्ञान की एक पर्याय। उसमें सारे अपने अनंत गुण आ गये, उसमें ज्ञायकाकार अपना आत्मा आ गया और सारे प्रतिभास जगत के। जगत के सारे द्रव्य-गुण-पर्याय रुप आकार माने वो प्रतिभास अर्थात् उसका आकार, उसको आकार के नाम से बोलते हैं, द्रव्य-गुण-पर्याय को.. तो वो सबके सब इसमें आ गये। और वे सारे प्रतिभास एक ही पर्याय होने के कारण हैं न्यारे-न्यारे। माने ज्ञान में, केवलज्ञान में दिखते हैं बिल्कुल न्यारे-न्यारे क्योंकि हर एक का स्वरूप न्यारा-न्यारा है, सृष्टि में, विश्व में न्यारा-न्यारा है। इसलिए बिल्कुल न्यारे-न्यारे दिखाई देते हैं। न्यारे-न्यारे दिखाई देने पर भी जो प्रतिभास है, महाप्रतिभास, वो एक है। अर्थात् वो एक है ज्ञान की पर्याय। केवलज्ञान की एक पर्याय हो, तो वो केवलज्ञान की एक पर्याय वो अनंत प्रतिभासमय होकर भी अनंत नहीं हो जाती। अनंत खंडो में नहीं बँट जाती पर वो एक रहती है। इस प्रकार मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ मैं। इस तरह अनुभव कर लेता है।

अनंत प्रतिभासों को देखना चाहिए कि अनंत प्रतिभास जो हैं, वो सबके सब ज्ञान हैं। और ज्ञान है माने एक ज्ञान पर्याय में ही हैं वो सारे के सारे। एक ज्ञान पर्याय, ये तो कहते हैं एक अखंड ज्ञान पर्याय। तो वो बस एक ही ज्ञान पर्याय ही है, अनंत को क्या देखना? ये अनंत ही तो हैं सारे। अनंत प्रतिभास जो मिलकर .. अनंत प्रतिभास केवलज्ञान की एक पर्याय में मिलकर, वो सारे के सारे उस शुद्धात्मानुभूति के साथ आत्मा में डूब जाते हैं।

मुमुक्षुः- उस शुद्धात्मानुभूति के साथ आत्मा में डूब जाते हैं।

पूज्य बाबूजीः- ऐसा नहीं है कि शुद्धात्मा (का) अनुभूति करनेवाली (हो) तो वो पर्याय का थोड़ा सा कोई अंश होगी, आत्मा का अनुभव करनेवाली। और उन ज्ञेय जैसे प्रतिभासों को देखनेवाला ज्ञान बाकी और होगा, इस तरह नहीं (है)। लेकिन एक अखंड पर्याय स्व-पर का प्रतिभास करनेवाली वो जो है, वो कुल मिलाकर आत्मा में डूबी रहती है निरंतर, आत्मा में लवलीन रहती है। उसका नाम केवलज्ञान है। माने अनंत प्रतिभास उनका नाम सिर्फ एक, एक ज्ञान, एक अखंड ज्ञान! एकरूप ज्ञान और वो मैं हूँ।

मुमुक्षुः- प्रतिभास भले ही अनंत हों पर ज्ञान की पर्याय खंड-खंड नहीं होती।

पूज्य बाबूजीः- अनंत प्रतिभास वो शुद्धात्मा का अनुभव करते हैं क्योंकि वो ज्ञान हैं। एक ही ज्ञान की पर्याय के हैं वो। वो एक ही ज्ञान की पर्याय है। इसलिए वो ज्ञान की पर्याय का अनुभव जो श्रुतज्ञान है, तो वो श्रुतज्ञान का कोई अंश नहीं करता है शुद्धात्मा का अनुभव। शुद्धात्मा का अनुभव वो श्रुतज्ञान की ही कोई एक पर्याय का कोई अंश नहीं करता है। और इसी तरह केवलज्ञान

की पर्याय का कोई अंश वो आत्मा का अनुभव नहीं करता है। पर जितने प्रतिभास हैं वो सब के सब ज्ञान होने के कारण वो सारे प्रतिभास डूब जाते हैं उसमें, शुद्धात्मा में। और आत्मा का अनुभव भी करते हैं। इसलिए उन प्रतिभासों को गौण कर देता है केवलज्ञान में कि इनसे मुझे क्या मतलब है? ये तो सचमुच देखा जाये तो पराये हैं, मुझे इनसे क्या मतलब है? इस तरह आगे बढ़ जाता है।

प्रतिभास को बताया न इसमें। गाथा आयी है, बहुत सुंदर आयी है। महा सामान्य! आत्मा जो है वो एक प्रतिभासरुप महासामान्य है। महासामान्य का अर्थ ये कि वो सब उसमें आ जाते हैं, उस पर्याय में सारे के सारे। और अलग-अलग होने पर भी वो सबके सब ज्ञान की ओर से देखा जाये तो एक ज्ञान है, ज्ञान की एक पर्याय है। ज्ञायकाकार और ज्ञेयाकार, वो सब एक ही पर्याय है। और वो एक ही पूरी पर्याय आत्मा का अनुभव करती है, उसका कोई अंश नहीं। इसलिए वो जो प्रतिभास हैं वो तो ज्ञेय के हैं, वो तो अलग पड़े रहे। और ज्ञान की एक पर्याय, ज्ञान के एक अंश ने, पर्याय के एक अंश ने आत्मा का अनुभव किया - ऐसा नहीं है। वो सारे ही प्रतिभास भी अनुभव करते हैं उसका, आत्मा का क्योंकि वो ज्ञान हैं।

मुमुक्षुः- ये सही बात है कि वो सारे प्रतिभास उसका अनुभव करते हैं क्योंकि पर्याय में ऐसा..

पूज्य बाबूजीः- एक है वो अखंड पर्याय। वो अखंड पर्याय आत्मा में डूबती है। यहाँ श्रुतज्ञान की भी सारी पर्याय आत्मा में डूबती है न! तो यहाँ अन्य का प्रतिभास नहीं होता और केवलज्ञान में अन्य का प्रतिभास होता तो वहाँ दो टुकड़े नहीं हो जाते ज्ञान के, केवलज्ञान के? कि एक आत्मा का अनुभव करनेवाला और एक जगत को देखने वाला, ऐसे दो टुकड़े नहीं होते? (इसलिए) वो सब ज्ञान है।

मुमुक्षुः- और इसीलिए एक अखंड प्रत्यक्ष प्रतिभासमय मैं हूँ।

पूज्य बाबूजीः- ऐसा, अखंड प्रत्यक्ष प्रतिभासमय।

मुमुक्षुः- पर्याय आत्मा का अनुभव करती है, इतना तो कहने के बाद प्रतिभासात्मक।

पूज्य बाबूजीः- पर्याय की अखंडता बताई। वहाँ प्रतिभास में द्रव्य की अखंडता है वो जो है। अखंड प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, वो द्रव्य की अखंडता है। क्योंकि द्रव्य भी प्रतिभासात्मक है। कहाँ से निकल रहे हैं प्रतिभास? वो द्रव्य ही तो है सारा का सारा! उनका दल है, उनका कोष।

वो अखंड प्रतिभासस्वरूप है द्रव्य और ये प्रतिभास पर्याय हैं। पर पर्याय होने पर भी एक, एक ज्ञान है बस! इस तरह संपूर्ण एक केवलज्ञान की पर्याय, वो संपूर्ण डूबकर प्रतिभासों सहित.. प्रतिभास मिट नहीं जाते क्योंकि वो प्रतिभास तो चलते ही रहते हैं। क्योंकि केवली को तो अनंतकाल तक अनुभव करना है। इसलिये एक समय में जो प्रतिभास है वो दूसरे समय में दूसरा हो गया। क्योंकि वो जो है, वो एक जो था पहले समय का था; वर्तमान (जो है) वो भूत हो गया, अब दूसरे समय का भविष्य है वो वर्तमान बन जाता है। तो इस तरह से हर समय प्रतिभास, संपूर्ण

विश्व के और वो संपूर्ण विश्व के प्रतिभास एक ज्ञान, स्व और पर का एक ज्ञान और वो सारा मिलकर आत्मा का अनुभव करता है।

लगता ऐसा है जैसे वो प्रतिभास तो न्यारे ही रहते होंगे, अलग-अलग, क्योंकि अलग-अलग पदार्थों के हैं। तो अलग-अलग पदार्थों के तो हैं लेकिन उससे वजनीय बात ये है कि उसमें है क्या? घड़े का जो आकार है, उसमें घड़ा थोड़ी (ना) है ज्ञान में। जितने भी आकार हों ज्ञान को तो कोई सकड़ाई (संकीर्णता) है ही नहीं। इसलिए जितने भी अनंत लोकालोक हों, तो भी उस ज्ञान में कोई संकोच नहीं है थोड़ा भी। वो इनकार करनेवाला है ही नहीं (क्यों) कि मेरा बिगड़ता ही नहीं है कुछ। क्योंकि ये तो आते ही नहीं हैं। ये कहाँ मेरे ज्ञान में आते हैं कि मेरा कुछ बिगाड़ हो? ये ज्ञान में आवें, तो एक अणु भी आ जाये तो आत्मा की हत्या हो जाये। नष्ट हो जाये, अचेतन बन जाये। एक अणु भी नहीं आता है मेरे पास। और सारे के सारे जो हैं वो मेरे को जैसे समर्पण दे रहे हों, पूजा कर रहे हों मेरी। इस तरह से सारे ज्ञेय वो मेरी एक ज्ञान पर्याय को अपना आत्म-समर्पण कर देते हैं। और ज्ञान की पर्याय को करते हैं तो वो सब ज्ञान बन जाता है। क्योंकि वो ज्ञान ही है सारा और ज्ञेय बिल्कुल आता नहीं है, वो अपने स्थान पर रहता है। वरना दो ज्ञेय हो गये। या तो वो ज्ञेय इधर आ गया या फिर उस ज्ञेय का अगर कोई प्रतिबिंब पड़ता है, तो ज्ञेय का प्रतिबिंब भी ज्ञेय ही है इसलिए वो इस रुप में आ गया। तो वो नहीं होता है। वो तो बिल्कुल न्यारा निरपेक्ष है न! इसलिए केवलज्ञान ज्ञान की एक-एक पर्याय सारे ज्ञेयों से निरपेक्ष अपने आकार स्वत: बनाती हुई और उनको प्रति समय बिगाड़ती हुई और नये आकारों को धारण करती है। इस तरह अनंतकाल तक चला करती है।

अपन प्रश्न करें न ऐसा कि जैसे हिमालय है। अब हिमालय को आत्मा ने जाना - ऐसा एक सामान्य वचन अपन बोलते हैं। कैसे जाना? कोई भी आत्मा, किसी भी आत्मा की अवगाहना अधिक से अधिक सवा पाँचसौ धनुष होती है और कम से कम साढ़े तीन हाथ। तो ये अवगाहना होती है। अब वो इतना बड़ा सोलह सौ मील का हिमालय वो आत्मा में कैसे आया? कैसे जाना गया? ऐसा प्रश्न होना चाहिए कि नहीं? तो कैसे जानने में आया? क्योंकि वो तो आ ही नहीं सकता है इतना बड़ा हिमालय। तो ये कैसे जाना गया? कि कुछ नहीं है, सोलह सौ मील है, बस हो गया। और जितना कुछ उसका कठोर पाषाण और जो भी चीज है, वो उन सब सहित सोलह सौ माईल है। बस! हो गया। जान तो लिया और क्या?

अब ये आत्मा की संपूर्ण पर्याय है श्रुतज्ञान की एक। ऐसे ही केवलज्ञान!

मुमुक्षु:- नहीं तो बेचारे ज्ञान को सोलह सौ मील का लंबा सफर हो जाएगा।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान में कितना सफर! आता ही नहीं है न वो। कहाँ है आत्मा इतना बड़ा? कि वो तो जितना बड़ा आत्मा उतना सा आकर के रह जाता (और) बाकी तो टुकड़े हो जाते।

मुमुक्षु:- और ज्ञात भी नहीं होते?

पूज्य बाबूजी:- ज्ञात भी नहीं होते।

मुमुक्षु:- ये ही बात से बाबूजी सामर्थ्य कितना बढ़ता है ज्ञायक का। एक समय की इतनी ताकत है तो देखो तो सही!

पूज्य बाबूजी:- ज्ञायक का सामर्थ्य इतना है, तो सामर्थ्य उसका बढ़ना चाहिए हमारे चिंतन में, हमारी अनुभूति में। अनुभूति में सारा सामर्थ्य ज्ञात हो जाता है।

अनुभूति किसे कहते हैं? अनुभूति - जो (कि) संपूर्ण आत्मा को अपनी गोदी में समेट लेती है, उसका नाम अनुभूति (है)। अब उसमें जो कुछ भी है आत्मा में, वो सब कुछ आ गया। सब कुछ आ गया। सारे गुणों का स्वाद आ गया। तो अनुभूति का स्वाद माने कोई अजब-गजब चीज है। इसलिये ज्ञानी बार-बार उधर.. जैसे हमारा मन चलता है कि fridge में कोई चीज रखी हो और वो खा ली एक बार। अब दिनभर मन चलता है। इस तरह ज्ञानी का मन अनुभूति में चलता है, निरंतर। क्योंकि उसका स्वाद ही विलक्षण था। सारे ज्ञायक को जिसने गोदी में उतार लिया अब (और) क्या चाहिए? उससे अधिक और सामर्थ्य क्या होगी? और पर्याय की सामर्थ्य है ये।

मुमुक्षु:- वो सामर्थ्य आप के पास रहने से ज्यादा बढ़ रहा है और फिर भूल जाते हैं।

पूज्य बाबूजी:- मेरे पास तो आप जैसी ही है। लेकिन concept clear होना चाहिये। concept clear होना चाहिए। लगता ऐसा है न, कि जैसे न्यारे-न्यारे, न्यारे-न्यारे हैं सारे के सारे। जैसे दिवार पर हमने चित्र बना दिये हों, छोटे-बड़े सब तरह के, इस तरह। इस तरह न्यारे-न्यारे (हैं)। हैं तो ऐसे ही। केवलज्ञान की दिवार में लगते तो वो सब वैसे ही हैं, लेकिन ये सपाट एक दीवार है ये। तो वो चित्र भी दिवार ही हैं। वो कोई आदमी नहीं है।

इनको अलेखाकार है शास्त्र में कि सारे अलेखाकार जैसे भूत के, भविष्य के, वो बातें हम जानते हैं कि नहीं जानते? तो वो सारे अलेखाकार आत्मा में प्रतिबिंबित हो जाते हैं माने भासमान हो जाते हैं। प्रतिभासित हो जाते हैं - ज्ञानरुप। ज्ञानरुप और जाननरुप! ज्ञान के बने हुए वो जो प्रतिभास हैं अर्थात् आकार हैं वो जाननभावरूप रहते हैं। वो जानते हैं स्वयं, वो स्वयं जाननेवाले हैं वो। इसलिए वही जान रहें हैं (और) वो ही जानने में आ रहे हैं। अर्थात् वो आत्मा जानने में आ रहा है। शुद्धात्मा जानने में आ रहा है क्योंकि उस स्वरुप वो आत्मा ही है। उन सबके रुपवाला वो आत्मा ही है, इसलिए आत्मा ही जानने में आ रहा है अनुभूति में।

मुमुक्षु:- वो ही जानते हैं और वो ही जानने में आ रहा है।

पूज्य बाबूजी:- वो ही जानने में आते हैं वरना तो ज्ञेय दूसरा टटोलना पड़ेगा फिर।

मुमुक्षु:- हाँ! नहीं तो तो ज्ञेय दूसरा टटोलना पड़ेगा।

पूज्य बाबूजी:- वो हो नहीं सकता है।

मुमुक्षु:- माने ये कहना है कि यहाँ ज्ञेयों के आकारों से ज्ञेय परिणमित होता है और यहाँ जाननभावरुप ज्ञान अपने ही ज्ञान से ज्ञात होता हुआ चलता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अपने ही सामर्थ्य से वो ठीक वैसे का वैसा जानता हुआ परिणमित होता है। वैसा का वैसा जानना माने आकार। क्योंकि वैसा का वैसा आकार आ जाता है न! अपन किसी तीर्थ पर गए हों और उसको यहाँ याद करें अपन। सम्मेदशिखर गये हों, गिरनार गये हों और अपन याद करें उसे। तो वो तो यहाँ आया नहीं और अपने भीतर ठीक वैसे का वैसा आकार बनता हैं कि नहीं बनता?

मुमुक्षु:- Exact (हू-ब-हू) बनता है।

पूज्य बाबूजी:- Exact बनता है। तो वो तो आकार की बात हुई।

अब उसमें ये सब होता है (कि) इतना ठोस है, इतना कठोर है, इतना गरम है, इतना शीतल है इत्यादि। बर्फ़वाला है, बिना बर्फ़वाला है। ये सारी बात उसी तरह आ जाती है जैसे (कि) वो आकार आता है उसी तरह। इस तरह सब कुछ आ जाता है, उसका नाम आकार है।

मुमुक्षु:- उसकी कठोरता भी महसूस हो जाती है, चट्टानों की।

पूज्य बाबूजी:- सबकुछ! सबकुछ साफ। वो तो श्रुतज्ञान की बात है।

मुमुक्षु:- बराबर! केवलज्ञान की तो क्या बात!

पूज्य बाबूजी:- वो तो अद्‌भुत है।

मुमुक्षु:- [25]बाबूजी! आज एक प्रयोग की बात करें कि आज मैंने बोला कि ये बाबूजी हैं, ये बाबूजी हैं। तो बाबूजी आगम और अध्यात्म पद्धति से इसमें कौनसी गलती हुई? ये बाबूजी जैसे मैंने आज बोला (कि) ये बाबूजी हैं। तो वास्तविक में बाबूजी तो नहीं हैं जो मैंने बोला है, वो तो मेरा ज्ञान है न!

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तो वो करे अब, विभाग करे। ऐसा कहने के बाद वो विभाग करे कि ये हैं ये माने कोई भी है - ऐसा जो ज्ञान में आया, परिणमन, तो वो ज्ञान का (ही) परिणमन है। वो ज्ञान का परिणमन है। ज्ञान के भीतर उस व्यक्ति का परिणमन नहीं है। व्यक्ति का परिणमन तो बाहर है व्यक्ति से, लेकिन वो ज्ञान है आत्मा में। इसलिए वो ज्ञान है माने ये वो ही प्रक्रिया है। ज्ञान है माने आत्मा ही है। ऐसा बोला, ऐसा जो शब्द बोला उसमें उसका विषय तो वो व्यक्ति है। विषय है, लेकिन विषय का प्रवेश ज्ञान में नहीं है। ज्ञायक प्रसिद्ध नहीं होता है, ज्ञेय प्रकाशता नहीं होती है माने उसका प्रवेश उसमें होता नहीं (है)। इसलिए ये analysis (विश्लेषण) करे। इतना बोलकर रह जाते हैं सब, तब तो अज्ञान ही रहता है। तब तो मिथ्यादर्शन ही रहता है। उसी का नाम कहा अध्यवसान कि उसको ठीक ऐसा ही लगता है कि मेरे भीतर वो व्यक्ति दिखाई दे रहा है। वो व्यक्ति भीतर ही आ गया है इसमें।

मुमुक्षु:- तो मान्यता में वैसा रहना चाहिए कि ये ज्ञान (है)।

25 प्रयोग की बात। - 44.11 Mins

पूज्य बाबूजी:- मान्यता में ऐसा है, मान्यता में ऐसा। ज्ञेय तो हमेशा बाहर ही रहता है लेकिन ये मान्यता में ये मानता है कि ये मेरे भीतर आ जाता है। इसलिए सारे दुख, दुखों की जड़ यहाँ से है। यहाँ से शुरू हो गया सारा। संपूर्ण दुख यहाँ से शुरू होता है रागादिक का भी। रागादिक.. वो दूसरे पदार्थ तो दूर हैं। जैसे शरीर है वो तो राग से दूर है लेकिन राग-द्वेष-मोह तक भी, वो तो इधर चलते हैं अपने रास्ते पर। उनका भी अपना मार्ग है। इधर ज्ञान-क्रिया का अपना मार्ग है जाननेवाली (पर्याय) का। और वो जो चलते हैं निकट-निकट, चैत्य-चेतक संबंध की निकटता से, ऐसा आया न! तो चैत्य-चेतक, चैत्य माने तो वो राग-द्वेष-मोह और चेतक माने ये आत्मा अर्थात् ज्ञान की पर्याय। तो ये ज्ञान की पर्याय में उनका स्वरूप दिखाई देता है - ये राग है। ये उस स्वरूप को जानता हुआ ये ज्ञान प्रवाहित हो रहा है। यह राग है - ऐसा जाना। यह राग है माने तो ये राग मेरे भीतर आया - ऐसा नहीं जानता है। यह ज्ञान की ओर जाने वाला, अनुभूति की ओर बढ़नेवाला (है) वो ऐसा नहीं जानता (है)। पर यह राग है ये जो है ये ज्ञान है, ज्ञान की पर्याय है। ये सारी की सारी ज्ञान की पर्याय है क्योंकि वो तो जानन-क्रिया कर रही है न! तो जानन-क्रिया में तो यह राग है। (तो) वो राग के स्वरूप को जान रही है, राग को नहीं जान रही है। अपने भीतर राग को नहीं जान रही है। राग अपनी जगह पर (है)।

मुमुक्षु:- बाबूजी! राग को जानना और राग के स्वरूप को जानना उसमें कौनसा अंतर है?

पूज्य बाबूजी:- राग के स्वरूप को जान रही है न! राग का स्वरूप तो राग के पास रहा। लेकिन फिर भी यह राग है - ऐसा ज्ञानमय होकर उसके स्वरूप को जानता है। ज्ञानमय होकर! तो वो जो वचन है वो सारा का सारा ज्ञान का बना हुआ है। चाहे किसी भी ज्ञेय के संबंध में हम कहें.... तीन लोक तीन काल के संबंध में हम कहें कि केवलज्ञान तीन लोक तीन काल को जानता है, ऐसा हम बोलेंगे अपनी तरफ़ से। केवलज्ञान तो नहीं बोलता है। तो केवलज्ञान तीन लोक तीन काल को जानता है अब ये जो वचन हमने बोला, तो उसमें समझ ये होना चाहिए कि ये तीन लोक तीन काल को जानता है - ऐसा उस स्वरूप को जानता हुआ ये ज्ञान है मेरा। ये मेरा ज्ञान है। उसके स्वरूप को जानना भी ये ज्ञान है। माने उसका स्वरूप भी यहाँ आकर भी ज्ञान बन गया। उसका स्वरूप नहीं आया है यहाँ पर, उसका स्वरूप भी ज्ञान बन गया है। इस तरह संपूर्णरुप से ज्ञान ही है। माने मैं संपूर्णरूप से ज्ञान ही हूँ अर्थात् ज्ञायक ही हूँ - ये अनुभूति का मार्ग है।

मुमुक्षु:- जो कुछ झलकता ज्ञान में, वह ज्ञेय नहीं बस ज्ञान है।
नहीं ज्ञेयकृत किंचित् मलिनता सहज स्वच्छ सुज्ञान है॥

पूज्य बाबूजी:- बिल्कुल सही है वो तो प्रेक्टिकल है न! मान्यता में भीतर जो भ्रम है न, वो तो बहुत ही दुखद होता है। किसी को जैसे कह दिया जाये न कि ये (व्यक्ति) तुम्हारे साथ बहुत शत्रुता रखता है और बहुत भयंकर है ये व्यक्ति। और है (तो) वो बहुत अच्छा, सच्चरित्र है लेकिन हमको तो डर बैठ गया। तो अब जब भी वो व्यक्ति दिखाई देगा हम भीतर से कंपेंगे। B.P. भी बढ़

जायेगा जब भी हम उसको देखेंगे। अब है कुछ नहीं! और किसी ने कह दिया कि चिंता मत करो, कुछ भी नहीं है। वो तो बहुत भला आदमी है। उस ही समय से खतम, समाप्त हो गया।

मुमुक्षुः- भ्रमणा कहाँ गई? गुरु ने बोल दिया कि ज्ञान है बस।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वो ज्ञान है और कुछ नहीं है। तू चिंता मत कर! तेरे भीतर कुछ आने वाला है ही नहीं। ये तेरी जो सीमायें हैं वो तो इतनी मंत्रित हैं, मंत्रित.... मंत्र से मंत्रित हैं सारी की सारी कि इनके भीतर कोई प्रवेश करेगा तो जल जायेगा, इस ज्ञान की रेखा के भीतर। उसकी सत्ता ही समाप्त हो जायेगी।

मुमुक्षुः- तो बोलो ऐसा लेकिन मानने में तो भीतर में तो ज्ञान ही है, ऐसा मानकर चले।

पूज्य बाबूजीः- वो बोला जो ज्ञान ही है वो। वो जो बोला गया (है) न, उसका जो विषय है object है उसका, वो है ज्ञान। बोला गया ये तो अपन समझने के लिए प्रयोग करते हैं। लेकिन जो बोला गया है वो सारा का सारा दूसरे पदार्थ के संबंध में बोला जाने पर भी, वो सचमुच ज्ञान ही है और ज्ञान के संबंध में ही बोला जा रहा है - इतना होना चाहिए। इतना होना चाहिए!

मुमुक्षुः- जो कुछ दूसरे के संबंध में बोला जाता है, वो ज्ञान ही है और अपने संबंध में ज्ञान है।

पूज्य बाबूजीः- वो ज्ञान के संबंध में वो ज्ञान की ही घोषणा कर रहा है।

मुमुक्षुः- जो कुछ दूसरे के संबंध में बोला जाता है वो ज्ञान ही है और वो ज्ञान ज्ञान माने अपने..

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान के संबंध में ही बोल रहा है। ज्ञान है, ये तो मैं तो ज्ञान हूँ। दूसरा जो चरण होगा वो ये होगा न कि ये जो वो बोला न उसके संबंध में, तो ये वो नहीं है बिल्कुल। लेकिन ये तो ज्ञान माने मैं हूँ।

मुमुक्षुः- वाह रे वाह! मैं हूँ और मेरे संबंध में भी मैं ही हूँ।

पूज्य बाबूजीः- मैं हूँ!

मुमुक्षुः- वो विषय ज्ञान को ही मानता है जो स्वानुभूति तरफ बढ़ता है वो उसको ज्ञान को ही विषय मानता है...

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान विषय है ही। है ही ज्ञान विषय क्योंकि वही है कर्म। कर्म वही है, ज्ञेय वही है और जाननेवाला भी वही है। दोनों वही हैं। इस प्रकार ज्ञाता-ज्ञेय दोनों एक हैं - ऐसा जानता हुआ मैं तो मात्र ज्ञान हूँ, तो ज्ञायक की ओर बढ़ जाता है। ज्ञायक हूँ। बोलने में निर्णय करने के बाद जो ये धारा चलती है ये भी ज्ञानधारा (है) एक तरह से क्योंकि कर्मधारा से पृथक हो गई है। यद्यपि अभी अनुभूति नहीं हुई (है), पर अनुभूति नहीं होने पर भी ये तो निश्चित है कि वो अनुभूति में परिणत होगी। इसलिए इसको अज्ञान कहने में आचार्य भी जरा संकोच करते हैं। और अज्ञान और मिथ्यादर्शन है अभी, लेकिन वो (उनको) संकोच है।

अपना बच्चा हो न जैसे, पहले बहुत कुसंग में बुरे संग में रहता था। अब उसको समझाया। तो समझाया तो वो अब उसने कह दिया कि अच्छा पापा! अब मैं बाहर नहीं जाऊँगा। घर पर ही रहूँगा। लेकिन हमने उसको घर पर रहने के लिए नहीं कहा था (क्यों) कि वो तो वयस्क है, पढ़ा-लिखा है, पढ़ चुका है। हमने तो उसको ऑफिस में बैठने के लिए बोला है। ऑफिस में बिठाना है उसको लेकिन घर पर बैठने लग गया तो हम कहते हैं कि अब ये बहुत अच्छा हो गया। इस तरह ज्ञान की पर्याय जो ज्ञान के संबंध में बोलने लगी कि यह तो ज्ञान ही है, वो मैं ही हूँ... तो वो ऑफिस में बैठने जैसा हो गया अंत में। ऑफिस में माने ज्ञायक में बैठ गया।

मुमुक्षुः- पर ज्ञान अपने ही संबंध में बोलने लगा तो बहुत अच्छा हो गया!

पूज्य बाबूजी:- अपने संबंध में बोलता है वो।

मुमुक्षुः- तो वो बहुत अच्छा हो गया। अद्‌भुत बाबूजी! प्रयोग पद्धति अद्‌भुत बताई आपने। आहाहा! पूरी निर्भयता आ जाती है!

पूज्य बाबूजी:- पूरी निर्भयता आती है न! पूरी निर्भयता (माने) एक सामान्य आदमी हमारे लिए कुछ कह जाये तो ही निर्भयता आ जाती है कि तुम जो है वो बिल्कुल सौ बरस के होकर के तुम्हारा .... होगा। और तुम्हें कोई खटका नहीं होगा कभी भी। अगर हो तो मुझे याद कर लेना। तो वो तो निर्भय हो जाता है। तो यहाँ कुंदकुंद ऋषि कह रहे हैं, कोई खटका नहीं है। कभी कोई घटना घटी ही (नहीं) तेरे भीतर, अब तू क्या ये बहकीं-बहकीं बातें करता है? घटी ही नहीं है माने आज तक कोई घटना तेरे भीतर घटी नहीं है। तू क्या बातें कर रहा है ये? कौनसी बातें करता है? पागलखाने में क्या जाना है? पागलखाने में ही रहा है हमेशा।

मुमुक्षुः- तेरे भीतर कोई घटना घटी ही नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- घटी ही नहीं है, कुछ भी नहीं हुआ है। हाँ! अनहोना है तू, अनहोना है। जो होना है वो तो पर्याय है। और पर्याय जो है वो पागलपन कर बैठती है। तो तुझे (तो) तू सारा का सारा ऐसा ही दिखाई देता है जैसे (कि) मैं ही पागल हूँ।

मुमुक्षुः- तुझे तू सारा का सारा ऐसा ही दिखाई देता है जैसे मैं पागल हूँ।

पूज्य बाबूजी:- मैं पागल हूँ।

मुमुक्षुः- पागलपन तो पर्याय में है।

पूज्य बाबूजी:- वो तो उसमें है।

मुमुक्षुः- तुझे तू सारा का सारा ऐसा ही दिखाई देता है कि जैसे मैं पागल हूँ और पागलपन तो पर्याय में है।

पूज्य बाबूजी:- भाई! पागल कहाँ दो भाग करता है ऐसा? (वो तो कहता है) कि मैं तो पागल हो गया। असल में इसके दो हिस्से हैं कि एक तो पूरा समझ वाला। लेकिन समझ थोड़े समय के लिए बिखरी है, आदमी थोड़ी (ना) बिगड़ गया है।

मुमुक्षुः- आहाहा! बाबूजी! द्रव्य में कुछ नहीं हुआ है।

पूज्य बाबूजीः- जब वो पागलपन थोड़ा कम होगा तो उसमें विचार शक्ति पैदा होगी। और विचार शक्ति पैदा होगी तब वो समझने लगेगा (कि) - अरे! मैं तो इतना चतुर, इतना योग्य, इतना पढ़ा-लिखा। ये (ऐसा) क्यों हो रहा है? ये कौन, मेरे संबंध में क्या कहते हैं ये लोग? वो तुरंत चेत जाता है (और) फिर उसका पागलपन मिट जाता है।

मुमुक्षुः- ज्ञान का आविर्भाव!

पूज्य बाबूजीः- हमारे यहाँ कोटा में एक बार वो बुलाये (गए) थे..उज्जैन से नागरजी एक, वो योग साधन चिकित्सा करते हैं, योग से। उनके साथ एक पागल था क्योंकि वो (तो) पागलों की चिकित्सा (ही) ज्यादा करते थे। क्योंकि वो सारा का सारा मानसिक है। और वो (व्यक्ति) बहुत पढ़ा-लिखा था। तो महावीर जयंती का समय था। तो महावीर जयंती का जब सबने कहा कि - साहब! कल आपका भाषण है। नागरजी जी जो डॉक्टर थे उनसे कहा। तो उन्हीं के पास वो बैठा था। तो उन्होंने कहा कि कल आपका भी भाषण है। तो वो कहता है कि मेरा भाषण? (मगर) मैं तो पागल हूँ, मेरा भाषण कैसे? कि (अरे!) तुम्हें पागल कौन बोलता है? तो वो बोला दूसरे दिन (भाषण दिया)। तुम्हें कौन बोलता है पागल? कि (बस!) इतना ही तो बदलना है।

मुमुक्षुः- ओहोहो! अद्भुत! अद्भुत! अद्भुत! आहाहा! सही बात है।

चलता है, ज्ञान ही चलता है (मगर) मानता नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान जबरदस्ती पागल हो रहा है।

मुमुक्षुः- ज्ञान राग के संबंध में बोले तो पागल और ज्ञान के संबंध में बोले तो शाना (चालाक)।

पूज्य बाबूजीः- बिल्कुल शाना (और) चतुर एकदम।

आयेगा कैसे माने? परपदार्थ आयेगा कैसे? क्योंकि राग तो परद्रव्य है, पुद्गल है। उसको तो पुद्गल कहा है एकदम। पुद्गल इसलिए कहा (क्यों)कि उसमें आत्मा का कोई गुण-धर्म नहीं है। कुछ भी नहीं है। भाई! जैसे शरीर है ये, मनुष्य शरीर; तो इसमें प्रोटीन, विटामिन, ये सारे तत्त्व होने चाहिए न? लेकिन अब वो मल-मूत्र में प्रोटीन-विटामिन ढूँढने लगे तो कहाँ से मिलेगा? भाई! ये राग तो मल-मूत्र जैसे हैं, पुण्य और पाप तो। तो इनमें कहाँ से ये प्रोटीन-विटामिन मिलेंगे आत्मा के?

मुमुक्षुः- सही बात है! राग तो विष्टारूप है।

पूज्य बाबूजीः- कोई गुण-धर्म नहीं है उनमें। इसलिए आत्मा से surplus (आधिक्य) हैं वो, क्योंकि उनका पूरा नाश हो जाने पर आत्मा उतना का उतना रहता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! वैसा का वैसा, उतना का उतना रहता है।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए आत्मा के साथ अगर कोई जोड़ दिया जाए तो वो आत्मा कैसे बन गया? ये कपड़े शरीर के कैसे हो गए?

मुमुक्षु:- तीन काल में नहीं हो सकते।

पूज्य बाबूजी:- और जो पागल है व्यक्ति, वो ये मानता है कि ये मेरे सूट-बूट ये यदि अच्छे नहीं होंं, तो मैं ठीक नहीं दिखूँगा मैं। मैं सही नहीं दिखूँगा। वो अपने को कपड़े सहित मानता है, इतना लौकिक पागलपन!

मुमुक्षु:- ओ! लौकिक पागलपन!

पूज्य बाबूजी:- अरे! ये शरीर के कपड़े हैं ही नहीं। लाया ही नहीं था वो और लेकर भी नहीं जाएगा।

मुमुक्षु:- सही बात है!

पूज्य बाबूजी:- लेकिन वो तो ये मानता है जैसे साड़ी हो तो ऐसी हो। क्यों हो? क्यों हो ऐसी? तेरा तो साड़ी से कोई संबंध ही नहीं है। और सूट-बूट का संबंध नहीं है शरीर से। लेकिन वो मानता ही अपनी personality (व्यक्तित्व) है उसको कि मेरी personality ऐसी। अरे! तेरी personality कपड़ों को उतारने पर है।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! बहुत सुंदर! तेरी personality तो..

पूज्य बाबूजी:- तेरी असली personality ये है।

मुमुक्षु:- भाई! सही बात है! राज-राजेश्वर सब उतार देते हैं मुकुट से लेकर!

पूज्य बाबूजी:- सब उतर जाते हैं मुकुट और वो सब। सब उपाधियाँ थीं न!

मुमुक्षु:- ज्ञान राग के संबंध में अगर पागल कहा जाता है, तो राग के स्वामित्व में क्या हो सकता है?

पूज्य बाबूजी:- वो संबंध माने वो स्वामित्व।

मुमुक्षु:- वो संबंध माने ही स्वामित्व।

पूज्य बाबूजी:- वो ही स्वामित्व।

मुमुक्षु:- [26]बाबूजी एक प्रश्न होता है कि - राग को जैसे पुद्गल कहा, तो पुद्गल का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तो इसमें आता नहीं है। तो किस अपेक्षा से पुद्गल कहा?

पूज्य बाबूजी:- अपेक्षा आ गई न! भाई! हमारी जाति का नहीं है। वो शूद्र है, हमारी जाति का नहीं है। तो आत्मा का कुछ भी तो उसमें नहीं मिलता है न! आत्मा चैतन्य है तो चैतन्य का कुछ तो कोई गुण धर्म उसमें मिलना चाहिए न! कुछ चीज तो मिलना चाहिए। एक अणुमात्र तो मिलना चाहिए न! वो अणुमात्र भी उसमें राग-द्वेष पुण्य-पाप क्रोध-मान-माया-लोभ, इनमें योग की क्रिया

26 राग को जैसे पुद्गल कहा, तो पुद्गल का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तो इसमें आता नहीं है तो किस अपेक्षा से पुद्गल कहा? - 1.1.52 Hours

और विकारी क्रिया, उसमें मिलता ही नहीं है आत्मा। आत्मा की कोई चीज नहीं मिलती है। तो वो कौन हुआ? कि आत्मा तो नहीं है। तो फिर कौन है? कि अनात्मा है। अनात्मा है माने अचेतन है। तो अचेतन में कौन है? तो पुद्गल है क्योंकि पुद्गल के साथ रहता है (और) पुद्गल के साथ चला जाता है।

मुमुक्षु:- बराबर! अद्‌भुत अद्‌भुत! अचेतन है तो कौन है? पुद्गल है। आत्मा नहीं है तो कौन है? अनात्मा है। अनात्मा है तो अचेतन है। अद्‌भुत!

पूज्य बाबूजी:- ये झाँकता ही उस तरफ है। राग और द्वेष इत्यादि ये कभी आत्मा की अनुभूति कर ही नहीं पाते हैं न! क्योंकि वो आ ही नहीं सकते आत्मा के भीतर। और आत्मा की अनुभूति करनेवाला तो आत्मा के भीतर ही चाहिए न! तो वो ज्ञान है।

मुमुक्षु:- [27]चौदहवीं गाथा का शिष्य का प्रश्न है न! प्रभु आप कहते हो उस प्रकार के आत्मा की अनुभूति कैसे होती है। बोले वो आत्मा में नहीं हैं इसलिए हो पाती है।

पूज्य बाबूजी:- बस! इसलिए हो पाती है, क्योंकि उनका स्वरूप न्यारा है।

अनोखी है बातें तो वैसे। प्रसन्न करनेवाली बातें है! एक बार तो (जो) उदास हो जाए, वो भी प्रसन्न हो जाए। बहुत खो दिया हो जैसे, लौकिक द्रष्टि से बहुत खो दिया हो और एक बार इस चर्चा को याद कर ले, इस बात को याद कर ले। तो कहते हैं (कि) कुछ खोया नहीं (है)। था क्या मेरे पास जो खोया? एक बात में उत्तर हो जाता है कि था ही नहीं तो खोया कैसे?

मुमुक्षु:- बहुत खो दिया हो ऐसा लगता है पर ये बात याद आ गई (कि) कुछ था ही नहीं तो खोया कहाँ से?

पूज्य बाबूजी:- मेरा सर दर्द करता है। तो तेरे (को) ये तो बताओ कि सिर है क्या तेरे (को)? तो दर्द करेगा? जिनके सिर ही नहीं है तो दर्द कैसे करेगा?

मुमुक्षु:- बराबर! बराबर! ज्ञान स्वभाव (पुस्तक) में लिखा है कि - किसी को धन मिला है पर वास्तव में धन नहीं मिला है, धन के आकार रुप ज्ञान ही है वो।

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान ही है। चर्चा में तो और अच्छी गहरी होगी बातें! खुलासा बहुत!

प्रतिभासों के संबंध में भ्रम बहुत है। भ्रम बहुत है।

मुमुक्षु:- [28]भेदज्ञान की शुरुआत कैसे होती है?

पूज्य बाबूजी:- ये भेदज्ञान ही है न! हो गया बस! कल्याण ही है बस एक बार अगर ये भेदज्ञान हो जाये तो।

मुमुक्षु:- माने प्रतिभास से भेदज्ञान ..

27 समयसार चौदहवीं गाथा की चर्चा। - 1.03.36 Hours

28 भेदज्ञान की शुरुआत कैसे होती है? - 1.05.21 Hours

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि मुख्य तो ये ही है न! कि स्व-पर का विभाग है उसको जाननेवाला ज्ञान है। और ज्ञान भूला, तो स्व और पर दोनों को एक किया। तो बस अभेद हो गया। जो भेदरूप थे, जो बिल्कुल न्यारे थे, बिल्कुल अंतरवाले थे, तो उनको एक करके जाना। तो यहाँ से शुरू हो गया - अभेद मिथ्यात्व। मिथ्यात्व की अभेदता और मिथ्याज्ञान की अभेदता, यहाँ से शुरु हो गई। और वास्तविक अभेदता जो है वो जाती रही, समाप्त हो गई।

मुमुक्षु:- वास्तविक! आहाहा!

पूज्य बाबूजी:- तो जो वास्तविक अभेदता है.... क्योंकि ज्ञान ही अभेद होनेवाला है तो ये दूसरे के साथ लग गया। तो कौन अनुभव करेगा?

मुमुक्षु:- ये ज्ञान ही अभेद होनेवाला है (और) वो तो दूसरे के साथ लग गया।

पूज्य बाबूजी:- दूसरे के साथ लग गया है ये।

मुमुक्षु:- तो कौन अभेद होगा? माने भेदज्ञान की शुरुआत प्रतिभास को स्वीकार करके चलती है।

पूज्य बाबूजी:- वहाँ से शुरू होती है।

मुमुक्षु:- उसके पहले नहीं?

पूज्य बाबूजी:- प्रतिभास माने ज्ञान, ज्ञान माने मैं। बस! हो गया।

मुमुक्षु:- इतना ही है।

पूज्य बाबूजी:- प्रतिभास माने ज्ञेय जैसा आकार अर्थात् ज्ञानाकार। ज्ञानाकार माने ज्ञान और ज्ञान माने मैं।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! एकदम short and sweet (संक्षिप्त)! एकदम short! प्रतिभास माने ज्ञान (और) ज्ञान माने मैं।

पूज्य बाबूजी:- प्रतिभास माने ज्ञेय जैसा आकार और ज्ञेय जैसा आकार माने ज्ञान का आकार। ज्ञान का आकार माने ज्ञान और ज्ञान माने मैं, ज्ञायक।

मुमुक्षु:- [29]बाबूजी! द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध तो पर्याय में अशुद्ध परिणमन, ऐसा क्यों?

पूज्य बाबूजी:- वो सत् है वो। वो तीन स्वतंत्र निरपेक्ष सत् हैं एक ही पदार्थ में। एक ही पदार्थ में ये जो तीन हैं, वो निरपेक्ष सत् हैं। इसलिए द्रव्य, गुण और पर्याय में द्रव्य जो है वो गुण के आश्रित नहीं (है)। गुण जो है द्रव्य के आश्रित कहे जाते हैं पर वास्तव में आश्रित नहीं (है) क्योंकि गुणों का बना हुआ द्रव्य नहीं है। द्रव्य एक सत्ता है और उस सत्ता के आश्रित ये गुण रहते हैं। गुण रहते हैं लेकिन हैं निरपेक्ष ये भी क्योंकि ये अनेक हैं। अगर ये निरपेक्ष न हों तो सब मिलकर एक हो जायेंगे। तो वो हो नहीं सकता है। इसी तरह पर्याय..कि वो पर्याय में द्रव्य है, जो अनंत गुणात्मक

29 द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध तो पर्याय में अशुद्ध परिणमन, ऐसा क्यों? - 1.07.37 Hours

द्रव्य है वो शुद्ध है। और पर्याय जो है उसको शुद्ध स्वीकार करतीं नहीं है अनादिकाल बीता (फिर भी)। (कहती है) कि मेरे मर्जी, नहीं करती हूँ। उसमें क्या है? नहीं करती हूँ।

विवाह हुआ और विवाह हुआ और पत्नी आई। उसमें एक एब है कि वो कहना नहीं मानती है। और तो सब है योग्यता - बोलना, मीठास वग़ैरह, सब ढंग-ढाँग सब अच्छे हैं, लेकिन वो कहना नहीं मानती है। तो तुम्हारे वहाँ तो वचन ठहरे थे कि तू कहना मानेगी। (तो कहती है) कि वो गया टाइम, अब हो गया। नहीं मानती हूँ मैं, मेरी मर्जी। तुमको नहीं जचती हूँ तो छोड़ दो। मैं छोड़ देती हूँ।

मुमुक्षुः- इतना सत् है!

पूज्य बाबूजीः- इतना सत् है! पर्याय का इतना सत् है। निरपेक्ष है वो भी, पर्याय भी। लेकिन समझाने से समझ जाती है।

मुमुक्षुः- स्व-पर का विभाग, समझाने से समझ जाती है।

मुमुक्षुः- [30]गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं - ये परिभाषा निश्चय है या व्यवहार?

पूज्य बाबूजीः- व्यवहार परिभाषा है।

गुणों का समुदाय द्रव्य थोड़े ही है। द्रव्य तो एक सत्ता है, स्वयं existence (अस्ति) और उसके आश्रित अनंत गुण रहते हैं।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! द्रव्य तो एक सत्ता है। Self-assistance (स्वाश्रित)।

पूज्य बाबूजीः- उसके आश्रित अनंत गुण और अनंत पर्यायें रहती हैं। लेकिन व्यवहार के बिना समझ ही नहीं आती है न बात। इसलिए व्यवहार का उपयोग करना पड़ता है, लेकिन मानना नहीं पड़ता।

मुमुक्षुः- बराबर! बराबर! ये परिभाषा जैसा ही मानता है।

पूज्य बाबूजीः- नहीं! मानते हैं तो बदल दे और क्या है? द्रव्य एक स्वतंत्र सत्ता है, पूरी existential। चैतन्य सत्ता, चिन्मात्र और उसके आश्रित अनंत गुण रहते हैं। आश्रित ही कहा जाता है लेकिन वास्तव में आश्रित नहीं है। क्योंकि आश्रित हो जाएँ तो पूरी सापेक्षता हो जाये और या तो द्रव्य अनंत हो जायेगा या गुण जो हैं (वो) एक हो जायेंगे।

मुमुक्षुः- या तो द्रव्य अनंत हो जायेगा या तो गुण एक हो जायेंगे।

पूज्य बाबूजीः- सापेक्षता होगी।

मुमुक्षुः- माने गुणों के समूह को छोड़कर द्रव्य कुछ और भी है? गुणों के समूह को छोड़कर द्रव्य कुछ विशेष भी है?

30 गुण की व्यवहार परिभाषा। - 1.09.46 Hours

पूज्य बाबूजी:- हाँ! द्रव्य एक सत्ता है अलग, गुणों के समूह से। गुणों के समूह से ऐसा हुआ जैसे अनेक मिलकर एक बन गया हो। ये तो विश्व-व्यवस्था में ही जाएगा। अनेक मिलकर एक बनते हैं क्या? वो तो फिर झाड़ू जैसा हो गया कि अनेक मिलकर एक झाड़ू बन गया।

मुमुक्षु:- ऐसा नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- ऐसा थोड़े ही है।

मुमुक्षु:- (फिर) कैसा है?

पूज्य बाबूजी:- अनंत गुण उसके आश्रित हैं, वो एक सत्ता है। ये रहा न ये शरीर। और उसके आश्रित इतने ये अंग हैं कि नहीं? और हर अंग का कार्य जो है वो न्यारा-न्यारा है। एक-एक अँगुली का काम न्यारा-न्यारा। वो तब मालूम पड़ता है जब एक अँगुली कट जाये तब चारों अँगुली बेकार हो जाती हैं, तब मालूम पड़ता है। इसलिए सब निरपेक्ष (हैं) सारे के सारे, सारे अंग। इस तरह आत्मा के भी गुण और पर्यायों जो अंग हैं, वो सब निरपेक्ष हैं और एक दूसरे के अधीन नहीं (हैं)। द्रव्य वो गुण नहीं है, गुण हैं वो पर्याय नहीं हैं (और) पर्याय हैं वो गुण नहीं हैं और पर्याय हैं वो द्रव्य नहीं है। उनमें अतद्भाव है।

मुमुक्षु:- बराबर! उनमें अतद्भाव है।

पूज्य बाबूजी:- अतद्भाव है, भिन्नत्व नहीं (है)।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! अतद्भाव है। बराबर है!

पूज्य बाबूजी:- पृथकत्व नहीं है।

मुमुक्षु:- बराबर! भिन्नत्व नहीं है, पृथकत्व नहीं है (बल्कि) अतद्भाव है।

पूज्य बाबूजी:- अतद्भाव है अर्थात् तद्रूप नहीं है वो। द्रव्य है, वो गुणरूप नहीं है। गुण है वो पर्यायरूप नहीं है, तो ऐसा अतत् (है)।

मुमुक्षु:- बाबूजी! ये गुण हैं तो वो शुद्ध हैं। तो उनका परिणमन शुद्ध क्यों नहीं? गुण तो शुद्ध हैं। आपने जैसे बोला शरीर है (और) इसके अलग-अलग अंग का separate function (निश्चित कार्य) है। लेकिन है तो वो शुद्ध, तो उसका परिणमन ऐसा अशुद्ध क्यों? वो भी निरपेक्ष ही लेना सत्-अहेतुक लेना वहाँ?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! निरपेक्षता से सारी सिद्धि हो जाएगी। ये जो पर्याय है, वो गुण से निरपेक्ष पैदा होती है। जैसे अगर ये जो गुण है उसमें कोई अनंत पर्यायें इकट्ठी नहीं पड़ी हैं। वरना (तो) वो पर्यायों का समुदाय गुण कहलाएगा। लेकिन पर्यायें उसमें इकट्ठी नहीं पड़ी हैं माने पर्याय उसमें है ही नहीं, गुण में। और वैसे देखा जाए तो अनंत पर्यायों की शक्ति उसका नाम एक गुण है। तो अनंत पर्यायों की शक्ति, ये एक अलग चीज हुई और अनंत पर्यायें अलग चीज हुईं। तो एक-एक पर्याय जो आती है वो अपनी स्वतंत्रता से (और) अपने क्रम में, अपने समय पर आती है। तो इसमें

गुण का हाथ कहाँ रहा? गुण तो ध्रुव है, नित्य है और ये पर्याय है अनित्य। तो निरपेक्ष हुई कि नहीं हुई? (तो) विमुख हो गया (उन पर्ययों से)।

मुमुक्षुः- विमुख हो गया।

पूज्य बाबूजी:- विमुख हो गया। विमुख कहना चाहिए माने जोरदार शब्दों में, कोई दिक्कत नहीं। सम्यग्दर्शन से विमुख होकर सम्यग्दर्शन के सन्मुख ही होना है। तो उससे विमुख होकर वो जो उससे अनमेल है जो उसका विषय है, उस ज्ञायक की ओर लग गया। ज्ञायक की ओर लग गया तो सम्यग्दर्शन आ गया। वो उत्पन्न ही हो गया। विमुख होने पर ही वो उत्पन्न होता है, स्वयं उससे विमुख होने पर।

मुमुक्षुः- बिन बुलाए चले आते हैं?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय से विमुख होने पर पर्याय का मंगल होता है।

मुमुक्षुः- आहाहा! बराबर! पर्याय से विमुख होने पर पर्याय का ही मंगल होता है। बस! वही ज्ञान में स्व-पर का विभाग है ये बात आ जाती है every time (हर बार), यही बात।

पूज्य बाबूजी:- वो तो हर समय ही है। वहाँ से तो प्रारंभ ही है।

मुमुक्षुः- ज्ञान पूरा साफ हो तो कोई सवाल नहीं रहता। आहाहा!

पूज्य बाबूजी:- स्व-पर का विभाग और स्व-पर के स्वरूप का ज्ञान - ऐसा। तो पर के स्वरूप का ज्ञान तो इतना ही मात्र है कि ये मेरे से न्यारे हैं और अलग हैं, पराए हैं। ये हो गया बस। अब कौन-कौन में क्या-क्या हैं? - इसकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन अपने स्वरूप का ज्ञान वो स्पष्ट होना चाहिए। वो स्पष्ट होना चाहिए क्योंकि वहाँ पर मिलावट बहुत है। तो उस मिलावट में से किसी एक को छाँटना ये Laboratory (प्रयोगशाला) का काम है।

मुमुक्षुः- बराबर! बराबर! वैज्ञानिक पद्धति! और सही को छाँटना वही लैबोरेट्री (प्रयोगशाला) का काम है।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए वो छाँटता है तब उसको ज्ञायक हाथ आता है कि और सब काम के नहीं हैं। ये मुझे निभा नहीं सकते। जीवनभर निभाए ऐसा संबंध करना चाहिए। ऐसा संबंध लोक में होता नहीं है इसलिए दुखदाई बताया। ये लोकोत्तर संबंध है ये, जो जीवन-भर निभाता उस श्रद्धा को, ज्ञान को, चारित्र को।

मुमुक्षुः- बराबर! अनंतकाल तक।

पूज्य बाबूजी:- अनंतकाल तक।

मुमुक्षुः- बराबर! सही है।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १६, तारीख ९-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षुः-[31] बाबूजी कल के प्रश्न में जो उपयोग में उपयोग की बात थी, उसमें उपयोग में भगवान आत्मा है। अभी जब भी विभावभाव चलते हैं, उसी समय आत्मा उसमें व्यापक कैसे है?

पूज्य बाबूजी:- विभाव भाव चलते हैं उस समय तो ये मानता ही नहीं है और जानता ही नहीं कि - उपयोग में उपयोग है। ये तो उपयोग में क्रोध है - ये जानता है। उपयोग में उपयोग है - ये भी ज्ञानदशा की ही बात है। ये ज्ञानदशा उत्पन्न होने की विधि है। और वो तो इसको नहीं मानता हुआ अनादि से ही ये मान रहा है कि उपयोग में क्रोध है और क्रोध में उपयोग है। अर्थात् दोनों का मिश्रण करता है। सचमुच तो क्रोध जो है वो उपयोग में प्रतिभासमान होता है। प्रतिभासमान होता है माने क्रोध का स्वरूप उपयोग में जानने में आता है। क्रोध नहीं आता है उपयोग में। जब क्रोध उपयोग में नहीं आता तो क्रोध और उपयोग ये दो वस्तु हुईं। अब एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं होती। इसलिए ज्ञान और क्रोध... क्रोध माने संपूर्ण विभाव; वो दोनों न्यारे-न्यारे हैं, अलग-अलग भाव हैं।

दो भाव न्यारे-न्यारे (हैं) तो दोनों का सब कुछ न्यारा है। जैसे घर न्यारे-न्यारे तो दरवाजे भी न्यारे-न्यारे। तो उपयोग का दरवाजा अन्य है और क्रोध का दरवाजा उससे विपरीत, अन्य है। इसलिए एक घर में दूसरे घर का सदस्य नहीं आता। क्रोध अचेतन और जड़ है और जो ज्ञान है, उपयोग है वो ज्ञानस्वरूप है, जाननस्वरूप है, जाननभावरूप है। वो जानता है कि मैं ज्ञायक हूँ, चिन्मात्र हूँ - ये उसका जानना, वास्तविक।

तो ये विभाव भाव के समय की नहीं है ये बात। विभाव भाव माने अज्ञानदशा। और अज्ञानदशा टलकर जब ज्ञानदशा होती है तो उस समय भी विभाव भाव होते हैं - ऐसा कहा जाता है। मानता नहीं है वो कि मुझे विभाव भाव होते हैं - ऐसा मानता नहीं। जिसको अनुभूति हुई वो ये नहीं मानता है कि मुझे विभाव भाव होते हैं। कहता अवश्य है (तो) उसका नाम व्यवहारनय। लेकिन विभाव भाव होते हैं तो उस समय वो उपयोग से उन विभावों को अलग जानता है, भिन्न जानता है। इसलिए बात तो वही रही न कि उपयोग उपयोग में रहा और क्रोध क्रोध में रहा।

ज्ञानी की वो जो ज्ञानदशा होती है और विभाव भाव होते हैं, उस समय की चर्चा है ये। और इससे पहले जो अज्ञानदशा की चर्चा है उसमें तो वो इस बात को जानता ही नहीं (है) कि उपयोग

31 जब भी विभाव भाव चलते हैं उसी समय आत्मा उसमें व्यापक कैसे है? - 0.15 Mins

जो है (वो) उपयोग में है। आत्मा जो है वो ज्ञानक्रिया में है, जाननभाव में रहता है, जानन-क्रिया में रहता है - ये वो जानता ही नहीं है। क्योंकि ये जानता है कि क्रोध और उपयोग दोनों (एक हैं)। क्रोध मेरे जानने में आता है, इस प्रकार क्रोध के अस्तित्व (को) वो ज्ञान में मानकर और पागल हो जाता है, अज्ञानी बन जाता है। अज्ञानी बन जाता है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! उसी समय जानन-क्रिया तो है कि नहीं?

पूज्य बाबूजीः- जानन-क्रिया मिथ्या। मिथ्याज्ञान है वो, मिथ्याज्ञान है वो।

मुमुक्षुः- क्रोध जानने में आता है।

पूज्य बाबूजीः- क्रोध जानने में आता है ये व्यवहारनय का कथन है। निश्चयनय का कथन यह है कि क्रोध का जो स्वरूप है वो ज्ञान में ज्ञानरूप जानने में आता है, (वो भी) ज्ञान बनकर। वो क्रोध का स्वरूप ज्ञान बनकर ज्ञान में आया। क्रोध मेरे जानने में आता है ये जो वचन है, इसमें ज्ञान ही बोल रहा है संपूर्णरूप (से) और वो सारी परिणति ज्ञान ही है। क्रोध की प्रतिभासरूप सारी परिणति वो ज्ञान है।

दोनों दशाओं की अलग-अलग बात है। पहली दशा में तो ये स्वीकार ही नहीं किया इसलिए संवर अधिकार में इसका प्रारंभ किया। संवर अधिकार माने सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति वहीं से संवर का प्रारंभ होता है, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति से।

तो वो कैसे होता है? कि जब ये ज्ञान और क्रोध को बिल्कुल न्यारा-न्यारा जाने (कि) दोनों का आधार, दोनों के रहने का स्थान, दोनों के दरवाजे, दोनों के घर बिल्कुल न्यारे-न्यारे जाने तो इसका ज्ञान स्वच्छ हुआ, निर्मल हुआ। और तब ये क्रोध से हटकर, अनासक्त होकर, ममत्व (और) अहम् (को) तोड़कर और ज्ञान (में) अहम् कर लेता है; ज्ञान में माने आत्मा में। तब फिर विभाव मेरे हैं - ये बात कहने मात्र ही रह जाती है। क्योंकि मेरा तो चैतन्य है, क्रोध मेरा नहीं है, राग-द्वेष-मोह ये मेरे नहीं हैं। ज्ञान मेरा है, चैतन्य मेरा है ये स्वर होता उसका सदा ही, हमेशा ही।

मुमुक्षुः- तो विभाव दशा में ज्ञान इसी प्रकार परिणमित हुआ है।

पूज्य बाबूजीः- विभाव के समय भी ज्ञान तो परिणमित इसी प्रकार हुआ है लेकिन न्यारा-न्यारा जान लिया है (उसने) - ये है उसमें मुख्य बात। पहले भी परिणमित तो ऐसे ही होता था। पहले भी क्रोध ज्ञान में आता नहीं था और अज्ञानदशा में भी क्रोध ज्ञान में आता नहीं है। लेकिन पहले ये आता था ऐसा मानकर और अज्ञानी बनता था, तद्रूप होकर। क्रोध के साथ ये तद्रूप होकर परिणमन करता था, इसका नाम कर्ता-कर्म (हुआ)। मैं क्रोधी और क्रोध मेरा कर्म, तब वो यह नहीं कहता कि मैं ज्ञानस्वरूप चैतन्य और ज्ञान मेरा कार्य यह नहीं बोलता था। और मैं क्रोधी और क्रोध मेरा कर्म, मेरा कार्य - ये उसका वचन था। वचन था माने उसकी ये अनुभूति थी। ये अनुभूति मिथ्या थी, मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र (रूप) अध्यवसान था।

रागदशा होने पर भी आचार्य ने तो इतनी ऊँचाई से कहा है कि ज्ञानी को आस्रव होता ही नहीं है। राग-द्वेष-मोह वो ज्ञानी को हैं ही नहीं, होते ही नहीं हैं। तो वो किसको हैं? कि आत्मा को तो हैं नहीं और विषयों में भी राग-द्वेष नहीं हैं। विषयों में भी ये नहीं हैं। तो फिर किसके हैं? कि किसी के नहीं है अज्ञानी के हैं, अज्ञानी की कल्पना के हैं। शुद्धात्मा में भी राग-द्वेष-मोह नहीं है और विषयों में भी राग-द्वेष-मोह नहीं है। तो फिर राग-द्वेष-मोह हैं तो सही (न)! तो वो किसके हैं? कहते हैं कि वो अज्ञानी की कल्पना के हैं क्योंकि आत्मा में तो उनका रंचमात्र भी निवास नहीं है। वो तो शुद्धाति शुद्ध है, एकदम।

मुमुक्षुः-[32] (तो) बस वो जानन-क्रिया भी मिथ्या है, उसी समय जब वो स्वीकरता नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- जानन-क्रिया ही मिथ्या होती है और गुण और द्रव्य, वो मिथ्या नहीं होते। जानन-क्रिया ही होती है मिथ्या। इसलिए जानन-क्रिया मिथ्यात्व को समाप्त करके सम्यक्त्वरूप हो जाती है। क्योंकि परिणमन है न! जिसमें परिणमन होगा वही विभावरुप हो सकेगा। होगा, ऐसा नियम नहीं (है)। विभावरूप हो सकेगा क्योंकि चार अचेतन पदार्थों में विभाव नहीं है (और) विभाव क्रिया भी नहीं है। स्वभाव क्रिया ही है सबमें, चार अचेतन पदार्थों में। लेकिन जीव और पुद्गल में केवल इतनी गुंजाइश है कि वे विभावरूप हो जाते हैं। उनकी पर्याय विभावरूप हो जाती है। परिणमन तो दोनों में ही है। इसमें भी है और उनमें भी है। लेकिन ये जो विभाव है, ये केवल जीव और पुद्गल में होता है। तो पुद्गल तो जानता नहीं है कि विभाव क्या चीज है। इसलिए उसको तो सुख और दुख नहीं है। लेकिन आत्मा जानता हुआ इस विभावरूप परिणमन करता है, क्रोधादिरूप परिणमन करता है। क्रोधादि (रूप) है नहीं वो लेकिन क्रोधादि को आत्मा से तद्रूप मानता हुआ परिणमन करता है, इसका नाम कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति है। उसको कहते हैं कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति।

कर्ता-कर्म माने करनेवाला और कार्य - ऐसा नहीं। करनेवाला कार्य ये तो सामान्य है। एक इंद्रिय से लगाकर केवलज्ञान तक जो षट्कारक हैं, वो तो सबमें हैं। तो वहाँ तो जो परिणाम है उसका कर्ता द्रव्य ही कहा जाता है। तो वो हुआ कृत्रिम कर्म, धर्म की अपेक्षा (से), वो अलग बात। यहाँ जो कर्ता-कर्म अधिकार है इसमें तो यह अज्ञानी बनता हुआ, अज्ञानी होता हुआ क्रोधादि के साथ और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि के साथ तद्रूप परिणमन करता है, अपनी कल्पना में। परिणमन कर जाता है - ऐसा नहीं। माने वे पदार्थ चैतन्यरूप हो जाते हैं, ऐसा बिल्कुल नहीं (है)। लेकिन ये अपनी कल्पना में तद्रूपता करता है। इसलिए कल्पना को उड़ाता है तो तद्रूपता उड़ जाती है।

मुमुक्षुः- लेकिन है वो वास्तविक स्थिति।

32 जानन-क्रिया भी मिथ्या है। - 9.51 Mins

पूज्य बाबूजी:- हाँ! वास्तविक स्थिति यह है कि क्रोधादि और अन्य जो अचेतन पदार्थ हैं, पुद्गल धर्म आदि ये ज्ञान में आते नहीं हैं। आते ही नहीं हैं। सदा से ही न्यारे-न्यारे हैं। इसलिए इनको न्यारा-न्यारा देखकर ये न्यारे हैं और मेरे किसी प्रयोजन के नहीं हैं - ऐसा जानकर और आत्मस्थ होना चाहिए, फिर तो (बस) वही बचता है। पहले तीन लोक और तीन काल इसमें अचेतन पदार्थ सारे गये और अपने से भिन्न जीव पदार्थ भी सब गये। अब बचा तो कौन बचा? कि ये जो पर्याय है, ये तो स्वयं अज्ञानरूप परिणमन कर रही है। तो अज्ञान से जब ज्ञानदशा को प्राप्त होगा, तो वो ज्ञान किसका अवलंबन लेगा? कौन बचा? तो स्व का ही अवलंबन लेगा क्योंकि स्व का अवलंबन ही स्वाधीनता और परम और चरम मुक्ति है। मुक्ति में पराधीनता (को) लेश मात्र भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इसलिए वही मुक्ति है।

अच्छा है प्रश्न। प्रश्न ऐसे ही करने चाहिए।

मुमुक्षु:- वो क्या (है) बाबूजी! एक बार ज्ञान में पूरा स्पष्ट नहीं होगा कि ये ही मानते हैं कि मैं ऐसा हुआ ही नहीं हूँ, मैं तो वैसा ही हूँ। लेकिन वास्तविक में ऐसी परिणति हुई है जीव की। उसकी जो जानन-क्रिया है वो मिथ्या हुई है।

पूज्य बाबूजी:- जानन-क्रिया मिथ्या हुई है, निश्चित।

मुमुक्षु:- बस! निश्चित।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! निश्चित मिथ्या हुई है, श्रद्धा में मिथ्यादर्शन हुआ, ज्ञान में मिथ्यात्व हुआ (और) चारित्र में मिथ्यात्व हुआ। मिथ्यात्व हुआ माने मिथ्या हुए। इसलिए मिथ्यात्व केवल मिथ्यादर्शन को भी कहते हैं लेकिन तीनों (ही) मिथ्या हुए हैं। अपने परिणाम में, परिणति में, पर्याय में - श्रद्धा भी मिथ्या, ज्ञान भी मिथ्या और चारित्र भी मिथ्या। और एक दूसरे के कारण से नहीं (बल्कि) स्वयं अपने ही उपादान से मिथ्या हुए और अपने ही उपादान से सम्यक् होते हैं, एक दूसरे के कारण से नहीं। निमित्त-नैमित्तिक भाव भले ही बनता जाता हो! वो बनता जाता (है) अपने आप, वो कोई बनाया नहीं जाता। लेकिन ये निश्चितरूप में मिथ्या हुए हैं।

इसलिए जिस समय ये मानता है कि मैं क्रोधी हूँ और क्रोध मेरा कर्म है, तो उस समय आचार्य इसको कर्ता कहते हैं। क्रोधादि का कर्ता कहते हैं। तो उस समय तक, उस अज्ञानदशा तक तो उसे क्रोधादि भावकर्म का कर्ता ही मानो; जड़ का कर्ता तो वो कदापि है ही नहीं। लेकिन क्रोधादि भावकर्म क्योंकि उसके निकट पैदा होते हैं, उसकी पर्याय में ही पैदा होते हैं, इसलिए उनका कर्ता उसको मानो। जैसे सांख्य (मति) जो है वो अकर्ता मानते हैं। उसके ऊपर आचार्य ने कहा कि सांख्य तो अकर्ता मानता है आत्मा को। कहते हैं (कि) नहीं! ऐसा नहीं है। जब वो क्रोधादि के साथ तद्रूप होकर अपनी कल्पना में परिणमन करता है तो उसे कर्ता ही मानो, अज्ञानी को। और जिस समय वो क्रोधादि से भिन्न अपने शुद्धात्मा का अनुभव करता है, उस समय उसे सर्वथा

अकर्ता ही मानो। वहाँ से लेकर वो सदा के लिए, अनंतानंतकाल के लिए, सिद्ध दशा तक (वो) अकर्ता हुआ।

ये कर्ता-कर्म अधिकार की हैं बातें। वहाँ केवल परिणमन नहीं है। वहाँ परिणमन का अर्थ ही दूसरा है। वहाँ परिणमन का अर्थ है तद्रूप परिणमन अपनी कल्पना में, अपना मानने में। तद्रूप होकर परिणमन करता है अपना मानने में। करता नहीं है, तद्रूपता होती नहीं। लेकिन तद्रूप होकर अपनी कल्पना में, अपनी मान्यता में (वो) परिणमन करता है। तो वो अपने आप को कर्ता मानता है। इसलिए आचार्य भी उसको कर्ता कहते हैं कि तूने अपना नाम कर्ता रखा है, तो हम भी कर्ता नाम से बोलेंगे (तुझे)। तूने जो अपना नाम रखा है, उसी नाम से हम तुझे पुकारेंगे। तो तू कर्ता है; कर्ता है अर्थात् पापी है, महापापी है। अकर्ता है अर्थात् महाधर्मात्मा है।

वही पर्याय जो बदली है, क्रोध को भिन्न जानकर शुद्धात्मा में जो लीन हुई है, जिसे स्वसंवेदन हुआ है, तो वो अकर्ता परिणाम है वो स्वसंवेदन। इसलिए आचार्य उसको (कहते हैं कि) उस समय से लेकर अनंतकाल तक, वो अकर्ता ही रहेगा। आत्मा तो अकर्ता है ही लेकिन ये पर्याय (भी) अकर्ता है। पर्याय बोलती है (कि) मैं अकर्ता हूँ। मैं अकर्ता भाव की करनेवाली हूँ - ऐसा नहीं। मैं अकर्ता हूँ ऐसा तद्रूप आत्मा के साथ होती है (वो पर्याय)। पहले क्रोध के साथ तद्रूप होकर अपने को क्रोधरूप स्वीकार करती है। अब आत्मा के साथ, चैतन्य के साथ तद्रूप होकर अपने को चैतन्य स्वीकार करती है, अनादि-निरपेक्ष। इसलिए तद्रूपता का नाम यहाँ कर्ता-कर्म है। तद्रूप परिणमन को ही कर्ता-कर्म कहते हैं। **तद्रूप परिणमन अतएव कर्तृकर्म**।

मुमुक्षुः- इसलिए द्रव्य तो अनादि-अनंत अकर्ता रहा ही है। खाली तूने इसके परिणमन में माना नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- अकर्ता तो द्रव्य है ही, द्रव्य है अकर्ता। और पर्याय जो है वो कर्ता ही रही है। कर्ता रही है माने ऐसा मानती रही है कि मैं क्रोधादिक भाव का कर्ता हूँ क्योंकि ये मेरे भीतर पैदा होते हैं - ऐसी युक्ति। युक्ति जैसे वहाँ कोर्ट में झूठी युक्तियाँ भी तो होती हैं न! उसी तरह झूठी युक्ति (है कि) क्योंकि ये मेरे भीतर पैदा होते हैं इसलिए मैं इनका कर्ता हूँ। लेकिन अपने भीतर पैदा होने वाले सर्व भाव वो चैतन्य हों और चैतन्य के हों, ऐसा आवश्यक नहीं। अपनी ही पर्याय में उत्पन्न होनेवाले भाव, वो कोई चेतन हों या चेतन के हों - ऐसा आवश्यक नहीं। चेतन से जो मेल खाते हों, चेतन से जिनकी समानता हों - वे चेतन हैं। और मैं अकर्ता हूँ - ये चेतन का भाव है। मैं अपरिणामी हूँ - ये चेतन का भाव (है)। और मैं परिणामी और कर्ता हूँ - ये अचेतन भाव है।

मुमुक्षुः- जड़ भाव है। अचेतन का भाव नहीं, अचेतन भाव है।

पूज्य बाबूजीः- अचेतन भाव है। द्रव्य-गुण-पर्याय समझ में आ जाए तो सब समझ में आ जाता है।

मुमुक्षुः- इसके लिए बाबूजी यही चर्चा लेते हैं।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! इसलिए एक क्षण का ही है सारा। क्योंकि वो तो अकर्ता है ही, वो तो अपरिणामी है ही, शुद्ध है ही वो तो। अकर्ता माने जिसके सिर पर कोई भार नहीं है, निर्भार। जिसके सिर पर कोई काम नहीं है करने के लिए - ऐसा अकर्ता तत्त्व, वो मैं हूँ। तो उसमें सुख रहेगा कि नहीं रहेगा? जिसके सिर पर कोई भार नहीं है वो आनंदित रहेगा कि नहीं रहेगा? इसलिए वो आनंद स्वरूप ही है आत्मा तो। लेकिन उसे भूलकर, उसे न मानकर, उसका परिचय न करके यह जो जानता आया, यह जो मानता आया कि क्रोधादि मेरे भाव हैं - ऐसा कहना नहीं, कहने की बात नहीं (है)। कहे तो सही! कहे तो सही (कि) क्रोधादि भाव मेरे ही कर्म हैं लेकिन माने नहीं कि मेरे कर्म हैं। क्योंकि मेरे कर्म तो वो हैं जो मेरे स्वरूप से मिलते हैं, मेरे स्वभाव से मिलते हैं। मेरे स्वभाव का अनुशीलन करके पैदा होते हों वे मेरे कर्म हैं, (जैसे) ये ज्ञानादि और सुखादि।

मुमुक्षु:- लेकिन पर्याय में भी स्वभाव से विपरीत परिणमन होता है, इस तरह से। वो भूल गए....

पूज्य बाबूजी:- और यहाँ क्यों पड़े हैं? यहाँ क्यों पड़े हैं? इस पर्याय के अपराध के कारण ही पड़े हैं। पर्याय अपराधिनी है, द्रव्य अपराधी नहीं (है)। द्रव्य सदैव निरपराध है। उसमें अपराध का नाम-ओ-निशान ही नहीं (है)। ना उसमें कोई आता है, ना वो कहीं जाता (है)। ध्रुव है एकदम, निष्क्रिय।

आदतें ही तो खराब होती हैं या मनुष्य बिगड़ता है? मनुष्य बिगड़ता है या मनुष्य की आदत खराब होती है? मनुष्य बिगड़ जाए तब तो वो जो बिगड़ी हुई आदत है वो स्वभाव हुई; मनुष्यत्व हुआ वो तो। लेकिन वो तो पार्श्विकता है, आदत में तो। आदत में तो पशुता जैसी है। (पशुता) जैसा व्यवहार है, लेकिन मनुष्य नहीं बिगड़ा है। मनुष्य का जो परिणमन है वो बिगड़ा है, इसलिए वो सुधर जाता है। अरे! मैं तो मनुष्य हूँ न! ये पशुता मेरे में क्यों? ये पशुता मेरी कैसे हो सकती है? बस! बदल गया। अरे! मैं तो जैन-श्रावक हूँ न! ये रात्रि भोजन मेरे क्यों? ये आलू, गाजर, टमाटर मेरे क्यों? ये मेरे खाने लायक हैं क्या? ये दही-बड़े ये मेरे खाने लायक हैं क्या? ऐसा जानते ही और वो श्रावकोचित कर्म में आ जाता है। मैं तो मात्र चिन्मात्र हूँ।

मुमुक्षु:-[33] पर्याय अपराधी है तो फिर पूरे आत्मा को नरक क्यों भेजा जाता है? वो तो उस ही समय समाप्त हो गई।

पूज्य बाबूजी:- पदार्थ एक ही है। तो वो जाता है तो उसको नरक से कहाँ डर है? भेजा जाता है; माने वो तो एक ही पदार्थ के तीन अवयव हैं। वो ऐसा थोड़े ही है कि एक अंग तो यहाँ रह जाएगा और बाकी अंग नरक चले जायेंगे। और वो पर्याय तो इनकार ही कर देगी। बोले (कि) वो जिसने नरक उत्पन्न किया था वो तो है ही नहीं (पर्याय)। वो तो गया। वो अभी कहाँ है? अभी

33 पर्याय अपराधी है तो फिर पूरे आत्मा को नरक क्यों भेजा जाता है? - 24 Mins

तो मान लो सम्यग्दर्शन हो गया तो भी पहले नरक तो जाना ही पड़ेगा। अगर नरक आयु का बंध कर लिया (है) सम्यग्दर्शन के पहले तो पहले नरक तो जाना ही पड़ेगा। इसलिए वो पर्याय जिसने नरक आयु का बंध किया था वो तो इस समय नहीं है। इस समय तो सम्यग्दृष्टि हो गया। तो पर्याय को मचलेगी कि गया, मर गया वो तो। अब मुझे कैसे ले जाते हो, जिंदा को? तो वो आत्मा ही साक्षी है। हाँ! यही है, मेरा ही कर्म था वो, मैं साथ रहूँगा। मैं साथ रहूँगा।

एक अंग कट के थोड़ी ही आता है, अगर कोई अपराधी हो (तो)। किसी ने अँगुली से किसी की छेड़खानी की है तो उसकी अँगुली काट ली जाए। बस! खतम हुआ। या उसकी अँगुली को कोई चोट लगा दी जाए। आदमी को क्यों पकड़ा जाता है पूरा? पूरा अपराधी है ऐसा माना जाता है, लेकिन द्रव्य अपराधी नहीं है वहाँ जाकर भी। द्रव्य को तो तब दिक्कत हो जब नरक का कुछ उसमें प्रवेश हो जाए। तो वो प्रवेश तो होता नहीं है। पर्याय में भी प्रवेश नहीं है नरक का तो, लेकिन पर्याय ये मान लेती है कि मैं नारकी हूँ, तो नरकोचित कर्म करती है वो वहाँ पर। और वहीं ये मान लिया जाए कि मैं नारकी नहीं। मैं नरक में नहीं (हूँ), मैं नारकी नहीं (हूँ)। आत्मा उसे नहीं कहते (कि) जो नरक में रहता है। ये definition (परिभाषा) नहीं है आत्मा की। आत्मा तो उसे कहते हैं जो ज्ञान में रहता है। तो ये बात उसे वहाँ याद आ जाए, तो वहाँ पहले नरक से लेकर सातवें नरक तक सम्यग्दर्शन हो जाता है, अनुभूति हो जाती है।

द्रव्य को क्या डर है? वो इतना स्नेही है, सच में देखा जाए तो (इतना) स्नेही माने इतना आत्मीयता रखनेवाला है पर्याय के साथ। कारण कहते हैं न, कारण परमात्मा। वो तो कारण परमात्मा है कि कोई समय (ऐसा) आ जाए कि मैं कारण बन जाऊँ। ये पर्याय झाँक ले मेरी तरफ तो? उस समय अगर मैं नहीं होऊँ तो क्या होगा? और पर्याय तो कभी भी झाँक सकती है जब इसको सुध आ जाए। अभी तो ये गाफिल है। जिस समय इसकी गफलत मिट जाएगी उसी समय (ये) मेरी तरफ झाँकेगी। तो फिर मैं नारकी हूँ ये स्वर ही बदल जाएगा (उसका)। मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ, ये स्वर हो जाएगा सतत्, लगातार। और वो बिगाड़ भी केवल एक समय का (है), एक क्षण का (है)। एक क्षण का बिगाड़ है। भूत की पर्यायें गईं, भविष्य की पर्यायें अभी आयीं नहीं। केवल वर्तमान की विद्यमान पर्याय बस इतना बिगाड़ है, इतना संसार है।

ये वर्तमान पर्याय में जो विभाव है, जो विकार है, उसको वर्तमान में ही खतम कर दे, तो उसी समय मोक्ष हो। फिर करणानुयोग के प्रश्न भी नहीं होंगे कि कैसे हो जाएगा? कपड़े पहने होगा? तो कैसे होगा? मुनि नहीं बनेगा? कि वो सब हो जाएगा तुम उसकी चिंता मत करो। सिर्फ उसकी तरफ देख लो एक बार और उसी में लीन हो जाओ तो फिर सब हो जाएगा जो होना चाहिए। हमको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

मुमुक्षुः- बराबर! बराबर बाबूजी! अद्‌भुत सिद्धांत मिला बाबूजी (कि) मनुष्य बिगड़ा नहीं है, आदतें बिगड़ी हुई हैं।

पूज्य बाबूजी:- आदत बिगड़ी है इसलिए सुधर जाता है (कि) - अरे मैं तो मनुष्य हूँ। बस! सुधर गया, हो गया। मैं पशु थोड़े ही हूँ जो पशु जैसा कार्य करता हूँ। तो सुधर जाता है, ठीक हो जाता है।

श्रावक नहीं बिगड़ा है, श्रावक का कर्म बिगड़ा है। जैन नहीं बिगड़ा है, उसके जैनत्व का जो कर्म है वो बिगड़ा है। जैन तो वो सदा ही है। वरना अगर वो उसका जैनत्व बिगड़ जाए तो फिर वो याद किसको करेगा? किसको याद करके जैन बनेगा? क्योंकि वो तो बिगड़ गया था, पर्याय के साथ अगर द्रव्य भी बिगड़ जाए तो। इसलिए वो याद करे किसी को वो तो होना चाहिए न!

मिथ्यादर्शन के लिए भी आत्मा का शुद्ध होना आवश्यक है। क्योंकि आत्मा शुद्ध नहीं होगा तो फिर मिथ्यादर्शन में अशुद्ध किसको कहेगा? तभी तो मिथ्यादर्शन होगा। शुद्ध को अशुद्ध मानेगा इसका नाम मिथ्यादर्शन। शुद्ध की अशुद्ध अनुभूति इसका नाम मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान। इसलिए मिथ्यादर्शन के लिए शुद्ध होना बहुत आवश्यक है आत्मा का, वरना मिथ्यादर्शन ही नहीं होगा।

मुमुक्षु:- हम तो ये समझ रहे हैं कि सम्यग्दर्शन के लिए आत्मा (को शुद्ध होने) की जरूरत है।

पूज्य बाबूजी:- आत्मा को दोनों की ही जरूरत नहीं। हाँ! इनको जरूरत है।

मुमुक्षु:- सदाकाल परिपूर्ण है बस।

मिथ्यादर्शन के लिए भी आत्मा का शुद्ध होना जरूरी है।

पूज्य बाबूजी:- बहुत आवश्यक है!

मुमुक्षु:- नहीं तो ये अशुद्ध है, इस तरह का मिथ्यादर्शन कैसे हो सकता है?

पूज्य बाबूजी:- कैसे होगा ये? शुद्ध को अशुद्ध मानेगा उसका नाम मिथ्यादर्शन है। और शुद्ध को शुद्ध मानना इसका नाम सम्यग्दर्शन है, वैसी (ही) अनुभूति करना।

तो शुद्ध तो होना चाहिए पहले। फिर (तो) ये अशुद्ध माने तो मिथ्यादर्शन हो गया। उसी का नाम तो है मिथ्या (अर्थात्) झूठ।

मुमुक्षु:-[34] अद्भुत! पर आत्मा की अनुभूति करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

पूज्य बाबूजी:- यह हो रहा है न, यही है बात।

मुमुक्षु:- फिर भी, ये तो हो रहा है। ये तो स्वाध्याय हो रहा है लेकिन चिंतन में, भिन्नता में हम क्या करें?

34 आत्मा की अनुभूति करने के लिए हमें क्या करना चाहिए? - 31.45 Mins

पूज्य बाबूजी:- ये स्वाध्याय में जो हो रहा है वही चिंतन में है। स्वाध्याय में जो होता है वही चिंतन में होता है। स्वाध्याय में हम जो ये निर्णायक वार्ता कर रहे हैं.... निर्णायक वार्ता है कोई बीच की वार्ता नहीं है।

ये जो निर्णायक वार्ता है ऐसा का ऐसा चिंतन चले (कि) शुद्ध हूँ मैं एकदम परिपूर्ण, अनादि-निधन, अक्षय, अकर्ता, अपरिणामी - ऐसा चिंतन हो और (वो भी) महिमापूर्वक हो; शुष्क नहीं हो, रोते हुए नहीं हो, प्रसन्नता से हो। चिंतन में अगर प्रसन्नता नहीं है तो सम्यग्दर्शन होगा ही नहीं, कभी नहीं होगा। और प्रसन्नता अगर कल्पित है, कल्पना से उत्पन्न कर ली है तो भी नहीं होगा। क्योंकि (वो) ये जानता है (कि) बहुत मजा आ रहा है, बहुत आनंद आ रहा है आत्मा का चिंतन हो रहा है (तो)। तो ऐसे उसके विकल्प करता है केवल, प्रसन्नता नहीं होती। प्रसन्नता हृदय से होती है। अंतःकरण से होती है प्रसन्नता (मगर) उसके बीच में विकल्प नहीं आता है। मैं खा रहा हूँ और स्वाद ले रहा हूँ - इसके बीच में 'मैं खा रहा हूँ' यह नहीं आता है।

मुमुक्षुः- बहुत minute (बारीक) एकदम, बहुत सूक्ष्म (है)।

पूज्य बाबूजी:- ये नहीं आता (है)। ये (जो) कहा न! अगर ये आ गया तो उधर स्वाद चला जाएगा।

मुमुक्षुः- इतने चिंतन में कभी-कभी थोड़ा विकल्प आ जाता है, क्योंकि अभी तो शुरुआत है।

पूज्य बाबूजी:- वो जैसी भी भूमिका हो, ये है माने वस्तुस्थिति। पहले वस्तु व्यवस्था ये (है ऐसा) समझना चाहिए। इसके पहले कुछ भी करना माने कोई चिंतन करना, ध्यान करना और (कुछ) करना वो वृथा है। जब तक स्वरूप बिल्कुल एकदम परिशुद्ध न हो अपने ज्ञान में, ज्ञान में जब तक स्पष्टरूप से न जानने में आवे, तब तक उसका चिंतन अशुद्ध ही होगा और मिथ्यादर्शन नहीं जाएगा, मिथ्याज्ञान भी नहीं जाएगा। इसलिए सबसे पहले आत्मा के स्वरूप का निश्चय करना बहुत आवश्यक है। आत्मा का कर्म ज्ञान है, ये भी कर्ता-कर्म में कहना पड़ा आचार्य को। अन्यथा तो इस ७३ वीं गाथा में क्या कहा? कर्म जो है उसको तो उड़ा दिया वहाँ और एक मात्र शुद्ध चैतन्य (लिया) वहाँ भी। लेकिन आत्मा का कर्म राग-द्वेष-मोह नहीं है। आस्रव आत्मा का कर्म नहीं है क्योंकि वो भिन्न हैं आत्मा से - ऐसा कहकर (कहा कि) तो फिर आत्मा का कर्म क्या है? ये प्रश्न होगा न? तो कहा (कि) आत्मा का कर्म ज्ञान है। इनको जान लेना मात्र ये आत्मा का कर्म। पर वो भी नहीं (है) आत्मा का कर्म वास्तव में क्योंकि आत्मा का कर्म होता ही नहीं (है)। आत्मा निष्कर्म है, अकर्ता है।

मुमुक्षुः- बराबर! मतलब ये आत्मा का जो काम है जानना, वो भी मतलब व्यवहार से ही है।

पूज्य बाबूजी:- व्यवहार, व्यवहार, वो भी व्यवहार (है)।

मुमुक्षुः- मतलब आत्मा एकदम निष्क्रिय मतलब उसको...

पूज्य बाबूजी:- मैं ज्ञायक हूँ यह है निश्चय। मैं चिन्मात्र हूँ यह है निश्चय, परम निश्चय। यहाँ पर्याय का स्वर बदल गया। पर्याय द्रव्य के स्वरूप में बोलने लगी। द्रव्य का स्वर भरने लगी।

मुमुक्षुः- आत्मा निष्क्रिय! निष्क्रिय मतलब कि ये कुछ नहीं करता है?

पूज्य बाबूजी:- निष्क्रिय मतलब क्रिया नहीं है उसमें कोई। क्रिया हो तो काम हो (और) फिर वो कर्ता कहलायेगा। कर्ता कहलायेगा तो भार होगा। कर्ता माने जिसके पास कर्म हो.. फिर एक के बाद एक, दूसरा, तीसरा, चौथा ऐसा अनंतकाल तक कर्म ही कर्म जिसके सिर पर है तो वो निश्चिंत कैसे होगा? निर्भार कैसे होगा? इसलिए निर्भार है यदि आत्मा तो उसे अकर्ता तो होना ही चाहिए।

मुमुक्षुः- खुद का मतलब पुरुषार्थ करता है तो वो भी अकर्ता ही हुआ? खुद के लिए जो पुरुषार्थ करते हैं वो भी अकर्तापना हुआ?

पूज्य बाबूजी:- खुद के लिए जो पुरुषार्थ करता है वो पहले ये जाने कि - मैं अकर्ता हूँ तो किस तरह हूँ? कैसे हूँ अकर्ता? किसको कहते हैं अकर्ता ये पहले जाने कि जिसमें परिणाम न हो, परिणमन न हो, क्रिया न हो वो अकर्ता है। जिसके ऊपर कर्म का कोई भार नहीं है, जो निश्चिंत है, सदा एकरूप है, ध्रुव है, उसका नाम आत्मा है। (जो) परम परणामिकभाव स्वरूप है उसका नाम आत्मा है, वो आत्मा है। अब ज्ञान इस आत्मा के स्वर में बोले तो वो ज्ञान भी अकर्ता (है)। वो ज्ञान कोई कर्म बनकर आत्मा को जानता है - ऐसा नहीं। वो ज्ञान आत्मा बनकर आत्मा को जानता है।

मुमुक्षुः- ज्ञान आत्मा बनकर आत्मा को जानता है।

पूज्य बाबूजी:- (आत्मा बनकर) आत्मा को जानता है, कर्म बनकर नहीं जानता। कर्म बनकर जानता हो न तो फिर वो आत्मा के ऊपर हुआ कि मैं आत्मा को जानता हूँ तो तू बड़ा है उससे। क्योंकि तेरे जाने बिना वो आत्मा, बिल्कुल ugly था एकदम, कुरूप था।

मुमुक्षुः- भाव ऊँचा है, उसी प्रकार का प्रश्न है।

आपने बताया कि निर्णय पक्का होना चाहिए, उसमें बाल मात्र भी फर्क नहीं होना चाहिए। तो ऐसे शुद्धात्मा का निर्णय कैसे करें? अनुमान और युक्ति से कृपा करके समझाइए।

पूज्य बाबूजी:- शुद्धात्मा तो जैसा है वैसा अपन ने काफी इसकी चर्चा की (है) कि कैसा है? सर्व विभाव रहित, सर्व अन्य द्रव्यों से भिन्न, अपनी पर्याय से भी भिन्न, एक बार तो इतना अपनी अशुद्ध पर्यायों से तो भिन्न लेकिन शुद्ध पर्यायों से भी भिन्न जब मानेंगे, तभी वो अपरिणामी होगा। अपरिणामी होगा तो अकर्ता होगा। इस तरह अपरिणामी और परम शुद्ध चैतन्य ध्रुव वो मैं हूँ।

तो ऐसा जो शुद्धात्मा है वो उसके स्वरूप को पहले यूँ जाने कि वो सबसे रहित है माने सबसे। एक ओर वो और दूसरी ओर सम्पूर्ण विश्व (कि) जिसमें अपना पर्याय समुदाय भी आया,

अपने विकार भी आए, अपने कर्म भी आए और सारा जगत ये नोकर्म भी आए। ये सब आ गया। ये सब एक ओर और एक ओर मेरा ध्रुव चैतन्य - इस तरह आत्मा को जाने। इसमें जरा भी विकार नहीं है। जिनवाणी में (जो) उसे विकारी कहा गया है, वो पर्याय को साथ लेकर कहा गया है। क्योंकि पर्याय भी उस द्रव्य की ही है, एक ओर से देखा जाए (तो)। अगर ऐसा नहीं मानेंगे.. नहीं मानेंगे माने अगर ऐसा नहीं कहेंगे तो उस पर्याय को कोई भी अचेतन झपट ले जाएगा अगर हम द्रव्य की (पर्याय) नहीं मानेंगे तो।

तो ये तो पहली पाटी है ये तो, पहली। पहला चरण है ये तो वस्तु व्यवस्था को समझने का कि सचमुच राग-द्वेष का कर्ता आत्मा ही है। अगर आत्मा को राग-द्वेष का कर्ता न मानें तो फिर वो जो कर्म है राग-द्वेष, वो किसी दूसरे के पास चला जाएगा। तो फिर दूसरा उसका कर्ता हो जाएगा, तो आत्मा सदा अकर्ता हो जाएगा। तो ये (तो) बनेगा नहीं, संभव नहीं होगा क्योंकि वो तो स्पष्टरूप में कर्ता और अज्ञानी दिखाई देता है।

तो पहले तो ये ऐसा वस्तुस्थिति को जाने। (और) फिर इसके बाद जाने कि ये जो राग-द्वेष-मोह हैं जिनको मैं अपना कर्म मानता रहा, ये तो आकुलता उत्पन्न करनेवाले दुखमय भाव हैं जिनको आस्रव कहते हैं शास्त्र की परिभाषा में। आस्रव माने आनेवाला और आकर चला जानेवाला। तो ये तो भाव आते हैं और चले जाते हैं। अपन भी विकार को आनेवाला और जानेवाला ही कहते हैं, यहाँ लोक में भी। जैसे आँख आ गई, तो कहाँ से आई? और आँख चली गयी माने अँधा हो गया? फिर क्या हुआ? बुखार आया और बुखार चला गया; लोक में भी भाषा ऐसी है, अध्यात्म जैसी भाषा, शास्त्र जैसी भाषा। इस तरह विकार आया, आया माने वो संयोगी है। (और) क्योंकि संयोगी है (तो) वो जाएगा।

इसतरह सब एक ओर। सारे विभाव आदि सब एक ओर क्योंकि (वे) आत्मा से बिल्कुल विपरीत हैं, अनमेल हैं, भिन्न हैं। और आत्मा एक ओर शुद्धात्मा जो सत्ता स्वरूप है, ज्ञायक जो एक भाव है, ऐसा सत्ता स्वरूप जो परम पारिणामिकभाव स्वरूप चैतन्य है, कारण परमात्मा है वो मैं हूँ। ऐसा पहले ये युक्ति से, युक्ति से जाना न पहले क्योंकि वो तो ध्रुव है। तो ध्रुव का परिणाम के साथ कोई बनाव नहीं बनता है, कोई समझौता नहीं हो सकता। इसलिए उसका परिणाम के साथ समझौता नहीं है। पहले जो परिणाम के साथ समझौता कराया वो इसलिए कराया था कि वो विभाव का कर्ता (यदि) अपने आपको मानेगा तो विभाव को दूर करनेवाला भी अपने आप को मानेगा। अगर विभाव का कर्ता अपने को नहीं मानेगा तो विभाव का दूर करनेवाला भी नहीं रहेगा। तो विभाव रह जाएगा (फिर) और अनंत संसारी हो जाएगा। उसमें से भी इतना निकलता है। इतना गंभीर भाव है उसका कि राग-द्वेष का कर्ता प्रारंभ में, शुरू में ये जाने कि राग-द्वेष मेरे ही भीतर पैदा होते हैं।

ये जो झाड़ियाँ हैं, ये धान्य के साथ ही पैदा होती हैं खेत में। जहाँ धान्य है वहीं झाड़ी पैदा होगी लेकिन दोनों एक नहीं हुए कभी भी। तो ऐसा जाने पहले तो कि ये झाड़ी भी पैदा तो यहीं हुई है लेकिन ये धान्य नहीं है, ये चावल नहीं है। इसी तरह ये राग-द्वेष मोह पैदा तो यहीं हुए (हैं) मेरी पर्याय में। ये कोई पुद्गल की पर्याय में पैदा नहीं हुए लेकिन फिर भी, पैदा होने पर भी मेरा जो स्वरूप है (जो) वास्तविक मैं हूँ, था और रहूँगा - ऐसा जो मेरा त्रैकालिक स्वरूप है उससे ये बिल्कुल न्यारे हैं। क्योंकि जो था, है और रहेगा वो सदा शुद्ध (ही) होता है। क्योंकि उसमें किसी की मिलावट नहीं होती और सदा एकरूप रहता है।

तो जब राग-द्वेष-मोह हुए तो वहाँ थम गया और ये जाना कि ये राग-द्वेष-मोह ये आत्मा से बिल्कुल विपरीत भाव हैं। मेरी आत्मा से बिल्कुल भिन्न भाव हैं, इसलिए ये मैं नहीं हूँ। पहले कहता था कि ये मैं ही हूँ, मेरे ही हैं। रागी-द्वेषी-मोही आत्मा ही है - ये पहला पाठ। अब दूसरा पाठ कि रागी-द्वेषी-मोही आत्मा होने पर भी राग-द्वेष मोह से आत्मा नाम का जो द्रव्य है, उसका कोई मिलान नहीं होता। ये दोनों विपरीत हैं। तो दो विपरीत भाव कभी भी एक नहीं होते हैं। उनमें समझौता नहीं हो सकता। इसीलिए राग-द्वेष मोह आत्मा से न्यारे हैं क्योंकि ये आकुलता पैदा करते हैं, इसीलिए न्यारे हैं। तब फिर वो इनसे भी अनासक्त होकर और उधर आत्मा की तरफ झुकता है।

अनुमान से.. युक्ति, अनुमान और आगम तीनों से होता है। ये युक्ति से हुआ न ये, अनुमान से हुआ क्योंकि ज्ञान है मेरे में इसलिए मैं आत्मा हूँ। जहाँ-जहाँ ज्ञान है, वहाँ-वहाँ आत्मा है। जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ ज्ञान भी नहीं है। तो अचेतन में ज्ञान नहीं है इसीलिए वो आत्मा नहीं है। ये अनुमान से (तय) हो गया कि मेरे में ज्ञान है इसीलिए मैं आत्मा हूँ, ये अनुमान हुआ। वो हुई युक्ति (हुआ), तर्क (हुआ) कि जहाँ-जहाँ ज्ञान है वहाँ-वहाँ आत्मा है - ये तो हुआ तर्क। और मेरे में ज्ञान है इसीलिए मैं आत्मा हूँ। जहाँ-जहाँ धुआँ है वहाँ-वहाँ अग्नि है - ये तो हुआ तर्क। और मेरे रसोई घर में अग्नि है क्योंकि यहाँ पर धुआँ (है) - ये अनुमान हुआ।

और आगम से जाने। सत्य आगम की परीक्षा करे और उससे जाने, तो आँख खुल जाती है सचमुच। इसलिए युक्ति से, अनुमान से, आगम से पहले आत्मा जाना जाता है। सद्‌गुरु का उपदेश आगम (को) यूँ समझ लेना कि सद्‌गुरु का उपदेश। वहाँ आत्मा का स्वरूप जानने में आया इसके बाद उसके चिंतन में तन्मय होता है प्रसन्न भाव से, प्रसन्न भाव से। चारों ओर उपद्रव हों, उपसर्ग हों, कुछ भी हो माने कैसी भी परिस्थिति हो लेकिन ये उस समय यदि वो चिंतन वास्तविक है और आत्मानुभव (में) परिणमित होनेवाला है, तो फिर ये किसी भी परिस्थिति के सामने झुकता नहीं है। माने इसके सामने परिस्थिति नाम की कोई चीज ही नहीं है, वस्तु ही नहीं है क्योंकि परिस्थिति मेरा क्या करेगी? निर्णय तो इसने ये किया है। किसी भी परिस्थिति में अगर

प्रलय में भी बह जाऊँ मैं और सम्यग्दर्शन हो मुझे, तो मेरे सम्यग्दर्शन को प्रलय क्या लूटेगा? क्या बहायेगा? मेरी अनुभूति को कैसे बहा सकता है? इस तरह जानता है।

मुमुक्षुः- बिल्कुल अप्रभावित।

पूज्य बाबूजी:- बिल्कुल अप्रभावित, एकदम अप्रभावित।

मुमुक्षुः-[35] प्रश्न है - जीवतत्त्व का निर्णय करने के लिए उपयोग लक्षण से कथंचित् भिन्न लेना?

पूज्य बाबूजी:- जीवतत्त्व (का) निर्णय करने के लिए उपयोग लक्षण से युक्त लेना। भिन्न लेना नहीं। उससे युक्त लेना क्योंकि ये उपयोग अर्थात् ज्ञानक्रिया, जानन-क्रिया, ये (जो) प्रति समय चल रही है मेरे में, इसलिए मैं जीवतत्त्व हूँ। इसलिए मैं जीव नाम का तत्त्व हूँ - ऐसा, उससे युक्त लेना।

मुमुक्षुः- दूसरा प्रश्न था उसमें कि कथंचित् अभिन्न लेना? कथंचित् भिन्न लेना? या कथंचित् अभिन्न लेना? कि सर्वथा भिन्न लेना?

पूज्य बाबूजी:- नहीं! सर्वथा अभिन्न लेना। जीव का जहाँ निश्चय करना है तो वहाँ ज्ञान-क्रिया को आत्मा से सर्वथा अभिन्न लेना तब निर्णय होगा। कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न में उलझ जाएगा तो वो निर्णय ही नहीं होगा। निर्णय नहीं होगा।

मुमुक्षुः- सर्वथा अभिन्न लेना?

पूज्य बाबूजी:- सर्वथा अभिन्न लेना।

मुमुक्षुः- क्योंकि लक्षण और लक्ष्य सर्वथा अभिन्न होते हैं।

पूज्य बाबूजी:- अभिन्न होते हैं।

मुमुक्षुः- और फिर अभिन्न लेने के बाद? बाबूजी! यहाँ 'सर्वथा अभिन्न' का मतलब क्या?

पूज्य बाबूजी:- अभिन्न माने मेरे में ज्ञान है इसलिए मैं आत्मा हूँ। माने ज्ञानमय आत्मा हूँ मैं - यह हुआ।

मुमुक्षुः- तो अनंत गुणमय आत्मा वो ही हुआ न ये तो?

पूज्य बाबूजी:- अनंत गुणमय तो है ही। यहाँ तो ज्ञान पर्याय की बात करते हैं।

मुमुक्षुः- उपयोग लक्षण से ही कथंचित् भिन्न लेना कि कथंचित् अभिन्न लेना?

पूज्य बाबूजी:- अभिन्न लेना, अभिन्न लेना। पहले आत्मा को जानने के लिए, आत्मा की सत्ता स्वीकार करने के लिए अभिन्न लेना। और उपयोग को तो आत्मा ही कहा है। उससे भिन्नत्व का क्या सवाल है? हाँ! जानन-क्रिया से वो भिन्न है क्योंकि जानन-क्रियारूप आत्मा नहीं है। जाननभाव स्वरूप, जाननभाव का केंद्र-कोष वो तो आत्मा है, ज्ञानगुण से युक्त; लेकिन जानन-क्रिया वो आत्मा में नहीं है।

35 जीवतत्त्व का निर्णय करने के लिए उपयोग लक्षण से कथंचित् भिन्न लेना। - 47.48 Mins

वो तो जहाँ कोई प्रश्न होता है इसतरह का कि जैसे वो क्रोधादि का कर्ता नहीं है और घट आदि का कर्ता नहीं है, तो फिर किसका कर्ता है? कि तो वो ज्ञान का कर्ता है, जाननभाव का कर्ता है - ये उत्तर आता है। लेकिन जाननभाव का कर्ता हूँ यहाँ रुक नहीं जाता। इससे आगे बढ़ता है और जाननभाव से मैं ज्ञायक हूँ बस! वहाँ पहुँच जाता है। ये है वास्तविक रीति।

जाननभाव क्या है? जाननभाव बस ये कि ये राग-द्वेष-मोह मेरे नहीं हैं। यदि इसमें रुक गया तो आत्मा तक पहुँचकर (उसकी) उपलब्धि कैसे होगी? वो तो उनको जानने में लग गया राग-द्वेष-मोह को (जानने में) तो सड़ान (बू) आएगी वहाँ (से)। इसलिए ये मेरे नहीं है ऐसा कहकर turn (घूम) लेता है एकदम (कि) मैं तो ज्ञायक हूँ, चिन्मात्र।

मुमुक्षु:- ये बताया कि उपयोग (को) सर्वथा अभिन्न लेना और जानन-क्रिया भिन्न लेना?

पूज्य बाबूजी:- वो जानन-क्रिया ही उपयोग है। जानन-क्रिया वो नहीं है जैसे वो जो उस गाथा का आया (कि) उपयोग में उपयोग है, उसमें (तो) एक उपयोग आत्मा ही है वो। उसमें तो उपयोग को आत्मा ही कहा क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है - ये सर्वत्र ही प्रक्रिया ली है न आचार्य ने। ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व है वो मैं हूँ। ये ज्ञान है सो मैं हूँ - ऐसा, इस तरह से। तो इसलिए अभिन्न ही लेना। भिन्न तो उस समय (कि) जिस समय क्रिया की बात, परिणाम की बात आई। परिणाम की बात आवे उस समय भिन्न है। उसमें जानन-क्रिया भी आ गई। उसमें राग नहीं है, राग नहीं है।

मुमुक्षु:- उपयोग शब्द का अर्थ ये भी है कि वो आत्मा है।

पूज्य बाबूजी:- आत्मा है।

मुमुक्षु:- हाँ, तो ज्ञानस्वरूप है तो फिर वो सर्वथा अभिन्न लेना। पर क्रिया की बात आ गई तो सर्वथा भिन्न लेना।

पूज्य बाबूजी:- भिन्न ही लेना।

मुमुक्षु:- उपयोग शब्द और जानन-क्रिया शब्द, वो दोनों लफ़्ज़ में इतना फर्क महसूस नहीं (होता)। मिलान लगता है बाबूजी जब उपयोग बोलते हैं (तब)।

पूज्य बाबूजी:- नाम एक हैं न! तो नाम एक हैं, लेकिन भाव दो हैं। अब वहाँ तो भाव भी दो नहीं हैं। वहाँ तो कहते हैं कि आत्मा यहाँ रहता है।

मुमुक्षु:- वहाँ तो भाव भी दो नहीं हैं, एक ही है।

पूज्य बाबूजी:- क्रोध में नहीं रहता है, यहाँ रहता है आत्मा - ऐसा जानता है। यहाँ रहता है ऐसा जानकर इस भाव को पलट देता है कि मैं ज्ञायक हूँ।

मुमुक्षु:- बराबर! वहाँ रुकता नहीं है। बहुत सुंदर! यहाँ रहता है उतना जानकर उस भाव को पलट देता है कि मैं ज्ञायक हूँ। ये पलटा देना बहुत मुश्किल लगता है।

पूज्य बाबूजी:- असली चीज तो पलटना ही है।

मुमुक्षुः- आप जितनी सरलता से पलटाने की बात कर रहे हैं उस समय तो थोड़ा सा समझ में आ जाता है।

पूज्य बाबूजीः- नहीं! वो है सरल लेकिन। लेकिन क्योंकि उलझा हुआ बहुत है न! तो उलझा हुआ बहुत है। ऐसा है कि जैसे कर्जा बहुत हो और पास में पैसा भी हो लेकिन नियत खराब हो तो कैसे काम चले?

मुमुक्षुः- अरे प्रभु! बराबर! अरे! कर्जा भी है, पैसा भी है और नियत भी खराब है। ये जवाब बराबर है। अब नहीं पूछेंगे प्रश्न कर्ताबुद्धि का।

उपयोग[36] है वह पर्यायार्थिकनय का पारिणामिक भाव है। वह जब पर को लक्ष करके जानता है तब परणामिकभाव की क्या स्थिति होती है?

पूज्य बाबूजीः- पारिणामिकभाव माने यहाँ पर परिणमन करनेवाला; पारिणामिकभाव माने द्रव्य नहीं। पर्यायार्थिकनय कहा न! पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव माने परिणमन करनेवाला क्योंकि **सर्व भावा पारिणामिकः** ऐसा वाक्य है। सभी भाव पारिणामिक हैं। चार भाव पारिणामिक हैं इसलिए पाँचवे भाव को परम पारिणामिक कहा। अब वैसे पारिणामिक ही कहते हैं। माने जहाँ परम लगाने की आवश्यकता नहीं हो, वहाँ पारिणामिक पर्याप्त होता है। लेकिन चार भाव पारिणामिक हैं मतलब परिणमन करनेवाले हैं। औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशम और क्षायिक - ऐसा। तो ये सब परिणमन करते हैं और वो अपरिणामी है, तो वो पारिणामिक (परम पारिणामिक) मैं हूँ।

यहाँ तो पर्यायार्थिकनय से पारिणामिकभाव नहीं बताया। पारिणामिकभाव तो उसका स्वरूप है। पदार्थ का स्वरूप है जानन-क्रिया। जैसे वो पदार्थ का स्वरूप ये है, तो इस ओर से उसे पारिणामिक कह सकते हैं; लेकिन वो पारिणामिक नहीं। त्रिकाल परम पारिणामिक वो नहीं है....त्रिकाल निरावरण जिसको कहते हैं।

मुमुक्षुः- तो ये परम पारिणामिकभाव की क्या स्थिति है? उसका अर्थ ये है कि वो विषय नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- उसमें परम पारिणामिक नहीं आएगा, क्रिया में। उपयोगरूप जो जानन-क्रिया है उसका कोई परम पारिणामिकभाव है - ऐसा नहीं। जानन-क्रिया पारिणामिक है क्योंकि परिणमन करता है।

मुमुक्षुः- वो जानन-क्रिया का पारिणामिकभाव और परम पारिणामिकभाव द्रव्य स्वभाव...

पूज्य बाबूजीः- दोनों में बहुत अंतर है।

मुमुक्षुः- दोनों में बहुत अंतर है।

36 उपयोग है वह पर्यायार्थिकनय का पारिणामिक भाव है। वह जब पर को लक्ष करके जानता है तब परणामिकभाव की क्या स्थिति होती है? - 54.25 Mins

पूज्य बाबूजी:- एक अपरिणामी है (और) एक परिणामी है।

मुमुक्षु:- तो उसकी क्या स्थिति है? वो तो वैसा की वैसा ही है उसका मतलब ये हुआ।

पूज्य बाबूजी:- वो तो वही का वही है। वैसा का वैसा तो ये जानन-क्रिया भी हो सकती है। पर वैसा का वैसा (है) तो (और भी हो सकते हैं)। श्रद्धा तो वैसी की वैसी रहती है, उत्पन्न होने के बाद। सम्यग्दर्शन हो जाने पर जो श्रद्धा पैदा हुई, क्षायिक सम्यक्त्व, वो वैसी की वैसी है अनंतानंत काल तक।

मुमुक्षु:- और ये तो वह का वह है।

पूज्य बाबूजी:- और ये वही का वही है।

मुमुक्षु:- इसलिए इसमें कोई फेरफार नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- तद्भावरूप से अव्यय है ये। तद्भावरूप से माने वही, वही, वही, वही, वही, वही - ऐसा लगता है इसको। और उस पर्याय में लगेगा वो नहीं, वो नहीं, वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं। वही नहीं, वही नहीं, वही नहीं, वही नहीं; द्रव्य में लगेगा वही, वही, वही, वही, वही का वही।

मुमुक्षु:- और पर्याय में वैसा का वैसा।

पूज्य बाबूजी:- पर्याय में वैसा का वैसा हो सकता है, शुद्ध दशा; अशुद्ध दशा में नहीं।

मुमुक्षु:-[37] परम पारिणामिकभाव तो अपरिणामी है। तो (उसको) परम पारिणामिकभाव क्यों कहा?

पूज्य बाबूजी:- इसीलिए परम पारिणामिक कहा क्योंकि वो अन्य पारिणामिक से भिन्न है। अन्य पारिणामिक से भिन्न है वो इसीलिए कहा परम पारिणामिक।

मुमुक्षु:- है तो अपरिणामी न?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अपरिणामी है, लेकिन अन्य जो पारिणामिक हैं उनसे ये अन्य प्रकार का है इसीलिए इसे परम पारिणामिक कहा। तो परम पारिणामिक कहने से हमें जान लेना चाहिए कि ये उन पारिणामिक से भिन्न है अर्थात् अपरिणामी है।

मुमुक्षु:- आहा! और मेरे लिए परम है।

पूज्य बाबूजी:- जैसे (कि) तत्त्व और परम तत्त्व। तो तत्त्व में तो जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये आ जाते हैं। और परम तत्त्व में शुद्ध जीवास्तिकाय आता है। भिन्न हो जाता है वो सात तत्त्वों से।

मुमुक्षु:-[38] प्रश्न है प्रभु! पर्याय का पारिणामिकभाव क्या होता है?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय का पारिणामिक (अर्थात्) बदलना, पर्याय का परिणमन होना वो पारिणामिक (है)।

37 परम पारिणामिकभाव तो अपरिणामी है। तो (उसको) परम पारिणामिकभाव क्यों कहा? - 58.09 Mins

38 पर्याय का पारिणामिकभाव क्या होता है? - 59.16 Mins

मुमुक्षु:- माने परिणमन हुए बिना रहे नहीं, वो उसका पारिणामिकभाव होता है।

पूज्य बाबूजी:- वो उसका पारिणामिक।

मुमुक्षु:- माने पर्याय है तो उसको बदलना ही बदलना है, वो भाव उसका पारिणामिकभाव है।

पूज्य बाबूजी:- वो पारिणामिक कहलाता है माने। पारिणामिकभाव है वो कोई अलग से नहीं होता है, पर वो पारिणामिक कहलाता है - ऐसा है, क्योंकि वो परिणमन करता है। जानन-क्रिया भी पारिणामिक है, परिणमन करती है। परम पारिणामिक से ये सब न्यारे हैं, बिल्कुल न्यारे हैं क्योंकि ये नये-नये उत्पन्न होते हैं। जो परम पारिणामिक है वो वही का वही है। उसमें बदलाव नहीं होता है कभी भी, वो द्रव्य ही है माने। परम पारिणामिक माने द्रव्य, शुद्धात्म तत्त्व।

मुमुक्षु:-[39] तो बाबूजी ये पर्याय का पारिणामिकभाव किस तरह से प्रयोजनभूत है?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय का पारिणामिकभाव क्या होता है (कि) परिणमन करना वही है बस पारिणामिक। उसको पारिणामिक कहते हैं। उसका कोई पारिणामिकभाव अलग से नहीं (है)। वो तो द्रव्यत्व गुण है उसका, वो द्रव्यत्व गुण है कि जिसके सहारे से वो परिणमन करता है प्रति समय। सामान्य द्रव्यत्व गुण है न, सामान्य गुणों में। तो वो परिणमन करता है।

षट्गुणी हानि-वृद्धि वो और इसके साथ में वो भिन्न पर्याय है। वो पर्याय में ही है लेकिन वो। वो पर्याय के साथ ही अभेद है चाहे शुद्ध (हो या) चाहे अशुद्ध हो। लेकिन हर पर्याय में षट्गुणी हानि-वृद्धि होती है, संसार दशा में और सिद्ध दशा में सबमें। और उसका हेतु है अगुरुलघुत्व नाम का सामान्य गुण, (वो) अगुरुलघुत्व का ही प्रकार है। अगुरुलघुत्व एक तो सामान्य गुण है। एक अगुरुलघुत्व नाम-कर्म होता है और एक अगुरुलघुत्व जो है, वो गोत्र-कर्म होता है; जो गोत्र-कर्म के अभाव में अगुरुलघुत्व गुण सिद्धों को प्रगट होता है पर्याय में, वो अगुरुलघुत्व। ऐसे तीन होते हैं ये।

तो अगुरुलघुत्व नाम का जो सामान्य है वो षट्गुणी हानि-वृद्धि में निमित्त होता है, उसकी पर्याय। माने एक ही समय में छह गुणी हानि और छह गुणी वृद्धि और पदार्थ का ज्यों का त्यों रहना, वैसा का वैसा, वही का वही; माने उसमें गुरुता और लघुता नहीं होना। पर्याय में गुरुता-लघुता होने पर भी जो द्रव्य है वो वही का वही रहता है और पर्याय भी पूरी रहती है। षट्गुणी हानि-वृद्धि हो जाती है और पर्याय पूरी रहती है।

मुमुक्षु:- आहाहा! यह कैसे प्रभु?

पूज्य बाबूजी:- ये ऐसे जैसे आपके समुद्र में ज्वार आया फिर भाटा आया, माने tides; और समुद्र वही का वही (रहा)। माने जिस समय वो ज्वार आया उस समय वो समुद्र बढ़ा नहीं है

39 पर्याय का पारिणामिकभाव किस तरह से प्रयोजनभूत है? - 1.0.22 Hours

और जिस समय भाटा आया उस समय वो घटा नहीं (है) लेकिन वो पर्याय भी पूरी है वो। पर्याय भी पूरी है।

मुमुक्षुः- षट्गुण हानि-वृद्धि होने पर भी...

पूज्य बाबूजीः- वो हर पर्याय में होती है। वो पर्याय उसमयी है वो। भले मिथ्यात्व की पर्याय हो लेकिन वो उसमय है वो पर्याय, षट्गुणी हानि-वृद्धि की। इसलिए सब गुणों की पर्याय में ये षट्गुणी हानि-वृद्धि होती है। और उसका निमित्त जो है वो अगुरुलघुत्व गुण की पर्याय है, सामान्य गुण।

मुमुक्षुः- छह प्रकार के विभाग ....?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! बारह प्रकार के हो गए न, हानि और वृद्धि।

मुमुक्षुः- जीव द्रव्य के गुण शुद्ध हैं, फिर भी पर्याय अशुद्ध भी होती है। जीव में या उसके (ऐसे) कौनसे गुण (में, कि उस) की पर्याय अशुद्ध हो सके - ऐसी शक्ति है? (और) उस शक्ति का सिद्ध अवस्था में क्या स्वरूप रहता है?

मुमुक्षुः- जीव में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि उसमें विकार हो क्योंकि सारे गुण शुद्ध हैं। लेकिन ये बताने के लिए कि ये जो पर्याय है ये कौनसे गुण की है, कौनसे गुण से मिलती है ये पर्याय माने ये कौनसे गुण के कार्य को प्रगट करती है, ये बताने के लिए (उसको) उस गुण की पर्याय कहा जाता है। है भी उस गुण की पर्याय लेकिन गुण स्वयं परिणमन नहीं करता। परिणमन पर्याय में ही होता है, गुण में परिणमन नहीं होता है। लेकिन वो उस गुण का कार्य क्या है - ये पर्याय में व्यक्त होता है, ये पर्याय में जाना जाता है। इस तरह हर गुण की पर्याय को (कहा)। और उस पर्याय से उस गुण का पता चलता है कि मेरी पर्याय के पीछे ये ऐसी एक अनंत शक्ति पड़ी है जो कभी कम और अधिक नहीं होती। षट्गुणी हानि-वृद्धि गुणों में नहीं होती, द्रव्य में नहीं होती, वो भी पर्याय में होती है अगुरुलघुत्व गुण के कारण से।

मुमुक्षुः-[40] यानि वर्तमान पर्याय से गुण अछूता है? वर्तमान पर्याय से गुण अछूता है?

पूज्य बाबूजीः- अछूता है। हाँ! कथंचित् अछूता है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! वो क्या कथंचित् अछूता?

पूज्य बाबूजीः- माने बिल्कुल न्यारा मान लेंगे क्या? बिल्कुल न्यारा मान लेंगे तो दो द्रव्य हो जायेंगे न!

मुमुक्षुः- कहने में तो ये आता है कि श्रद्धा गुण का परिणमन, ज्ञान गुण का परिणमन। पर गुण तो अपरिणामी है, फिर क्यों ऐसे कहा जाता है?

पूज्य बाबूजीः- फिर अनेकांत का क्या होगा? गुण परिणमन करता है (पहले, ये) बोला जाए और फिर गुण परिणमन नहीं करता है - ये दोनों बात अनेकांत में आ जायेंगी। भाई! अनेकांत

40 क्या वर्तमान पर्याय से गुण अछूता है? - 1.05.06 Hours

ऐसे समय में ही तो रक्षा करता है कि तुमने पहले तो ये कहा था न कि आत्मा ही रागी-द्वेषी है। अब कहते हो (कि) राग-द्वेष पुद्गल के हैं। तो कहते हैं (कि) हमारा अनेकांत है उसकी ध्वजा ऐसी लहराती है हमेशा। वो कभी चुनौती नहीं पाता है। उसकी जो अपेक्षायें हैं, उसके जो angle हैं, वो angle तुम समझते नहीं हो (कि) कौनसे angle से हम बोले।

हमने एक व्यक्ति को अनेक नामों से पुकारा तो उसमें एक-एक angle से उसको पुकारते हैं। उसको पिता पुकारते हैं तो वो पुत्र की ओर से पुकारते (हैं)। उसको पति पुकारते हैं तो पत्नी की ओर से पुकारते हैं। उसे मामा, काका, भांजा, जो कुछ भी हो, ये इतने धर्म उसके भीतर हैं। तो ये angle हैं सारे के सारे कि एक व्यक्ति इतने अनेकरूप हो सकता है, लेकिन उसके angle हैं। इसी तरह (से) अनेकांत के angle होते हैं (और) उस ओर से हम पुकारते हैं द्रव्य को कि द्रव्य परिणामी भी है और अपरिणामी भी है। इसलिए दोनों में से हम selection (चुनाव) करेंगे तो वास्तव में अपरिणामी है। लेकिन परिणामी अगर नहीं कहेंगे तो परिणाम किसी दूसरे के घर चला जाएगा और आत्मा परिणामहीन होकर शून्य हो जाएगा।

मुमुक्षुः- वास्तव में हम selection (चुनाव) करेंगे तो अपरिणामी (का करेंगे)।

पूज्य बाबूजीः- तो अपरिणामी। जब उसका स्वरूप जानेंगे तो अपरिणामी सिद्ध हो जाएगा। और (यदि) वो (द्रव्य) भी परिणमन करने लगे (और) पर्याय भी परिणमन करने लगे तो दोनों में क्या अंतर रहा? दोनों (ही) पर्याय हुए। द्रव्य कहाँ रहा फिर? और अपरिणामी में हमारा कल्याण है, परिणामी में कल्याण नहीं है। क्योंकि परिणाम जो है वो तो पर्याय है और द्रव्य परिणामी है - ऐसा कहने में भी परिणाम की याद आती है। तो परिणामी कहने में कोई ऐसा अनर्थ नहीं (है) लेकिन उसे परिणामी मत बोलो, अपरिणामी बोलो तो परिणाम से दृष्टि हट जाएगी। और परिणामी कहते ही परिणाम की याद आएगी। पर्याय परिणाम है, परिणामी नहीं - ऐसा (यदि) बोला तो परिणामी नहीं है; माने परिणामी बोला हमने तो पर्याय की याद आ जाएगी तुरंत, परिणाम की याद आ जाएगी। इसलिए वास्तव में अपरिणामी है, ऐसा। तब फिर परिणाम मात्र एक ओर रह जाता है और वो फिर द्रव्य बनकर आता है।

मुमुक्षुः- परिणाम मात्र एक ओर हो जाता है और फिर द्रव्य बनकर आता है।

पूज्य बाबूजीः- द्रव्य बनकर आता है वो। जब वास्तविक दशा उत्पन्न होती है अनुभूति की, तो द्रव्य बनकर आता है कि मैं तो चिन्मात्र ज्ञायक हूँ। वो द्रव्य बन गया।

मुमुक्षुः- माने पर्याय मात्र को परिणाम कहो, परिणामी मत कहो - ये कहना है?

पूज्य बाबूजीः- परिणामी द्रव्य को कहते हैं। लेकिन परिणामी कहने से परिणाम की याद आती है, इसलिए अपरिणामी कहो और वो उसका वास्तविक स्वरूप भी है। उसका वास्तविक स्वरूप भी वही है।

मुमुक्षु:- परिणामी कहता है (कि) मैं अपरिणामी हूँ। तो वो परिणामी (जो) कहा (वो) इसको द्रव्य को (कहा) कि पर्याय को?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय।

मुमुक्षु:- परिणामी कहता है कि मैं अपरिणामी हूँ।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ये पर्याय बोली। अपरिणामी बोलता नहीं है। अपरिणामी बोले तो वो (तो) परिणामी हो जाए।

मुमुक्षु:- तो फिर परिणामी शब्द क्यों बोला? पर्याय - ऐसा शब्द क्यों नहीं बोला?

पूज्य बाबूजी:- परिणामी नहीं बोले तो वो पर्याय बिल्कुल अलग हो जाएगी उससे द्रव्य से, अगर परिणामी नहीं बोलेंगे तो। और द्रव्य से अलग होकर टूट जाएगी द्रव्य से, तो द्रव्य का ही नाश हो जाएगा। इसलिए पहली बार में तो परिणामी बोलना पड़ेगा, जानना चाहिए बल्कि - ऐसा। जानना चाहिए, मानना चाहिए भी कहते हैं कि पहले इसको परिणामी ही मानना चाहिए। क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय को जब तक नहीं समझेगा तब तक फिर उसमें से selection (चुनाव) नहीं होगा।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! पहले उसको परिणामी ही मानना चाहिए क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय प्रमाण की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए।

पूज्य बाबूजी:- स्वीकार करना चाहिए। पहले प्रमाण को स्वीकार करे (और) उसके बाद उसमें से selection (चुनाव) करे।

मुमुक्षु:- परिणामी कहने से अनुभव की प्रक्रिया में आ गया न?

पूज्य बाबूजी:- आ सकता है यदि आसन्न-भव्य हो तो।

मुमुक्षु:- आ गया नहीं आ सकता है।

पूज्य बाबूजी:- अपरिणामी मानकर ही आएगा लेकिन। परिणामी को भी अपरिणामी मानकर ही आएगा, परिणामी मानकर नहीं आएगा।

मुमुक्षु:- इन दोनों लफ्ज़ों की रमत से बहुत सूक्ष्म बात अंदर से बाहर आ जाती है। पर्याय को परिणाम कहो और (यदि) द्रव्य को परिणामी कहते हो तो परिणाम की बू आ जाती है; तो अपरिणामी जानो।

पूज्य बाबूजी:- अपरिणामी जानो और वास्तव में वो अपरिणामी है।

मुमुक्षु:- हमें तो ये तीन लफ्ज़ों का कोई ज्यादा इतना फरक महसूस नहीं होता था।

पूज्य बाबूजी:- फरक है इसलिए शब्द बने हैं वो।

मुमुक्षुः-[41] पाँच समवाय में से पुरुषार्थ को ही मुख्यता दी जाती है। तो बाकी के समवाय की, जैसे कि निमित्त की हाजिरी वगैरह का क्या योगदान है? योगदान न हो तो समवाय कैसे कहलाये?

पूज्य बाबूजीः- योगदान भी नहीं है और होते भी हैं - दोनों बात हैं। निमित्त का कोई योगदान नहीं है लेकिन निमित्त का योग होता है, अवश्य। योगदान नहीं होता।

मुमुक्षुः- योग होता है।

उसको समवाय में क्यों गिना?

पूज्य बाबूजीः- समवाय में इसलिए गिना कि वो होता है। काम ऐसी परिस्थिति में होता है, ज्ञानी इस बात को जानता है। क्योंकि वो तो जाननेवाला है इसलिए हर बात को जानेगा। तो ऐसी परिस्थिति में कार्य होता है ये ज्ञान को बताना आवश्यक है। लेकिन ये बताना भी आवश्यक है (कि) उस परिस्थिति का असर नहीं होता है।

मुमुक्षुः- योग तो होता है (मगर) योगदान नहीं होता।

पूज्य बाबूजीः- योगदान नहीं होता।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! बाकी के समवाय होते भी तो हैं न!

पूज्य बाबूजीः- हाँ! होते हैं, तो सबको कहा है न। जो होते हैं उनको सबको कहा है, पर प्रधानता पुरुषार्थ की है। क्योंकि ये मिथ्या पुरुषार्थ कर रहा था न पहले, सारा का सारा। उसमें भी पुरुषार्थ था प्रति समय क्योंकि गलत रास्ते जाने पर भी आखिर श्रम तो वही (उतना ही) होता है। लेकिन सही रास्ते जाने पर श्रम तो होता ही है लेकिन प्रसन्नता होती है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! थकान नहीं लगती। वाह रे वाह!

पूज्य बाबूजीः- प्रसन्नता होती है।

मुमुक्षुः- क्योंकि सुख का फल आ जाता है न!

पूज्य बाबूजीः- सुख का फल आ जाता है उसको, सही का फल आ जाता है। इसलिए श्रम तो होता ही है।

मुमुक्षुः- पर थकान महसूस नहीं होती।

पूज्य बाबूजीः- अब ये जो श्रम कर रहा है सही रास्ते का, तो सही रास्ते में ये घबराता इसलिए नहीं है कि मेरे कदम जिस तरह से बढ़ने हैं, उसी तरह से बढ़ेंगे। इसलिए इसको बार-बार ये नहीं आता कि कब आएगा, कब आएगा, कब आएगा? ऐसा चिंतातुर नहीं होता, ऐसी घबराहट नहीं होती। और ये जानता है कि वो तो इतने बजे आएगा। इतने बजे आएगा - ये जानकर निश्चिंत हो जाता है और उसका चलना जो है (वो) स्वाभाविकरूप से (और) प्रसन्नतापूर्वक चलता रहता है। तो वो जो पुरुषार्थ है तो वो उसके साथ ये काललब्धि आई कि नहीं आई? चलेगा जरूर

41 योगदान नहीं है तो समवाय पाँच कैसे कहलाये? - 1.12.32 Hours

(और) उसमें श्रम होगा, वो तो पुरुषार्थ (है)। लेकिन वो श्रम करने पर भी उसे यदि चार बजे पहुँचना है तो वो चार बजे ही पहुँचेगा। चार बजे के पहले और चार बजे के पीछे नहीं, इसका नाम काललब्धि (है)।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

<u>जिनवाणी-स्तुति</u>

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १७, तारीख १०-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:- [42]उपयोग के बारे में उसकी थोड़ी सविशेष जानकारी चाहते हैं वो कि.... कल का प्रश्न था (कि) उपयोग (जो) है, वह पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव है। वह जब पर को लक्ष करके जानता है तब पारिणामिकभाव की क्या स्थिति रहती है - वो कल का प्रश्न था। उसका उत्तर भी दिया गया था। उसके बाद का ये प्रश्न है।

कल का प्रश्न पढ़ें वापस से। कल जो प्रश्न आया था, अंत में, last में कि उपयोग है वह पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव है। वह जब पर को लक्ष करके जानता है, उपयोग पर को लक्ष करके जानता है, तब पारिणामिकभाव की क्या स्थिति रहती है? - एक प्रश्न। इस प्रश्न का उत्तर कल दे दिया गया था। इसके बाद में आज एक दूसरा प्रश्न खड़ा होता है कि पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव (तो) उपयोग है। पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव तो उपयोग है और उपयोग तो आत्मा का लक्षण है। तो उपयोग आत्मा को किस प्रकार प्रसिद्ध करता है? - ये प्रश्न है।

पूज्य बाबूजी:- पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से उपयोग पारिणामिकभाव है।

कल आई थी बात कि सारे ही भाव, उपशम-क्षयोपशम इत्यादि चारों ही (भाव) पर्यायार्थिकनय के विषय हैं तो सभी पारिणामिक कहलाते हैं। **सर्व भावा पारिणामिकः** - ऐसा कहलाता है। और इनकी अपेक्षा जो पाँचवा भाव है, ये परमपरिणामिक कहलाता है।

उपयोग जो स्वयं पर्याय है, तो वो आत्मा का लक्षण होती है। क्योंकि गुण और द्रव्य ये लक्षण नहीं होते क्योंकि ये नित्य हैं। जो परिणमन करता है, कार्यरूप होता है, क्रियारूप होता है वो लक्षण होता है। इसलिए उपयोग क्रियारूप, कर्मरूप, कार्यरूप होने से उस आत्मा का लक्षण बनता है और उपयोग माने ज्ञान-क्रिया। मैं जानता हूँ, इससे आत्मा जाना जाता है। मैं जानता हूँ, मैं जाननेवाला हूँ, मेरे में जानना है इसलिए मैं आत्मा हूँ। इस तरह उपयोग के द्वारा आत्मा जान लिया जाता है। उपयोग के सिवाय, ज्ञान के सिवाय दूसरा कोई लक्षण नहीं बनता और परिणमन करनेवाला ही लक्षण कहा जाता है।

जो अपरिणामी है गुण और द्रव्य, वे लक्षण नहीं बनते। कैसे बनेंगे? क्योंकि कार्य ही नहीं दिखाई देगा। जब कार्य नहीं दिखाई देगा तो हम लक्षण कैसे बनायेंगे? और उससे लक्ष्य की

42 उपयोग आत्मा को किस प्रकार प्रसिद्ध करता है? – 0.15 Mins

प्रसिद्धि कैसे होगी? इसलिए उपयोग परिणमनशील होने से पारिणामिकभाव हो भले ही, लेकिन (वो) आत्मा का लक्षण है और उससे आत्मा अपने को भी पहचानता है और अन्य को भी जानता है।

मुमुक्षुः- बाबूजी! एक ये पानी का स्वभाव.... दृष्टांत से, पानी के दृष्टांत से सोचा जाए कि सर्वथा त्रिकाल सदैव द्रव्यस्वभाव शीतल है। और पर्याय का शीतल स्वभाव वो भी.... क्या पानी की अवस्था का शीतल स्वभाव, वो भी क्या वो अनादि-अनंत हो सकता है या नहीं हो सकता?

पूज्य बाबूजीः- पानी तो एक दृष्टांत है, खाली। वो तो (एक) स्कंध है पुद्गल का। इसलिए वो दृष्टांत के रूप में दिया जाता है। लेकिन यहाँ जो है, जो उपयोग है, तो उपयोग क्योंकि परिणमनशील है, प्रतिसमय परिणमन करता है। जो परिणमन करता है उसी में कार्य होता है। और कार्य से ही हम उसके कर्ता (होने) की पहचान करते हैं। इसलिए कार्य, क्योंकि जानने का कार्य उपयोग में होता है तो हम उससे ये जानते हैं कि इसके पीछे जाननेवाला कोई ध्रुव पड़ा है। ऐसा इस तरह से उसे पहचानते हैं।

अब प्रश्न ज्ञान और अज्ञान का (ऐसा) हो सकता है कि ज्ञानदशा में उपयोग की स्थिति (कुछ) और होती है (और) अज्ञान दशा में स्थिति और होती है। लेकिन वो यहाँ नहीं लेना है क्योंकि उपयोग में सदा ही कुछ न कुछ विकासरूप दशा रहती है ज्ञान (की)। ज्ञान कभी भी संपूर्णरूप से आवृत्त नहीं होता, लेकिन कुछ न कुछ विकास उसमें रहता ही है हमेशा। इसलिए उपयोग अनादि-निधन है वैसे देखा जाए तो, प्रवाह की अपेक्षा (से)। और ज्ञान और अज्ञान दशा भले ही हो, अज्ञान दशा भी हो भले ही लेकिन फिर भी वो जानता है। मिथ्या जानता है तो भी जानता है (और) सम्यक् जानता है तो भी जानता है। इसलिए दोनों में जानना जो है वो विराम नहीं पाता। वो समाप्त नहीं होता।

जैसे प्रकाश है न! तो प्रकाश एक तो बिल्कुल श्वेत प्रकाश हो और एक जो है वो किसी को रंगीन चीज को साथ (में) लेकर वो प्रकाश प्रकाशित हो। तो वो रंगीन प्रकाश दिखाई देता है। तो रंगीन होने पर भी हम ये जानते हैं कि प्रकाश है। उसी तरह ज्ञान मिथ्या होने पर भी और पदार्थों को सही नहीं जानने पर भी, स्व-पर का भेद नहीं होने पर भी ये अच्छी तरह जान लिया जाता है कि ये जानना है अर्थात् ज्ञान है अर्थात् उपयोग है। तो इसके पीछे कोई द्रव्य जरूर होना चाहिए और वो (जो) चैतन्य द्रव्य है, वो आत्मा है। इसलिए जानना कभी मिथ्या हो, भले ही! मिथ्या है तो भी जान तो रहा है न वो। माने गलत जाने ये एक अलग बात है, पर जान रहा है - इस बात में कोई आपत्ति कभी नहीं बन सकती। और वो जानना कभी भी समाप्त नहीं होता, इसलिए उससे पहचाना जाता है।

जैसे केवलज्ञान है उससे भगवान सिद्ध पहचाने जाते हैं। केवलज्ञान भी उपयोग है। पाँचों ज्ञान जो हैं मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल उन पाँचों का नाम उपयोग है। वहाँ भी हर जगह

इस ज्ञान से ही आत्मा पहचाना जाता है। वो चाहे गलत जाने (या) वो चाहे सही जाने, पर जानना उसमें बराबर विद्यमान है। इसलिए उससे आत्मा पहचान लिया जाता है और आत्मा का लक्षण है वो। जहाँ जानना पाया जाता है वहीं आत्मा पाया जाता है। इस तरह से आत्मा की स्थिति सिद्ध हो जाती है। आत्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है उपयोग से।

मुमुक्षुः- [43]माने आपने फरमाया अभी कि उपयोग अनादि-अनंत जाननभावरूप, प्रवाहरूप रहता है। तो इसका अर्थ क्या है?

पूज्य बाबूजीः- माने एक के बाद एक पर्याय। वो जो प्रवाह होता है न, एक के बाद एक पर्याय आयत-सामान्य जिसको कहते हैं.... एक के बाद दूसरी, दूसरे के बाद तीसरी इस तरह अनादिकाल से अनंतकाल तक ये पर्याय का प्रवाह चलता ही रहेगा। तो इसलिए जब भी हम पहचानना चाहें आत्मा को तो उसके द्वारा पहचान सकते हैं। क्योंकि इसीलिए आया न कि हर जीव ये जानता है कि मैं जानता हूँ। अब वो सही तो नहीं जानता, मिथ्या जानता है। जगत के अधिकांश प्राणी वो तो मिथ्या ही जानते हैं लेकिन मिथ्या जानने पर भी जानने का अभाव नहीं होता।

जैसे अचेतन है, उसमें जानने का अभाव है, उस तरह यहाँ जानने का अभाव नहीं है। गलत जानता है तो ये जानता तो है न। गलत जानता है तो वो जानना सही भी हो सकता है, वो अलग बात। पर जानने का समाप्त (होता नहीं)। इसलिए हर समय आत्मा उस जाननभाव से, जानन-क्रिया से, जाननकर्म से पहचाना जा सकता है। इसलिए उपयोग ही आत्मा का लक्षण है, ज्ञान ही आत्मा का लक्षण है।

मुमुक्षुः- माने उपयोग भले एक समय में हो, और दूसरे समय ....

पूज्य बाबूजीः- एक समय में ही होता है, एक समयवर्ती ही होता है। दूसरे समय में दूसरे प्रकार का, तो वो तो प्रतिभास अनेक प्रकार के होंगे।

मुमुक्षुः- नहीं सामान्य भाव से उपयोग एक समय का उत्पाद-व्ययरूप होता है। उसमें अनादिपना माने अनादि-अनंतपना जो बताया कि रहता है.....

पूज्य बाबूजीः- अनादि से चला आ रहा है न प्रवाह, एक-एक करके, एक-एक पर्याय करके। एक-एक पर्याय करके ये प्रवाह अनंतकाल तक चलेगा। द्रव्य की तरह नहीं। द्रव्य सामान्य जो है वो तो बिल्कुल एकरूप चलेगा। ये चलेगा न्यारा-न्यारा भिन्न-भिन्न प्रकार का लेकिन चलेगा अवश्य। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, उसमें कभी भी व्यवधान नहीं होगा। माने उपयोग सदा ही आत्मा में उपस्थित रहेगा। इसलिए जो कोई जीव इस उपयोग के द्वारा आत्मा को जानना चाहे तो वो जान सकता है कि मैं जाननेवाला (हूँ)। मैं जानता हूँ इसलिए मैं जाननेवाला हूँ।

43 उपयोग अनादि-अनंत जाननभावरूप, प्रवाहरूप रहता है - इसका अर्थ क्या है? - 9.09 Mins

मुमुक्षु:- और वही पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकपना है।

पूज्य बाबूजी:- वही पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकपना है।

मुमुक्षु:- वो धारावाहिकता रूप है।

पूज्य बाबूजी:- धारावाहिक, धारावाहिक माने एक-एक करके।

मुमुक्षु:- एक-एक करके, बराबर! बराबर।

पूज्य बाबूजी:- द्रव्य का नहीं लेना।

मुमुक्षु:- नहीं! वो तो सही (बात है)।

पूज्य बाबूजी:- जो द्रव्य की धारावाहिकता है वो नहीं लेना, एकरूपता।

मुमुक्षु:- क्रम अनुसार।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अनेकरुपता है ये। अनेकरूपता है तो एक के बाद एक होने से ये भी प्रवाहरूप है, अनंत प्रवाहरूप।

मुमुक्षु:- और सभी पर्यायों में सामान्यरूप से जानना होता ही होता है और वो ही उसका पर्यायार्थिकनय का पारिणामिकभाव है। माने हर एक पर्याय के अंदर जाननभावरूप परिणमन रहता ही है। भले पर्याय बदल जाए, उपयोग बदलता जाए फिर भी जाननभावरूप जो भाव है (वो) हर एक पर्याय में constant (सतत्) अनादि-अनंत रहता है। वही पर्याय का पारिणामिकभाव कहा गया है।

पूज्य बाबूजी:- पारिणामिक माने स्वाभाविक है, उसका निरपेक्ष है।

मुमुक्षु:- जीव द्रव्य की....वर्तमान ज्ञान की पर्याय यदि जीव द्रव्य का लक्षण है, तो अनादि-अनंत क्रमिकरूप से जो विद्यमान है, तो उसको ध्यान के विषय में क्यों नहीं लिया? लक्षण लक्ष्य अलग तो होते नहीं (हैं)।

पूज्य बाबूजी:- होते हैं न, अलग भी होते हैं। अलग भी होते हैं और अभिन्न भी होते हैं। दोनों बातें हैं। लक्षण से लक्ष्य की पहचान करना है, लक्षण पर नहीं चिपटना है न। लक्षण पर नहीं चिपटना है। लक्षण से लक्ष्य की पहचान करके लक्ष्य से चिपट जाना है। लक्षण से चिपटने से क्या होगा? वो तो एक गुण की एक समय की एक पर्याय है। तो वही पर्यायदृष्टि बनी रहेगी अगर लक्षण से चिपकेगा तो। उसे चाहिए न लक्ष्य? उसे (तो) वस्तु चाहिए। तो वस्तु का जो लक्षण है उससे वस्तु को पहचानकर वो वस्तु में केंद्रित हो जाएगा, वस्तु में समाहित हो जाएगा। और ये भी काम उपयोग का ही है कि वो वास्तविक स्थिति को जानकर और वास्तविक जो यथार्थ है चैतन्य, उसके स्वरूप को जानकर और उसका संवेदन कर लेगा।

मुमुक्षु:- [44]जैसे द्रव्य में अनेक गुण हैं। तो गुण के भेद करने से राग उत्पन्न होता है इसलिए गुण-भेद का निषेध किया। लेकिन अनेक गुणों सहित द्रव्य को तो जाने - ऐसा (तो) कहा।

44 गुण-भेद और पर्याय-भेद बिना द्रव्य को जानने का कहा? - 14.28 Mins

पूज्य बाबूजी:- गुण के भेद रूप नहीं, लेकिन गुण का भेद करनेरूप जो विकल्प है मैं ज्ञानरूप हूँ, मैं दर्शनरूप हूँ, मैं चारित्ररूप हूँ, मैं आनंदरूप हूँ इत्यादि। इस प्रकार के जो विकल्प हैं, तो वो जो गुण हैं, वो इस तरह केवल विकल्पमात्र करने लायक नहीं हैं। पर वो तो सारे ही गुण इकट्ठे करके और द्रव्य के साथ उनको मिलाकर केवल एकरूप अनुभव करने लायक है, तब संवेदन असली होता है। सारे गुणों का माने सारे गुणों की पर्यायों का जो अनुभव है, वो तो सब गुणों को इकट्ठा करके एक द्रव्य का निर्णय कर लिया और तब वो अनुभव होता है।

मुमुक्षु:- जैसे गुण-भेद के विकल्प किए बिना द्रव्य को पकड़ना चाहिए, उसी प्रकार से लक्षणरूप पर्याय को भी भेद किए बिना साथ में लिया जाए तो क्या परेशानी है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तो भेद किए बिना लिया है न! क्यों नहीं लिया है? आत्मा उपयोगमय है...... (बस ये) हो गया। आत्मा उपयोगमय है - ये हो गया न, एक साथ हो गया। इनमें जो भेद है, वो भेद कभी अस्त नहीं हो सकता। उपयोग पर्याय है (और) जो द्रव्य है वो त्रैकालिक है और ध्रुव है - ये भेद कभी अस्त नहीं हो सकता। इसलिए जो विवेकी है, ज्ञानवाला है, जिसको वस्तु चाहिए, तो उसको पर्याय को तो छोड़ना ही पड़ेगा। पर्याय का लक्ष और पर्याय से वह जो ममत्व कर रहा है अनादिकाल से, उसको तोड़कर उसे द्रव्य में ममत्व स्थापित करना पड़ेगा तब (ही) उसको कार्य की सिद्धि होगी। क्योंकि उपयोग भी आखिर क्षणिक है। क्षणिक पर्यायों में शामिल हो गया वो। तो जो पर्यायदृष्टि है वो पर्याय को संपूर्ण आत्मा मानती है और आत्मा ऐसा (तो) है नहीं।

मुमुक्षु:- बराबर! जो पर्यायदृष्टि है, वह पर्याय को संपूर्ण आत्मा मानती है और आत्मा वैसा है नहीं।

पूज्य बाबूजी:- आत्मा वैसा नहीं है इसीलिए आत्मा नहीं मिलता है। अशुद्धात्मा की अनुभूति होती है क्योंकि वो मिलाकर अथवा (तो) कुछ घटाकर, इस तरह से आत्मा को मानता है। आत्मा में सुख तो है ही नहीं वर्तमान में, आत्मा में ज्ञान तो है ही नहीं वर्तमान में। हम तो अज्ञानी और दुखी प्राणी हैं - ऐसा जो मानता है उसने आत्मा में से ज्ञान और सुख दोनों को खो दिया। तो एक भी गुण अगर कम हो जाए तो वो तो सारा ही समाप्त हो जाए।

जैसे दीपक में जो प्रकाश है, तो प्रकाश जो है उसके तो अनेक हैं भेद। तो वो गरम भी है, वो जो है वो सफेद भी है। तो हम जो है केवल उसमें से प्रकाश की सफेदी लें लें और बाकी जो है प्रकाश (उस) को नहीं लें, तो वो आ जाएगा? नहीं आएगा। इस तरह आत्मा आता है तो अनंत गुणों को साथ लेकर और उनका एकत्व करके अकेला आता है। वो इस तरह बिखर कर नहीं आता। अनंत गुणात्मक एक (है)।

हम [45]स्वयं व्यवहार करते हैं न इस तरह का कि हमारे पेट में दर्द हो गया। तो हम डॉक्टर को कहते हैं (कि) डॉक्टर साहब! मैं तो बहुत बीमार हो गया। रात को बहुत परेशानी हुई। बड़ी

45 भेद और अभेद का व्यवहार। - 18.07 Mins

मुश्किल से रात बीती। कि क्या हो गया? कि पेट में बहुत दर्द है। तो (अगर) पेट में दर्द है तो पेट बीमार है - ऐसा बोल। तू सारा बीमार है, ऐसा क्यों बोलता है? (तो) कहते हैं (कि) ये पेट मेरे साथ अभेद है इसीलिए मैं बोलता हूँ। लेकिन अभेद भी है (और) भेद भी है क्योंकि पेट ही सारा आदमी नहीं है। उसके अनेक अंग हैं, अनेक अवयव हैं। इसलिए अभेदता भी है और भेद भी है। इन दोनों को छुपाया नहीं जा सकता। अनुभूति जब होती है वो अभेदता में (होती है)।

मुमुक्षु:- अभेद भी है और भेद भी है, वो छुपाया नहीं जा सकता।

पूज्य बाबूजी:- भेद भी है, छुपाया नहीं जा सकता। एक-एक भेद जो है वो द्रव्य के साथ एकमेक है। इसलिए हम एकमेक करके ही बोलते हैं। बीमार तो एक अंग हुआ न! हम अपने को सारा बीमार कहते हैं कि मैं बीमार हूँ। कहीं से भी फोन आएगा तो मैं तो बीमार हूँ। सिर दुखता है, पेट दुखता है, कोई हाथ दुखता है, पैर दुखता है। कुछ भी हुआ (है कि) मैं तो बीमार हूँ - यही बोलता है। तो उसको अभेद करके बोलता है क्योंकि अभेद भी है न वो। एक द्रव्य का (अंश) है इसलिए अभेद भी है। पर भेद भी है क्योंकि वो सारा का सारा पूरा आदमी नहीं है।

उसी तरह एक गुण जो उपयोग है और एक पर्याय, वो सारा का सारा आत्मा नहीं है। उससे तो केवल आत्मा को पहचान कर पूरे आत्मा को हमें उस ज्ञान के द्वारा ग्रहण करना चाहिए। ये उसकी रीति है।

मुमुक्षु:- पर्याय से पूरे आत्मा को जानकर पर्याय...

पूज्य बाबूजी:- उपयोग से, ज्ञान से पूरे आत्मा का स्वरूप जानकर उस आत्मा में समाहित होना चाहिए.... उपयोग में नहीं (आत्मा में)।

मुमुक्षु:- उपयोग में नहीं?

पूज्य बाबूजी:- उपयोग में नहीं। उपयोग में नहीं। उपयोग से तो तुरंत हट जाना चाहिए।

मुमुक्षु:- हट जाना चाहिए, बराबर।

पूज्य बाबूजी:- और तुरंत हटकर मैं तो उपयोगमय चिदात्मा हूँ।

मुमुक्षु:- ये हटना नहीं आता बाबूजी।

पूज्य बाबूजी:- हटना क्यों नहीं आता? हम हट तो गए न। यहाँ हट तो जाते हैं। यहाँ एक अवयव को जो है, वो (उसको) सारा आदमी कहाँ मानते हैं?

मुमुक्षु:- नहीं मानते। वो वहाँ की बात easy (आसान) है।

पूज्य बाबूजी:- तुरंत हट जाता है, द्रव्य की महिमा चाहिए असल में। ऐसे शुष्कज्ञान से काम नहीं चलता। ये तो कोरा ज्ञान है कि द्रव्य का स्वरूप समझ लिया, गुण का (स्वरूप) समझ लिया, पर्याय का समझ लिया और भीतर रस पैदा ही नहीं होता है। विचार करते समय रस पैदा हो तो वो तो भूख होती है, प्यास होती है, तब (सब) पैदा होता है।

मुमुक्षु:- रस कैसे पैदा होता है?

पूज्य बाबूजी:- रस कैसे पैदा होता है? रस पैदा करे तो होता है। रस तो है; आत्मा तो रसीला ही है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पर इसे निचोड़ना नहीं आता। ये मिलावटें करता है तरह-तरह की। जैसे दाल में प्याज और लहसुन की क्या जरूरत है? लेकिन यहाँ अनेक जैनी ऐसे भी हैं जिनका उनके बिना काम (ही) नहीं चलता। उन दोनों का कोई मेल तो नहीं है। तो ऐसे ही ये करता है (कि) पुण्य-पाप को मिलाता है, राग-द्वेष को मिलाता है (और) कर्मों को मिलाता है। किसी को कारण मानता है, किसी को कार्य मानता है इत्यादि-इत्यादि। विविध प्रकार से माने, अनंत प्रकार से (तो) आत्मा का स्वरूप बदलता है। और स्वरूप जबकि एक है, एक ही प्रकार का है।

मुमुक्षु:- अनंत प्रकार से आत्मा का स्वरूप बदल देता है।

पूज्य बाबूजी:- बदल-बदलकर अनुभव करता है। श्रद्धा भी बदल-बदलकर आती है और ज्ञान भी बदल-बदलकर आता है क्योंकि विषय अनेक हैं। जो विषय हैं उनके अनुसार श्रद्धा जो है (वो) उसमें अहम् कर बैठती है। (और) ज्ञान जो है वो उसमें एकत्वरूप अहम् करता है।

मुमुक्षु:- आहा! ज्ञान है उसमें एकत्वरूप अहम् करता है।

पूज्य बाबूजी:- एकत्वरूप अहम् करता है।

मुमुक्षु:- तो भिन्न रहकर ज्ञान उसमें एकत्व नहीं कर पाता?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! नहीं कर पाता। एकत्व करेगा तो भिन्नत्व कैसे करेगा?

मुमुक्षु:- माने राग को जानते समय ज्ञान राग से एकत्व करके अहम् करता है और जानता है?

पूज्य बाबूजी:- राग को अपने में मिला लेता है (माने) मिलाने की कल्पना करता है। यहाँ कल्पना में ही इतना झगड़ा है (कि) कल्पना में अनंत संसार है। मिला तो सकता ही नहीं है क्योंकि कुदरत कैसे मिलने देगी? ये तो कुदरत का संविधान है इसीलिए कुदरत मिलने नहीं देगी। क्योंकि भिन्न-भिन्न जो भाव हैं, विरुद्ध भाव हैं अथवा विपरीत भाव हैं, तो उनको कुदरत कभी मिलने नहीं देगी और मिलते भी नहीं है। किसी की सीमा में अतिक्रमण नहीं होता। Trespass (अतिचार) नहीं होता। और trespass (अतिचार) कोई करने की नियत रखता है तो उसको सजा होती है।

Trespassers will be prosecuted (अतिक्रमणकारियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई होगी)। साफ है, ये तो साफ आता है। पुस्तकों में आता है, पढ़ाया जाता है कि जहाँ लिखा हो कि No Admission (प्रवेश निषेध), वहाँ पर trespass (अतिचार) करने का ज्यादा मन होता है कि यहाँ कुछ न कुछ होगा जरूर। देखें (तो सही)! वहाँ ऊँचा मुँह कर-करके ऊँचे पैर कर-करके झाँकता है। Prosecution होता है। यहाँ लिखा है देखा नहीं तुमने?

इस तरह हर पदार्थ के सामने No Admission (प्रवेश निषेध) का बोर्ड (लगा हुआ) है। अब इसका ज्ञान अँधा हो गया तो क्या करें? अथवा देखता भी है तो नियत खराब है (इसकी)। नियत खोटी है इसलिए trespass करने का मन करता है।

मुमुक्षुः- ज्ञान तो देख ही रहा है। अँधा कहाँ हुआ?

पूज्य बाबूजीः- नहीं! देख रहा है, तो इस तरह देख रहा है कि यह मेरा है; मेरा है। खाली देखना नहीं है ज्ञान का काम। (वो) मैं मानकर या मेरा मानकर देखता है। इसी तरह श्रद्धा भी मैं मानकर प्रतीति करती है हमेशा। ज्ञान का काम केवल जानना-जानना-जानना (ही है) - ऐसा नहीं। स्व-पर के विभागपूर्वक जानना, उसका नाम ज्ञान (है)। (क्योंकि) स्व-पर का विभाग है विश्व में। तो ज्ञान को कैसा जानना चाहिए? कि जो स्व है वो तो मैं हूँ और वही उपादेय है। क्योंकि और अन्य कोई शरण देनेवाला अथवा अन्य कोई मेरी रक्षा करनेवाला वो हो ही नहीं सकता है जगत में। और मुझे रक्षा की जरूरत है नहीं (है) क्योंकि मैं संपूर्ण हूँ। इसलिए मुझे जरूरत नहीं है किसी की शरण की। तो ऐसा विभाग जानकर अन्य की तरह मैं भी संपूर्ण हूँ - इस तरह आत्मा का आश्रय ले लेता है (और) आत्मस्थ हो जाता है।

जो परमपारिणामिक है वो पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है, वो द्रव्यार्थिकनय का विषय है। मैं शुद्ध परमपारिणामिकभाव स्वरूप हूँ ये द्रव्यार्थिकनय हुआ, सविकल्प। और जिस समय अनुभूति हुई तो उस समय द्रव्यार्थिकनय भी गायब। सारी भाषा ही गायब, सारा वचन गायब।

मुमुक्षुः- जिस समय अनुभूति हुई, सब द्रव्यार्थिकनय गायब।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! सब द्रव्यार्थिकनय गायब। द्रव्यार्थिकनय क्या करेगा? वहाँ तो मैं हूँ - बस ऐसा सीधा बोलता है। सब बाहर रह जाता है, सब एक ओर रह जाता है। जिस समय आत्मा को चिद्रूप मानकर, चिन्मात्र मानकर यह अनुभूति करता है, उस समय अनुभूति भी परे हो जाती है तो फिर और की क्या बात? अनुभूति भी एक ओर हो जाती है। मैं आगे चलने लायक नहीं हूँ। मैं तुम्हारे भीतर मिलने लायक नहीं हूँ क्योंकि मैं अनित्य (हूँ और) तुम नित्य, (तो) कैसे मिलेगा हिसाब? हिसाब कैसे मिलेगा?

मुमुक्षुः- मतलब ये जानना कभी छूटेगा नहीं, वो धारावाहिकता हर समय है। कैसे जानना (है) वो बात अलग है....

पूज्य बाबूजीः- एक-एक करके धारा....धारावाहिक शब्द का अर्थ करें तो एक-एक करके। एक-एक करके धारावाहिक है, अनादि-अनंत। और वो कभी ढँकेगा नहीं पूरा। वो उसका विकास जो है वो कभी भी पूरा नहीं ढँक जाएगा। कुछ न कुछ विकास ज्ञान में रहेगा ही सही, इसलिए उस ज्ञान से सदा ही आत्मा अपने को पहचानता है और ज्ञान में विकास अधिक हो तो पर को भी पहचानता है।

मुमुक्षुः- निगोद में भी?

पूज्य बाबूजी:- निगोद में भी है। निगोद में भी यही है। निगोद में इतना दुख है जन्म और मृत्यु का, तो उसको अनुभव होता है? (ज्ञान) थोड़ा सा है लेकिन दुख का अनुभव करने के लिए कितना सा ज्ञान चाहिए? और सुख का अनुभव करने के लिए कितना सा ज्ञान चाहिए? उतना ही तो चाहिए, और क्या? जो दुख का अनुभव कर रहा है, उसमें सुख का अनुभव करने की (भी) गुंजाइश है। अच्छा! कौन से कॉलेज में पढ़े कि उसको बुखार का अनुभव हो जाए? अथवा मौत का अनुभव हो जाए? तो जब बिना पढ़ा-लिखा आदमी मर रहा हो तो शायद उसे दुख नहीं होता होगा क्योंकि कॉलेज में नहीं पढ़ा (है) वो। वही दुख होगा जो कॉलेज में पढ़े हुए को होता। जरा (भी) फर्क नहीं। थोड़ा ज्ञान है तो भी बहुत अधिक दुखी है और वो जानता है कि मैं दुखी हूँ। बस! इतना जानता है। परंतु इसके पीछे जो सुख की सरिता, सुख का सरोवर पड़ा है, उसको नहीं जानता। क्योंकि उसमें ताकत नहीं है ज्ञान में।

मुमुक्षु:- पर इतना तो जान लेता है कि मैं दुखी हूँ। दुख का अनुभव तो कर ही लेगा।

पूज्य बाबूजी:- दुखी हूँ। दुखी हूँ, ये देह मेरी है, ये मैं हूँ - ऐसा। यही मैं हूँ। तो वो ही तो दुख का आधार है उसका। वो जाता है तो तुरंत उसको प्रचंड आकुलता होती है। और एक श्वास में १८ बार जाता है (और) १८ बार आता है; और वही शरीर, एक ही और अनंत जीवों का एक। कहाँ बटवारा करे? बार-बार एक ही मिलता है। अनंत बार एक ही शरीर! लेकिन इसको विश्वास नहीं (होता) कि वो दोबारा मिलनेवाला है। उसको तो ये है कि यह वर्तमान में जो है वो मैं हूँ। वो मैं हूँ, उतना। तो वो छूटा, उससे अलग हुआ और कष्ट, अनंत कष्ट ....अनंत कष्ट का कारण ही पर्यायदृष्टि है। पर्याय का ममत्व वो अनंत कष्ट है। वो (अर्थात् पर्याय) अपनी है, आत्मा की है, ये लिहाज बिल्कुल नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो हमें निभा नहीं सकती और जिसमें ममत्व करने से हमें केवल आकुलता ही आकुलता होती है तो उसका लिहाज क्या करें? हम उसको घर से थोड़ी (ना) निकाल रहे हैं लेकिन हम उसका अवलंबन नहीं लेते (हैं), बस। इतनी तो बात है और क्या है? हम उसे घर से निकाल रहे हों, एक ओर कर रहे हों, बाहर फेंक रहे हों तब तो द्वेष है। लेकिन पर्याय वहीं रहनेवाली है, हमें (बस) ममत्व नहीं करना है क्योंकि वो इस लायक नहीं है। ममत्व के लायक नहीं है पर्याय, इसलिए ममत्व नहीं करेंगे।

एक वर्ष का बालक है वो क्या कमाकर खिलाएगा? उससे क्या ममत्व किया जाए, एक वर्ष के (बालक से)? एक वर्ष है वो कोई ममत्व के लायक है कि मुझे कमाकर खिला देगा? इसलिए पर्याय से क्या आशा करें? इसलिए पर्याय के प्रति घृणा नहीं पैदा होना चाहिए। अति राग पैदा नहीं होना चाहिए, द्वेष पैदा नहीं होना चाहिए। लेकिन पर्याय है मेरी, मेरा अवयव है। पर मेरा अवयव होने पर भी मैं इसका अवलंबन लूँ तो मैं गिर पड़ता हूँ। चोट लगती है (और) accident (दुर्घटना) होता है। तो मैं क्यों लूँ इसका अवलंबन? इसका अवलंबन क्यों लूँ?

पैरों से चला जाता है, इसके स्थान पर एक आदमी कभी पागल हो जाए और वो तो माथे से चले, तो क्या होगा? ऐसा विपरीत करे कि पैर तो ऊँचे कर ले और माथे से चले तो accident (एक्सीडेंट) होगा ही होगा। भले सिर तो उसी का है लेकिन सिर ऐसा है कि सिर का अगर अवलंबन ले तो तेरा accident होता है (जिससे) मरेगा तू, हाथ पैर टूटेंगे तेरे।

इसी तरह पर्याय मेरी है इसमें संदेह नहीं है। लेकिन पर्याय का जो अवलंबन है, वो मूर्खता है। वो विवेक-शून्यता है।

मुमुक्षु:- बराबर! हम तो जानते थे कि पर का ममत्व विवेक-शून्यता है। आप तो बता रहे हैं कि पर्याय का ममत्व विवेक-शून्यता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! पर्याय का। पर में भी हम पर्याय में ही मोहित होते हैं, ज्यादातर। अगर उसको ध्रुव मान ले तो फिर क्या होगा? ध्रुव में कोई क्रिया होती ही नहीं है, खत्म हो गया। हम तो क्रिया से ममत्व करते हैं न! पुद्गल में भी, धर्म में भी, अधर्म में भी, सबमें क्रिया से ममत्व करते हैं इसलिए पर्यायदृष्टि रहती है। अगर सबको ध्रुव देख लिया जाए, ध्रुव मान लिया जाए तो ममत्व ही नहीं रहेगा।

आता है आगम में कि मैं अपनी तरह ही ये पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल (इन) सभी द्रव्यों को ध्रुवद्रव्य के रूप में देखता हूँ। तो क्या पर्याय नहीं होती है इनमें? पर्याय होती है, पर पर्याय का क्या है? ये पर्याय का आत्मा (अर्थात् प्राण) ही द्रव्य है। गुणों का आत्मा (अर्थात् प्राण) भी द्रव्य है।

मुमुक्षु:- पर्याय का आत्मा द्रव्य कैसे है?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय का आत्मा (अर्थात् प्राण) द्रव्य है, गुणों का आत्मा (अर्थात् प्राण) द्रव्य है। द्रव्य है तो ये सब हैं।

मुमुक्षु:- तो ही परिणमन है वरना क्या हो?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! इस तरह एकत्व करता है। इस तरह एकत्व कर लेता है। एक करके और उसमें समाहित हो जाता है, केंद्रित हो जाता है तो अनुभूति हो जाती है।

भाई! प्रश्न होता है न कि पर्याय भी मेरी है, गुण भी मेरे हैं, तो इनका विचार करूँ तो क्यों आपत्ति करते हैं आचार्य? पर्याय मेरी है तो आचार्य क्यों आपत्ति करते हैं? कि तेरी है पर आपत्ति इसीलिए करते हैं कि इसमें तेरा दर्द बढ़ता है। तेरा कष्ट बढ़ता है इसमें इसलिए आपत्ति करते हैं। और तुझे ही निहाल होना है अंत में। उनको तो निहाल होना नहीं है। वो तो निहाल ही पड़े हैं। द्रव्य और गुण तो निहाल पड़े हैं। निहाल तेरे को ही होना है। इसलिए तेरे भले के लिए, तेरे कल्याण के लिए ये मंगल मार्ग बताते हैं।

मुमुक्षु:- माने पर्याय की भलाई के लिए पर्याय में से ममत्व पर्याय को ही निकालना है, वो ही मार्ग बताया गया है।

पूज्य बाबूजी:- वो ही मार्ग बताया जा रहा है। इसके साथ ममत्व मत कर; उसको रहने दे जहाँ है, वहाँ।

उत्पाद-व्यय वो उपयोग, वही उपयोग जिसकी अपन चर्चा कर रहे हैं। जो उपयोग है, वो द्रव्य बन जाएगा। मैं ज्ञायक हूँ, बस। मैं चिद्रूप हूँ, चिन्मात्र हूँ।

मुमुक्षुः- माने मैं-पने से द्रव्य बनता है?

पूज्य बाबूजी:- मैं-पने से होता है।

मुमुक्षुः- धर्म से नहीं? उत्पाद-व्ययरूप धर्म से नहीं?

पूज्य बाबूजी:- द्रव्य-गुण-पर्याय को समेटें कैसे? कहते हैं गुण और पर्याय इन दोनों का आत्मा (अर्थात् प्राण) द्रव्य ही है। द्रव्य मूल सत्ता है जगत में। द्रव्य मूल सत्ता है इसीलिए दोनों को उसी में उड़ेल दो। तो उसी में उड़ेल दो दोनों को और केवल एक द्रव्य को देखो। इनका आत्मा द्रव्य ही है - ऐसा जाना तो इन पर दृष्टि नहीं रही, ये अदृश्य हो गए। ये अदृश्य हो गए और आत्मा दृश्यमान हो गया।

जब[46] ये आते हैं न, इस तरह के वचन आते हैं तो उनमें भ्रम में पड़ते हैं कि यहाँ तो पर्याय को बताया है। पर्याय द्रव्य में प्रलीन हो जाती है, वो प्रलीन का अर्थ ही गलत करते हैं। प्रलीन हो जाती है माने वो उसमें डूब जाती है लेकिन रहती है उसमें (ही)। ये अर्थ ही गलत होता है (उसका)। प्रलीन हो जाती है मतलब वो दिखाई नहीं देती है। बस! लहर जो है वो समुद्र में प्रलीन हो गई। क्या अर्थ है उसका? ज़रा बताओ वो लहर कहाँ है? उसका नाम प्रलीनता है।

मुमुक्षुः- विशेषरुप से लीन हो गई तो दिखती ही नहीं।

पूज्य बाबूजी:- परद्रव्य के संपर्क का अभाव होने से और पर्यायें द्रव्य में प्रलीन हो जाने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! आहा!

पूज्य बाबूजी:- परद्रव्य के संपर्क का अभाव होने से और पर्याय द्रव्य में प्रलीन हो जाने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है, इसलिए शुद्ध द्वारा अनुभव करो।

मुमुक्षुः- वो निर्णय भी खुद पर्याय खुद ही करती है न कि मैं यह हूँ....

पूज्य बाबूजी:- स्वयं निर्णय करती है।

मुमुक्षुः- स्वयं निर्णय करती है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! स्वयं अपने को अदृश्य करके, अपने को अदृश्य करके। मैं भी तो हूँ - ऐसा नहीं।

मुमुक्षुः- वाह रे वाह! बराबर! मैं तो कुछ नहीं - ऐसा भी नहीं.... मैं तो द्रव्य हूँ।

मुमुक्षुः- पर्याय का आत्मा (अर्थात् प्राण) और गुण का आत्मा (अर्थात् प्राण) ....

46 पर्याय द्रव्य में प्रलीन हो जाती है - इसका अर्थ क्या है? - 35.43 Mins

पूज्य बाबूजी:- .... वही होता है। यहाँ पर जो पत्नी है वो अपने को तो अदृश्य कर देती है। बोली (कि) मेरे जीवन तो आप हो। मेरा कौनसा जीवन है? कि मेरे जीवन ही आप हो। जीवन-धन ही आप हो। बस, हो गई अदृश्य।

मुमुक्षु:- अर्पणता।

पूज्य बाबूजी:- समर्पण हो गया, समर्पण की पराकाष्ठा हो गई।

मुमुक्षु:- बराबर! समर्पण की पराकाष्ठा! थोड़ा और खुलासा करिए न, प्रलीन जो कह रहे हैं ...

पूज्य बाबूजी:- हाँ! प्रलीन ही है, अदृश्य हो जाना। अदृश्य हो जाना उसका नाम प्रलीन है।

मुमुक्षु:- और डूबने में और प्रलीन में क्या फर्क है?

पूज्य बाबूजी:- डूब गई माने वो भी अदृश्य हो गई। वो भी अदृश्य हो गई। व्यय हो गया न!

मुमुक्षु:- पर्यायत्व नहीं रहा, द्रव्य हो गई। वो प्रलीन हुई पर्याय द्रव्य में अलगरूप से रहती है या..?

पूज्य बाबूजी:- नहीं! नहीं! प्रलीन माने नष्ट हो गई।

हर पर्याय एक-एक करके इसी तरह प्रलीन होती रहती है, अनादि-अनंत। एक पर्याय आई और प्रलीन हो गई, द्रव्य में प्रलीन हो गई। प्रलीन हो गई मतलब (अब) नहीं रही अब। लीनता तो उसी को कहते हैं न! असली लीनता कहाँ होगी? जहाँ पर बिल्कुल दो एक (ही) दिखाई दें, वहाँ लीनता होगी। लीनता में अगर दो रहें तो लीनता कहाँ होगी? वो तो फिर अपने अस्तित्व (का) भी अनुभव करेगा। लीन होनेवाला अपने अस्तित्व का अनुभव करना छोड़कर और उसके अस्तित्व का अनुभव करे तो लीनता कहलाती है, तो समर्पण कहलाता है। इसीलिए द्वैत नहीं रहता। दो होने पर भी द्वैत नहीं रहता, अद्वैत हो जाता है।

मुमुक्षु:- दो होने पर भी (द्वैत नहीं रहता)। एक सर्वोपरी सत्ता दिखती है।

पूज्य बाबूजी:- एक सर्वोपरी वही सत्ता दिखाई देती है, दो होने पर भी। माने दो हैं तो कोई एकमेक नहीं हो जाते। पर दो होने पर भी स्थिति ऐसी होती है कि बिल्कुल एक होते हैं, एक हो जाते हैं। एक की अनुभूति हो जाती है (क्योंकि) जो पर्याय है, वो भी द्रव्य के स्वर में बोलने लगती है।

अनुभूति का लक्षण ही यही है। अनुभूति स्वयं अनुभूति नहीं रहकर और वो द्रव्यमय हो जाती है। द्रव्य ही बन जाती है।

द्रव्य ही बन जाती है। द्रव्य ही बन जाती है नहीं, द्रव्य बन जाती है। 'द्रव्य ही' कहते हैं तो भी कोई दिक्कत नहीं है। अपने पास तो angle (अनेकांत का दृष्टिकोण) है, इसीलिए कोई दिक्कत नहीं है। 'ही' कहने से तो और अच्छा जोर पड़ता है। ज़ोर पड़ता है, पर्यायदृष्टि छूटती है।

मुमुक्षुः- माने पर्याय को नहीं छोड़ना (है), पर्यायदृष्टि को छोड़ना है।

पूज्य बाबूजीः- पर्याय को नहीं छोड़ना है। पर्याय को कहाँ.... छोड़ने से क्या? छोड़ने से छूट जाएगी वो? एक समय की पर्याय को तो अपन छोड़कर देखें। एक समय की पर्याय महादुखमय है। इसको जल्दी चलती कर दें, pass on कर दें जल्दी, एक समय से पहले। (तो) होगा ही नहीं। वो अपना पूरा जीवन (जियेगी)।

मुमुक्षुः- तो ऐसा क्यों नहीं कह रहे कि दोनों की जाति एक हो गई? अगर ये कहें तो क्या फर्क है?

पूज्य बाबूजीः- जाति में फर्क कौनसा था? पर्याय भी चेतन थी और द्रव्य भी चेतन था। जाति में कौनसा फर्क था? ये तो उसके मानने में अनेक प्रकारता थी, उसके मानने में।

मुमुक्षुः- जो कम-ज्यादा थी, वो खत्म हो गई। जो कम-ज्यादापना था या विपरीतपना था, वो खत्म हो गया और दोनों की जाति एक हो गई - ऐसा कह रहे हैं।

पूज्य बाबूजीः- वो जब द्रव्य बन गया तो फिर कमी कौनसी रह गई पर्याय में? जब पर्याय अपने को द्रव्य स्वीकार करने लगी तो फिर कमी कौनसी रही? द्रव्य तो पराकाष्ठा है न! उसमें कमी कौनसी रही? अंतिम हो गया।

मुमुक्षुः- जो अद्वैत होता है, वो एकांतरूप है या अनेकांतरूप है?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! अपना अद्वैत अनेकांतरूप है। (और) वो एकांत है। जो अद्वैतवाद है वो एकांत है। वो एकांत है। वो पर्याय को स्वीकार नहीं करता, लेकिन वो तो अनेक झगड़े हैं। कल्पित में क्या विचार करना? कल्पनाओं का (तो) संसार जैसे (होता है, वैसे) वो दर्शन भी सब उसी तरह के हैं।

मुमुक्षुः- एक छोटा सा प्रश्न है (कि) शुक्लध्यान तो शुद्धोपयोग की भूमिका में होता है। फिर उसका विषय द्वादशांग और परमाणु किस प्रकार है?

पूज्य बाबूजीः- शुक्लध्यान का विषय तो वास्तव में आत्मा ही है, शुद्धात्मा ही है। लेकिन वहाँ पर जो ज्ञप्ति-क्रिया है उसमें इस प्रकार का माना गया है। वो बात सारी केवलीगम्य कही जाती है कि सचमुच तो उसकी (जो) दृष्टि है, उसका जो उपयोग है वो तो आत्मलीन ही रहता है। लेकिन कुछ ऐसा भी होता है कि बीच-बीच में मन-वचन-काय का जो योग है, उनके अवलंबन से कोई न कोई योग प्रवर्तित होता है, कोई-कोई जो है गुण परिवर्तित होता है अथवा पर्याय प्रवर्तित होती है, तो उनको भी जान लेता है। इस तरह की वहाँ प्रक्रिया बताई है। लेकिन वो केवलज्ञानगम्य है इसलिए उसमें अपने को ज्यादा उहापोह नहीं करना चाहिए। उसमें सिर्फ मानना ये चाहिए कि

शुक्लध्यान तो प्रचंड शुद्धोपयोग है। प्रचंड शुद्धोपयोग है। उसमें कर्मों के जत्थे के जत्थे टूटते हुए, खिरते हुए (जाते हैं) और इधर शुद्धता की वृद्धि वो बहुत त्वरत् ही (त्वरा से) होती है, जल्दी होती है। तो अन्य भी उस समय (खिरते हैं) उसे संक्रांति कहते हैं - अर्थ संक्रांति, योग संक्रांति इत्यादि-इत्यादि। ये संक्रांति कहते हैं उसे। संक्रांति माने परिणमन, एक से दूसरे पर जाना। लेकिन मुख्यरूप से उपयोग जो है वो शुद्धात्मा पर ही रहता है।

तो इतना ही अपने को रखना कि उपयोग तो शुक्लध्यान में शुद्धात्मा पर ही रहता है और उसी से सारे भावकर्म और द्रव्यकर्म का क्षय हो जाता है, घातिया का।

ऐसा है न, जैसे अपन लौकिक उदाहरण लें कि एक व्यक्ति कार चलाता है। तो कार का एक लक्ष होता है। तो कार में भी इतनी विलक्षणता है माने कोई भी वाहन हो उसमें विलक्षणता इतनी है कि जो चलनेवाले जो अवयव हैं, उनको नहीं देखा जाता। उनकी ओर नहीं देखा जाता। लेकिन जो नहीं चलनेवाला अवयव स्थिर (कि) जहाँ हम जाना चाहते हैं, उसकी ओर दृष्टि रहती है तो ये अपने आप चलते हैं। ब्रेक अपने आप चलता है। पहिए अपने आप चलते हैं, steering (स्टीयरिंग) अपने आप चलता है। अब अगर ये ऐसा ना करके कि मुझे चलाना तो गाड़ी है और वो स्टीयरिंग से चलती है, self (सेल्फ) से चलती है, तो इन (अवयवों) की ओर देखने लग जाए तो तुरंत accident (दुर्घटना) हो जाएगा। इसलिए पर्यायदृष्टि छोड़ने लायक है। यह तो पर्यायदृष्टि की बात हुई।

अब अपना जो विषय शुक्लध्यान का है, उसमें ये है कि वो सामने झाँकता है। वो इनको नहीं देखता है, तो वो गाड़ी जो है (वो) व्यवस्थित चलती है। और सामने झाँकता है तो सामने झाँकते हुए ऐसा होता है वो चतुर ड्राइवर कि, वो इधर-उधर भी देख लेता है (और) फिर सीधा हो जाता है ज़रा सा। तो accident (दुर्घटना) नहीं होता है। तो इसी तरह ही ये शुक्लध्यानवाला (है)। इसको वो संक्रांति भी हो जाती है और .....।

मुमुक्षुः- उसका ड्राइवर चतुर है।

पूज्य बाबूजीः- चतुर है। बहुत चतुर है वो।

मुमुक्षुः- तो इसी प्रकार द्वादशांग और परमाणु उसके विषय बन जाते हैं। ताकि इधर-उधर देखे (तो) भी, परप्रकाशक धर्म की ओर देखे भी तो तकलीफ नहीं होती।

पूज्य बाबूजीः- नहीं होती (है)।

मुमुक्षुः- ये कहना है। यहाँ ये स्वपरप्रकाशक की ओर से भी प्रश्न किया गया है क्या? क्योंकि शुक्लध्यान तो शुद्धोपयोग ....।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न! आ गया उसमें, अन्य भी आ गया। अन्य भी आ गया - अर्थ व्यंजन और योग संक्रांति। गाथा है वो।

मुमुक्षु:- शुद्धोपयोग के काल में तीव्र शुद्धोपयोग, इतने ताकतवर शुद्धोपयोग के काल में परप्रकाशक (होकर) द्वादशांग कैसे विषय बन सकता है? तो स्व और पर दोनों ही बात ..... हैं।

पूज्य बाबूजी:- बस, स्व और पर! द्वादशांग क्या विषय बनता है? उसका कोई, कोई भी प्रकरण याद आ जाए तो वो विषय बन जाता है। जैसे सूत्र याद आ जाए (तो) मन-वचन-काया के अवलंबन से वो तुरंत प्रवर्तित होकर फिर शुद्धात्मा पर ही (केंद्रित होता है)।

मुमुक्षु:- फिर भी वो चालाक ड्राइवर की तरह ही रहता है।

पूज्य बाबूजी:- चतुर ड्राइवर, चालाक नहीं चतुर।

मुमुक्षु:- चतुर और चालाक में अंतर है।

बाबूजी! [47]एक छोटा सा प्रश्न है कि जाननभावरूप मतलब जानना। जानना-जानना, जानना-जानना। तो यहाँ जानना का अर्थ क्या लेना?

पूज्य बाबूजी:- स्व-पर विभाग को लेकर हेय-उपादेयरूप से जानना।

मुमुक्षु:- जानने का अर्थ ये किया कि स्व-पर के विभाग (पूर्वक)।

पूज्य बाबूजी:- स्व-पर का विभाग है (इस) विश्व में। तो स्व-पर विभागरूप ही जानना वो सम्यग्ज्ञान है। और जो स्व-पर के अविभागरूप जानता है, स्व-पर का विभाग नहीं करता है वो अज्ञान है, मिथ्याज्ञान है। बस इतना है। पर जानता वो उपादेयबुद्धि से ही है सदा, हमेशा। श्रद्धा भी हमेशा उपादेयता में परिणमन करती है, अहम् भावरूप और ज्ञान भी हमेशा अहम् भावरूप जानता हुआ (ही) परिणमन करता है। कोई भी, कोई भी पदार्थ उसका विषय हो अज्ञान दशा में, तो "ये मैं हूँ आत्मा, (ये) मेरा है, मेरा है" (इस प्रकार) उसका ज्ञान का स्वर भी ये हो जाता है "मेरा है, मैं हूँ"। श्रद्धा का केवल एक ही स्वर है (कि) "मैं हूँ"।

मुमुक्षु:- ज्ञान का स्वर ये होता है कि "मेरा है, मैं हूँ"।

पूज्य बाबूजी:- "मैं हूँ" - उसमें ममकार भी हो जाता है। श्रद्धा में ममकार नहीं होता है, अहंकार होता है पहले।

मुमुक्षु:- आहाहा! श्रद्धा में अहंकार होता है, अहम् होता है।

पूज्य बाबूजी:- और ज्ञान में भी अहम् होता है, श्रद्धा में भी अहम् होता है। लेकिन ज्ञान में ममरूप भी हो जाता है। ममकार भी हो जाता है। हैं दोनों मिथ्याज्ञान। और शुद्ध स्वरूप पर अहंकार हो तो उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान।

मुमुक्षु:- यहाँ अहंकार का अर्थ अभिमान तो नहीं कहा गया (है)?

पूज्य बाबूजी:- अहम् माने अपनापन, उसको आत्मा मानना। अहमियत, अहमियत - अपना मानना।

47 जाननभाव में जानन का अर्थ क्या लेना? - 48.02 Mins

मुमुक्षु:- अहम् (अर्थात्) हूँ-पना। जानना-जानना बोलते तो हैं लेकिन जानने का वास्तविक अर्थ (क्या है)?

पूज्य बाबूजी:- जानने का वास्तविक ये कि जो विश्व का जो विभाग है स्व और पर का, बस उसको जानते हुए जाने तो वो ज्ञान सम्यक् (है)। और उसको जानते हुए जब जानता है, तो जो पर का विभाग है वो छूट जाता है। वो इसलिए छूट जाता है कि ये तो पराया है, इसमें मेरा क्या है? इस तरह छूटकर वो स्व पर चला जाता है। वो जानने का अर्थ ये (है कि) स्व-पर के विभागपूर्वक ही जानने का अर्थ है ये। स्व-पर का विभाग जानकर स्व-पर के विभागरूप विकल्प नहीं बढ़ाना कि "ये पर है, ये मैं हूँ", "ये पर है, ये मैं हूँ"। पर पर को तुरंत छोड़ देना। उधर से झाँकना (ही) बंद कर देना और अपनी सत्ता की ओर झाँकने लगना।

मुमुक्षु:- [48]श्रद्धा की एक पर्याय जिस समय एक विषय से ममत्वशील है, उसी समय वो संपूर्ण विश्व के साथ कैसे ममत्व करती है?

पूज्य बाबूजी:- संपूर्ण विश्व में हो गया (न)! जिसने एक के साथ ममत्व किया तो किसके साथ ममत्वशील नहीं है वो? सबके साथ (है)। पर में जो गई और पर में किसी एक के साथ भी जिसने ममत्व कर लिया, तो वो सबके प्रति ममत्वशील है - ऐसा नियम है ये। नियम है।

जैसे एक व्यक्ति की चोरवृत्ती है। तो वो एक रात में केवल एक जगह (पर) चोरी करता है। लेकिन ये बताइए कि वो सारे विश्व में किस जगह चोरी नहीं करेगा? आज इस समय, इस समय उसका जो भाव है, वो भाव कितना है माने? उस भाव से वो केवल एक ही जगह चोरी कर पाएगा लेकिन भाव (तो) ऐसा है कि संपूर्ण विश्व की चोरी करे। संपूर्ण विश्व को लूट ले, अपना बना ले।

तो ऐसे ही श्रद्धा का है कि श्रद्धा जो है वो जो विषय उसके सामने होता है वो उसी में अहमियत करती है, उसी में अहम् करती है। लेकिन भाव ये कि वो संपूर्ण लोकालोक में अहम् करती है। भाव इतना गहरा है।

मुमुक्षु:- भाव अर्थात् शक्ति?

पूज्य बाबूजी:- भाव माने वो पर्याय का भाव, शक्ति नहीं। शक्ति तो बहुत शुद्ध होती है। ये तो ... है बिल्कुल। पर्याय शक्ति, पर्याय शक्ति भी ऐसी (है)। पर्याय शक्ति इतनी नहीं (है) कि वो केवल एक ही जगह चोरी करे। उसका मन तो यह है कि मैं अभी इसी समय सारे विश्व में (चोरी) कर लूँ। इस तरह सारे ही विश्व को मैं अपने में ले लूँ, अपना बना लूँ - ये भाव है उसका मिथ्यादृष्टि का। इसलिए तो निगोद जाता है। और सजा क्यों होती है इतनी? ये ही अनंतानुबंधी का गहरा भाव है, गहरा राग-द्वेष।

48 श्रद्धा की एक पर्याय जिस समय एक विषय से ममत्वशील है, उसी समय वो संपूर्ण विश्व के साथ कैसे ममत्व करती है? - 51.08 Mins

मुमुक्षु:- उस समय का भाव तो वही एक है कि जगत को हड़प कर लूँ।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! पूरे जगत को।

मुमुक्षु:- पर में किसी एक को हड़प करने की भावना हुई तो समस्त विश्व को हड़प करने की भावना है।

पूज्य बाबूजी:- संपूर्ण विश्व को हड़प लेने की (भावना है)। एक ठग है तो वो किसे नहीं ठगेगा? उस समय उसका जो भाव है वो इतना दूषित है, घनत्वरूप, इतना (ही) दूषित है। लेकिन वो कर नहीं पाता है।

मुमुक्षु:- दूषित है, घनत्वरूप। बहुत सुंदर! अद्भुत!

परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

<u>जिनवाणी-स्तुति</u>

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १८, तारीख ११-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:- [49]समयसार गाथा ११ में पूज्य गुरुदेव जैनदर्शन का प्राण कहते हैं। उसमें शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्य कहा है। तो कृपा करके विषय समझाने का निवेदन है।

पूज्य बाबूजी:- समयसार की ११वीं गाथा सम्यग्दर्शन की गाथा है। उसके दूसरे चरण में ये बात बहुत स्पष्ट है (कि) भूतार्थ के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। अब व्यवहार को अभूतार्थ कहा। व्यवहारनय अभूतार्थ है, असत्यार्थ है (और) अविद्यमान अर्थ को ग्रहण करता है। भूतार्थ माने जो शुद्धनय है, उस सत्य अर्थ को.... सत्य माने जो शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है आत्मा का, उसको प्रगट करता है, (उसको) बताता है (और) उसकी अनुभूति करता हुआ उदित होता है। उसमें भूतार्थ का अर्थ है कि विद्यमान वस्तु क्योंकि व्यवहार का विषय बताया अविद्यमान (और) असत्यार्थ।

विद्यमान वस्तु (अर्थात्) सम्यग्दर्शन की ओर से देखा जाए तो जगत में केवल एकमात्र आत्मा की ही सत्ता है, सम्यग्दर्शन की ओर से। (और) ज्ञान उसके साथ है। ज्ञान स्व और पर दोनों का विभाग कर चुका है। और विभाग करके वह भी आत्मस्थ होकर आत्मा की अनुभूति कर चुका है, शुद्धनय में। उसी के साथ सम्यग्दर्शन का जन्म हुआ तो वह भी उस ध्रुव शुद्धात्मा का अवलंबन लेता हुआ, उसमें अहम् करता हुआ प्रगट होता है। तो ज्ञान का विषय स्व-पर विभागरूप सारा लोकलोक है। लेकिन श्रद्धा का जो विषय है.... मिथ्यादर्शन की बात को छोड़ें क्योंकि मिथ्यादर्शन में तो शुद्धात्मा के अतिरिक्त सारा ही जगत एक-एक करके मिथ्यादर्शन का विषय अहम् रूप में बनता है।

अब जब सम्यग्दर्शन हुआ (तो) सम्यग्दर्शन जानन-क्रिया नहीं करता। इसलिए सम्यग्दर्शन केवल उस ध्रुव शुद्धात्मा में ही अहम् करता हुआ प्रगट होता है। भूतार्थ का अर्थ (कि) 'भूत है जो अर्थ'। सत्ता स्वरूप विद्यमान है जो पदार्थ, उसका नाम भूतार्थ (है)। सम्यग्दर्शन के लिए जगत में एकमात्र शुद्धात्मा ही सत्ता है। अन्य किसी की सत्ता सम्यग्दर्शन के लिए नहीं है। सम्यग्दर्शन में अगर शुद्धात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई विषय बने..... तो क्योंकि सम्यग्दर्शन की प्रकृति अहम् करने की होती है। उसके अतिरिक्त उसकी कोई दूसरी क्रिया नहीं होती (है)। मात्र अहम् - वह उसकी प्रवृत्ति होती है। इसलिए सम्यग्दर्शन हो जाने पर और शुद्धात्मा में यही मैं हूँ - इस तरह

49 समयसार गाथा ११ की चर्चा। - 0.15 Mins

ज्ञायक चिन्मात्र का अहम् जागृत हो जाने पर यदि दूसरा कोई विषय बनता है.... अथवा हम मानें (कि) शुद्धात्मा के अतिरिक्त देव-शास्त्र-गुरु, सात तत्त्व अथवा स्व और पर ये भी सम्यग्दर्शन के विषय होते हैं, तो सम्यग्दर्शन उनमें अहम् करता हुआ मिथ्यादर्शन बन जाएगा क्योंकि उसकी प्रकृति ही अहम् करने की है। वो जानता (तो) नहीं है। सिर्फ ज्ञान ने जो निश्चय किया आत्मा का स्वरूप, उसको वो सीधा ग्रहण कर लेता है। माने उसमें अहम् स्थापित करके 'यही चिन्मात्र मैं हूँ' - ये भी कथन में आता है। सचमुच तो आत्मा का जो स्वभाव रागादि से रहित, कर्मों से रहित, नोकर्म से रहित (है) माने संपूर्ण जगत से रहित (है) - ऐसा जो ज्ञान ने निश्चित किया, चैतन्यमात्र-चिन्मात्र ऐसा जो निश्चय किया, तो ठीक वो भावस्वरूप चिन्मात्र उसके अनुभव में आता है। 'यही मैं हूँ' - तो इस प्रकार का वचन या इस प्रकार का वाक्य भी उसमें प्रवर्तित नहीं होता। वो तो अहम् करता हुआ सीधा उस ज्ञायक में प्रवृत्त होता है। इसलिए जो ज्ञायक है वो उसका विषय (है)। ज्ञायक कहो (या) शुद्ध जीवास्तिकाय कहें, परम पारिणामिकभाव कहें, चिन्मात्र कहें, परमतत्त्व कहें, परमज्योति कहें, ज्ञानमात्र कहें - ये सब एक ही बात है, पर्यायवाची (हैं)।

जो व्यवहारनय की बात है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है अर्थात् असत्य अर्थ को, अभूत अर्थ (माने कि) जो विद्यमान नहीं है.... अभूत माने जो विद्यमान नहीं है, उस अर्थ को वो प्रगट करता है। तो जो विद्यमान नहीं है और जो अभूत है, असत्य है, यदि उसकी श्रद्धा की जाए तो उसका नाम मिथ्यादर्शन (होगा)। इसलिए व्यवहारनय संपूर्णरूप से हेयकोटि में रखा गया है, जैनदर्शन में।

कैसा भी व्यवहार हो, कैसा भी व्यवहार (हो) - ये देह मेरी है, यहाँ से लेकर शुद्धात्मा के विकल्प तक, केवल शुद्धात्मा (का), करणलब्धि में होनेवाला केवल शुद्धात्मा का विकल्प वह भी व्यवहार है और वह भी हेय है। वह जो शुद्धात्मानुभूति करनेवाला है और (वो जो) इस व्यवहार में प्रवर्तित हो रहा है, वह इसे हेय जानता हुआ, भीतर से इसे हेय जानता हुआ अर्थात् उसमें अहम् नहीं करता हुआ, ममत्व नहीं करता हुआ वह प्रवाहित होता है, तो उसे शुद्धात्मा मिल जाता है और उसकी उपलब्धि हो जाती है।

व्यवहारनय की बात जहाँ तक कहें, व्यवहारनय (कि) जो आत्मा अनादि-अनंत शुद्ध है, बिल्कुल परिशुद्ध है, जिसमें रंच भी मलिनता नहीं है और किसी की मिलावट नहीं है, उस आत्मा को व्यवहारनय मोही-रागी-द्वेषी इस प्रकार कहता हुआ प्रगट होता है। उसका भी एक प्रयोजन तो होता है। लेकिन प्रयोजन होने पर भी आत्मा मोही-रागी-द्वेषी नहीं है और वह आत्मा को किसी प्रयोजन से.... क्योंकि मोह-राग-द्वेष मेरे आत्मा की पर्याय में भी पैदा होते हैं। मोह-राग-द्वेष की उत्पत्ति में जगत के अन्य किसी पदार्थ का थोड़ा भी हिस्सा नहीं है। इसलिए (इस प्रयोजन से) व्यवहारनय आत्मा को मोही-रागी-द्वेषी कहता है। इससे यह पता लगता है (कि) मोह-राग-द्वेष संपूर्णरुप से आत्मा ने अपने अज्ञान से अपने भीतर (ही) प्रगट किए (हैं)।

लेकिन जब हम इस बात पर विचार करते हैं, माने यह जानकर कि आत्मा ही रागी-द्वेषी-मोही है (और) अन्य किसी का हिस्सा मोह-राग-द्वेष में नहीं है.... जैसा प्रवचनसार में भी ये वचन है कि राग का कर्ता आत्मा ही है, ये शुद्धद्रव्य के निरूपण स्वरूप व्यवहारनय है। फिर से, राग का कर्ता आत्मा ही है, ये शुद्ध द्रव्य के निरूपण स्वरूप निश्चयनय है। व्यवहारनय नहीं (है)। शुद्ध द्रव्य के निरूपण स्वरूप निश्चयनय है - ऐसा कहा। उसका अर्थ ये (है) कि जो कर्मों को राग-द्वेष में शामिल करता आया (है) और यह मानता आया (है) कि कर्म के उदय में ही राग-द्वेष होते हैं, तो उसका ये मानना कि कर्म का प्रभाव राग-द्वेष में अवश्य होता है, भले ही वो निमित्त कहे (गए) लेकिन उसके आश्रय में कर्म के कर्तृत्व की मान्यता आत्मा के राग-द्वेष के प्रति पड़ी है। इसलिए वह व्यवहार भी नहीं है लेकिन वो तो मिथ्यादृष्टि है।

व्यवहारनय जो है वो रागी-द्वेषी-मोही कहता है, तो वहाँ तो भेदज्ञान प्रगट हो चुका है। मोही-रागी-द्वेषी कहा तो अन्य का वारण करने के लिए (कहा)। परद्रव्यों का परिहार करने के लिए मोही-रागी-द्वेषी कहा।

जैसे ये हमारा ही दुष्कर्म है। जैन होकर भी जो ये हिंसा की है ये हमारा ही दुष्कर्म है। लेकिन यहाँ रुका नहीं जाता (है), ठहरा नहीं जाता (है)। ये दुष्कर्म है इसलिए ये मेरे करने लायक नहीं है। किया मैंने ही है लेकिन मेरे करने लायक ये नहीं है। इसलिए सचमुच मैं इसका कर्ता नहीं हूँ। अगर मैं अपने द्रव्य की ओर, जैनत्व की ओर से देखूँ तो मैं इस हिंसा के कृत्य का (भी) कर्ता नहीं हूँ। ऐसा जानकर वह उस कृत्य को उससे विमुख होकर और जैनत्व की शरण लेकर, जैनत्व का अनुभव करने लगता है।

इसी तरह राग-द्वेष वो कर्म के हैं। तो ये बात मान न ली जाए, इसलिए आचार्य कहते हैं कि शुद्धनय से आत्मा राग-द्वेष का कर्ता है। उसका अर्थ क्या हुआ? कि शुद्धनय से नहीं, ये शुद्धनय नहीं (है कि) जो आत्मा की अनुभूति करता है। लेकिन शुद्धनय का अर्थ ये (है) कि इस राग-द्वेष की उत्पत्ति में अन्य किसी का हिस्सा बिल्कुल नहीं है। माने ये राग-द्वेष शुद्धरूप से आत्मा ने किए हैं। ये राग-द्वेष शुद्धरूप से, निरपेक्षभाव से, बिना किसी की सहायता के और बिना किसी के कर्तृत्व और कारणता के (ही) आत्मा ने ही किए हैं - ये शुद्धता का अर्थ है।

जैसे लोक में कोई व्यक्ति झूठ बोलता है और एक व्यक्ति सत्य बोलता है। तो कोई प्रकरण आता है, तो वो जो व्यक्ति झूठ बोलता है उसके संबंध में सत्य बोलनेवाला व्यक्ति ये कहता है कि - ये साहब! ये शुद्धरूप से झूठ बोल रहा है। शुद्ध झूठ है ये। शुद्ध झूठ है माने उसमें सत्य का नाम-निशान भी नहीं है। उसी तरह 'आत्मा ही राग-द्वेष-मोह का कर्ता है, निश्चयनय से, शुद्धनय से' (तो) उसका अर्थ ये (है) कि उसके करने में अन्य किसी की मिलावट नहीं है। तो ये जो व्यवहार कहा, ये जो व्यवहार का जन्म हुआ निश्चय के साथ, ये विश्वास करने लायक नहीं है क्योंकि यहाँ ठहरा नहीं जाता। आखिर राग-द्वेष-मोह (तो) आत्मा को आकुलता पैदा करनेवाले तत्त्व हैं।

इसलिए राग-द्वेष-मोह सचमुच मेरे लिए कर्तव्य नहीं हैं और मेरे तत्त्व में, मेरे शुद्धात्म स्वभाव में उनका नाम-निशान भी नहीं है। ऐसा जानता हुआ राग-द्वेष से विमुख होकर.... ममत्व तो टूट ही गया जब भेदविज्ञान में शुद्धात्मा का अनुभव कर लिया ....

वो [50]अभूतार्थ होने से, असत्यार्थ होने से सचमुच हेय है और विश्वास करने लायक नहीं है। लोक में जितनी भी व्यवहार की प्रवृत्तियाँ चलती हैं वे सब इसी तरह से चलती हैं। जैसे एक व्यक्ति ने एक मकान बनाया और मकान में २० कमरे बनाये। तो हर कमरा मकान है और उससे पूछा जाता है कि तुम्हारे कितने मकान हैं? तो वो कहता है (कि) मेरे एक मकान है। और जब देखा जाता है कि उसमें २० मकान - २० कमरे मिलते हैं।

लेकिन ये जो २० मकान हैं, ये एक ही मकान है सचमुच तो। और ये जो मकान है, ये २० भागों में विभक्त होने पर भी अपने एकत्व को छोड़ता नहीं है। एकत्व को छोड़ता नहीं है। और यदि इसमें किराये से कोई रहता है (तो) उसको एक कमरा दिया जाता है। तो वो कमरा किराये से लेता है लेकिन अपने मित्र को जब वो दिखाता है, तब मित्र कहता है कि तुम अपना मकान तो दिखाओ। तो वो कहता है कि ये मेरा कमरा है। ये मेरा कमरा है - ये बात अभूतार्थ और असत्यार्थ है। लेकिन ऐसा कहने पर भी वो स्वयं और सुनने वाला (कि) उसका जो स्वामी है मकान का, वो दोनों ही जरा भी विचार नहीं करते। क्योंकि उनको मालूम है कि ये कह तो रहा है लेकिन मानता नहीं है। उसको इस बात की श्रद्धा नहीं है।

तो इसी तरह व्यवहारनय जो कहता है, वो कहा तो जाता है। ज्ञानी को ही व्यवहारनय चलता है। उसके पहले तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों का केवल निर्णय किया जाता है (कि) दोनों के विषय क्या हैं। तो व्यवहारनय का विषय जैसे देवपूजा, गुरु उपासना इत्यादि ये सारे दया, दान, पूजा इत्यादि - ये व्यवहारनय के विषय कहे जाते हैं। और इनको व्यवहार भी कहा जाता है। वो इसीलिए कहा जाता है क्योंकि ये व्यवहारनय के विषय होते हैं।

ये धर्म न होते हुए भी, ये शुद्ध पर्याय न होते हुए भी (व्यवहारनय) इनको शुद्ध पर्याय कहता है, धर्म कहता है। धर्म कहता है न! नहीं कहता? रत्नत्रय है ये। ये जो पाँच प्रकार के पाप का त्याग है ये, और पाँच प्रकार के ये जो सत्य-अचौर्य इत्यादि हैं, अहिंसा आदि इनका जो ग्रहण है और दया-दान अनुकम्पा आदि हैं, ये धर्म हैं - ऐसा कहता है (व्यवहारनय)। (ऐसा) कहने पर भी निश्चयनय उससे इनकार करता है, हमेशा से। क्योंकि निश्चयनय का काम ये होता है कि व्यवहारनय जो कहता है वो उसको 'नेति' 'नेति' कहता है। कि - 'नहीं! नहीं! ऐसा नहीं है'। माने कुछ भी कहे व्यवहारनय, कुछ भी, चाहे वो शुद्धात्मा की बात करे, शुद्धात्मा का विचार करे - तो निश्चयनय कहेगा 'नेति'।

50 व्यवहारनय का स्वरूप। - 17.41 Mins

कहते हैं (कि) आत्मा विचार-साध्य नहीं है। आत्मा तो अनुभूति-साध्य है इसीलिए वह उसको नेति कहता है। तो वो व्यवहार में प्रवर्तित होते हुए भी जो ज्ञानी है वे उसकी श्रद्धा (नहीं करते)। वो जो कुछ भी कहता है उसकी श्रद्धा नहीं करते। सचमुच तो दया-दान पूजा आदि को, व्रतादिक को, २८ मूलगुण मुनिराज के इनको जो धर्म की संज्ञा, रत्नत्रय की संज्ञा दी जाती है.. उसको रत्नत्रय की संज्ञा देना और वे, उनका रत्नत्रय बिल्कुल नहीं होना..... वे रत्नत्रय बिल्कुल नहीं हैं, जरा भी नहीं हैं। उनमें रत्नत्रय का नाम-निशान भी नहीं है। तो भी किसी प्रयोजन से व्यवहारनय उनको रत्नत्रय कहता है। वो इसलिए कहता है कि जब तक इतनी मंद कषाय ना हो तब तक इन चतुर्थ गुणस्थान - सम्यग्दर्शन, पाँचवा - व्रतधारी श्रावक और छठवाँ जो मुनिराज का पद है, तो उसकी उपलब्धि होती ही नहीं है। इतनी मंद कषाय ना हो तो उनके लायक पुरुषार्थ नहीं होता। और ये मंद कषाय हो जाए और वो पुरुषार्थ में मदद करे अथवा (उसका) कारण बने - ऐसा बिल्कुल (भी) होता नहीं है। लेकिन उनकी ओर पुरुषार्थ जागृत करने के लिए अर्थात् आत्मा में, शुद्ध स्वभाव में पुरुषार्थ जागृत करने के लिए इतनी मंद कषाय, शुभभाव, शुभोपयोग इसका होना आवश्यक है।

इसलिए ये कहना बहुत अच्छा हुआ कि हम आत्मा का, शुद्धात्मा का पुरुषार्थ करना चाहते हैं। तो कहाँ जाएँ? क्या करें? कहते हैं कि कम से कम इतनी कषाय तो मंद होनी चाहिए (तो) वो एक chance (मौका) है कि उस chance (मौका) में यदि तुम शुद्धात्मा का अलग से पुरुषार्थ करोगे, इनकी ओर दृष्टी न रखकर, इनकी ओर उपयोग न रखकर और शुद्धात्मा की ओर अपने उपयोग को लगाकर यदि पुरुषार्थ करोगे तो उपलब्धि हो जाएगी। सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हो जाएगी। एकदेश चारित्र की उपलब्धि हो जाएगी। सकल चारित्र जो मुनिराज को होता है उसकी उपलब्धि हो जाएगी। अन्यथा नहीं होगी।

इसलिए व्यवहारनय ये बोलता है कि यह धर्म है, ये है रत्नत्रय है। इससे हमको एक बड़ी मदद मिली और वो ये कि हम जो पहले ये रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए इधर-उधर जगत के पदार्थों की ओर, देव-शास्त्र-गुरु की ओर, जिनवाणी की ओर किसी भी तरफ झाँकते थे, तो वो झाँकना (अब) बंद हो गया। इससे ये मदद मिली और ये सीख मिली हमें कि वहाँ पहुँचने के लिए इतनी मंद कषाय होना आवश्यक है। तो इतनी मंद कषाय के लिए वह शुद्धात्मा के सन्मुख होकर (और) शुद्धात्मा के उद्देश्य से प्रयत्न करता है। और उतनी मंद कषाय होती है, तब उस मंद कषाय से विमुख होकर और शुद्धात्मा का पुरुषार्थ करता है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो जाते हैं। इसीलिए व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

आचार्य ने तो यहाँ तक कहा कि क्योंकि भगवान ने अध्यवसान छुड़ाये हैं इसीलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि सारा ही व्यवहार छुड़ाया है। तो सारा ही व्यवहार छुड़ाया है - ऐसा कहा।

व्यवहार में क्या हुआ कि - जो बात जैसी नहीं है वैसी उसको किसी प्रयोजन से कहना तो वो व्यवहारनय में आती है। और यदि वो वैसी नहीं है और उससे कोई सिद्धि नहीं होती, तो फिर वो सर्वथा झूठ है, वो पाप है। इसीलिए व्यवहारनय पाप की श्रेणी में नहीं आता, उससे पुण्य-बंध (तो) होता है। व्यवहारनय का जो फल है वो पुण्य है, तो पाप की श्रेणी में वो नहीं आता। लेकिन बात हमेशा ही असत्य होती है। आत्मा का, शुद्धात्मा का ज्ञायक के रूप में चिंतन - ये भी सत्यार्थ नहीं है। (चिंतन) ज्ञायक का कर रहा है। ज्ञायक का चिंतन (हो रहा है)। तो ये भी सत्यार्थ इसीलिए नहीं है कि आत्मा का जो धर्म है वो चिंतन नहीं (है), विचार नहीं (है), पर आत्मा का जो धर्म है, वो तो अनुभूति है। इसीलिए वो चिंतन को हेय समझता हुआ और उसको व्यवहार समझता हुआ, अंत में शुद्धात्मा का अनुभव कर लेता है।

इनको व्यवहार इसलिए कहा कि वास्तव में व्यवहार तो एक क्षणिक संज्ञा है इनकी। वास्तव में तो ये मंद कषाय हैं। तो कितना फर्क पड़ गया - है मंद कषाय, और हम उसको कहते हैं रत्नत्रय। तो मंद कषाय को रत्नत्रय के नाम से पुकारना, कहना (और) भीतर ज्ञान में इस प्रकर का विकल्प होना - इसका नाम है व्यवहारनय।

सच्चाई से देखा जाए तो व्यवहार नाम की कोई चीज नहीं है। व्यवहारनय है पर व्यवहार नाम की कोई चीज जगत में विद्यमान नहीं है क्योंकि वो तो मंद कषाय है। अब उसको रत्नत्रय कहना तो ये है ही नहीं, ये असत् है सर्वथा। तो सर्वथा असत् होने से व्यवहार के द्वारा कही गयी बात, उसकी विद्यमानता कहाँ है? माने वो रत्नत्रय कहाँ है? इसीलिए कहा है आचार्यों ने कि वो रत्नत्रय कहा गया तो वो व्यवहारनय से कहा गया है। वहाँ व्यवहारनय प्रवर्तित हो रहा है। ऐसा कहने से वो बिल्कुल रत्नत्रय नहीं बना। वो तो मंद कषाय और अधर्म ही है, अशुद्धता ही है। पर अधर्म को भी धर्म की संज्ञा किसी प्रयोजन से देना, इसलिए देना कि वहाँ पहुँचकर धर्म को प्राप्त किया जा सकता है। व्यवहार की प्रवृत्ति इसीलिए होती है।

तो व्यवहार की प्रवृत्ति में व्यवहार को साधन मानना, कारण मानना - ये बिल्कुल मिथ्यादर्शन है और कहना ये व्यवहारनय है। व्यवहार को भी साधन कहना - ये व्यवहारनय (है)। तो इसीलिए व्यवहारनय असत्यार्थ है और जो शुद्धनय है वो भूतार्थ है। भूतार्थ है इसका अर्थ क्या हुआ? कि शुद्धनय का जो विषय है - "शुद्धात्मा" वो भूतार्थ है। शुद्धनय भूतार्थ नहीं है, शुद्धनय का विषय (भूतार्थ है)। शुद्धनय तो स्वयं पर्याय है, तो पर्यायमात्र तो अभूतार्थ है। इसीलिए शुद्धनय का विषय (जो) शुद्धात्मा है, वो भूतार्थ है और बाकी सब अभूतार्थ हैं।

इसलिए व्यवहार के तो सैकड़ों उदहारण हैं। उनसे हम समझ सकते हैं कि जो बात जैसी होती है, वैसा व्यवहारनय कहता ही नहीं है। और यदि वो वैसा कहे तो सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए सिद्धि नहीं हो सकती कि जैसे मंद कषाय को यदि वो धर्म न कहे और वो मंद कषाय ही कहता रहे, तो वो तो मंद कषाय है - ऐसा समझकर कोई उसके निकट आएगा ही नहीं। और

उसको रत्नत्रय कहने से वो उसके निकट आकर, वहाँ आकर ठहर नहीं जाता (है)। वहाँ आकर उसमें लुब्ध नहीं हो जाता (है)। लेकिन वहाँ आकर वह उससे भिन्न पुरुषार्थ करता है और आत्मा की उपलब्धि हो जाती है।

लोक में ऐसे बहुत उदहारण हैं। किसी डॉक्टर के पास एक बीमार जाता है और वो उसको दवाई लिखता है। तो डॉक्टर कहता है (कि) ये शीशी पीना और ये पुड़िया खाना। ठीक है! डॉक्टर ये कहता है। और बीमार ये कहता है डॉक्टर साहब! आप पर मेरा पूरा विश्वास है। अब यदि वो विश्वास को लेकर उन्होंने जैसा कहा (ठीक) वैसा कर ले तो मौत होगी या जीवन होगा? या बीमारी मिटेगी? लेकिन वो समझता है कि उन्होंने जो पुड़िया खाने के लिए कहा (है), तो पुड़िया तो फेंक देता है और उसके भीतर जो दवाई है, वो खा लेता है। और इसी तरह काँच की शीशी में जो दवा है, उसको तो पी लेता है और शीशी को फेंक देता है।

इसी तरह व्यवहारनय ने जो बात कही तो उस व्यवहारनय की बात को तो छोड़ देता है। और उस व्यवहारनय ने जिसकी ओर संकेत किया है, वहाँ पहुँचकर उसका अनुभव कर लेता है। फिर लोक में भी हम इतने चतुर हैं समझने के लिए! तो जितनी बातें शुद्धात्मा से अनमेल हैं, वे सब के सब व्यवहारनय के विषय (हैं) और व्यवहारनय के विषय होने से उनको व्यवहार कहा जाता है, लेकिन सचमुच वो व्यवहार नहीं है। क्यों? कि व्यवहार नाम की कोई चीज जगत में नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्याय है (मगर) व्यवहार नाम की कोई वस्तु नहीं है।

एक द्रव्य है, गुण है और पर्याय है। (ये) व्यवहार कौनसी चीज है? लेकिन (ये) इसीलिए कहा गया, व्यवहार उसको इसलिए कहा गया कि कम से कम इसको वास्तविक ना माना जाए लेकिन व्यवहारनय के द्वारा कही जानेवाली एक बात है कि जिसको यदि ये समझकर और शुद्धात्मा तक पहुँचने का प्रयत्न करे, तो वह यहाँ आकर शुद्धात्मा तक पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त यदि वो सच्चे देव आदि के पास न आकर (और) अन्य के पास जाता है.. तो व्यवहारनय ये सच्चे देव आदि को अगर शुद्धात्मा का कारण नहीं कहता, तो वो तो और किसी के पास भी चला जाता, अद्वैत के पास भी चला जाता, वेदांत के पास भी चला जाता, कहीं गीता के पास भी, किसी के भी पास चला जाता। इससे हमको ये आराम मिला कि सारा जगत छूट गया और सारा जगत छूटकर केवल सच्चे देव-शास्त्र-गुरु और उनके द्वारा कहे हुए व्रतादिक और मूलगुण आदिक - केवल इतने ही हमारे लिए उपयोगी रहे।

तो वो इस तरह पाप को छोड़कर और उस मंद कषाय में आकर, मंद कषाय के chance (मौका) में आकर, उसके उस अवसर में आकर, उस अवसर पर ही ये शुद्धात्मा का यदि अलग से पुरुषार्थ करे, तो यह शुद्धात्मा को प्राप्त कर लेता है। और ये उसको धर्म कहा, रत्नत्रय कहा अथवा उनको कारण कहा, उनको साधन, कारण अथवा धर्म मानकर वहीं रह जाता है, तो फिर निगोद चला जाता है और मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

मुमुक्षुः- साधन कारण और धर्म मानकर ..

पूज्य बाबूजी:- वहीं रह जाए, उसे सत्य मान ले, भूतार्थ मान ले उसको... अभूतार्थ को भूतार्थ मान ले तो वह निगोद चला जायेगा।

ये व्यवहार का प्रयोजन है - व्यवहार निश्चय का प्रतिपादक होता है। व्यवहार ने निश्चय का क्या प्रतिपादन किया? व्यवहार ने जो देव-शास्त्र-गुरु को श्रद्धा का विषय और व्रतादिक को और मूलगुण आदिक को चारित्र कहा तो इसमें निश्चय का क्या प्रतिपादन किया? क्या प्रतिपादन हुआ निश्चय का? ये प्रतिपादन हुआ कि यहाँ आकर ही शुद्धात्मा को प्राप्त किया जा सकता है (परंतु) अलग पुरुषार्थ से, भिन्न पुरुषार्थ से (अर्थात्) इसको छोड़कर। इसको छोड़कर, इसमें मूढ़ ना होकर और इसकी श्रद्धा ना करके, इसको केवल कहा जानेवाला मानकर और अलग से भिन्न शुद्धात्मा का पुरुषार्थ करे विकल्पातीत होकर, विकल्प को सर्वथा हेय मानकर, शुद्धात्मा के विकल्प को भी अत्यंत हेय मानकर, उसमें ममत्व न जोड़कर और सीधा उपयोग का dialing जो है वो शुद्धात्मा से हो, तो शुद्धात्मा की प्राप्ति हो जाती है। और तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उदय हो जाता है। इस तरह लोक में हजारों-हजारों प्रकार के व्यवहार (हैं), हजारों प्रकार के।

जैसे कोई मेहमान आता है तो हम उसको कहते हैं कि - आपका ही मकान है और आप बिल्कुल संकोच मत करना। संकोच आप बिल्कुल मत करना, आप अपना ही समझना - इतनी बात हमने कही कि नहीं कही? तो वहाँ ये तो नहीं कहा कि मैं व्यवहारनय से कह रहा हूँ। ऐसा बोला हमने? और आप इसको सत्य मत मान लेना, मैं कह रहा हूँ जिसको। तो वो मेहमान ठहरेगा या उठकर चला जायेगा? लेकिन कहनेवाला भी समझता है और सुननेवाला भी समझता है।

हाँ! अगर वो इस बात को सत्य मान ले तो आपकी सब अटैचियाँ खाली हो जायेंगी।

मुमुक्षुः- बराबर! सही बात है।

पूज्य बाबूजी:- ये व्यवहार है। इसलिए व्यवहार अभूतार्थ हुआ - निश्चितरूप में; कोई भी किसी भी तरह का हो। पाप व्यवहार-धर्म नहीं होता है, ये दूसरी बात। पाप व्यवहार भाव तो है, लेकिन पाप व्यवहार-धर्म अथवा व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है। वो संज्ञा केवल पुण्य अर्थात् शुभभाव को मिलती है। ये हमेशा याद रखने की बात (है)।

मुमुक्षुः- थोड़ा सा स्पष्टीकरण (दीजिए)।

पूज्य बाबूजी:- पाप जो है वो व्यवहार तो है अर्थात् वो श्रद्धा करने लायक नहीं (है), वो छोड़ने लायक है। ममत्व करने लायक नहीं है। उससे सुख मानने लायक नहीं है। अशुभ परिणाम जो है - हिंसा झूठ चोरी आदि, ये व्यवहार तो है लेकिन व्यवहार धर्म अथवा व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है (कि) जैसा व्यवहारनय कहता है। इसलिए व्यवहारनय पाप का विवेचन नहीं करता। पाप का विवेचन करे तो ये कहेगा कि मिथ्यात्व आदिक सारे पाप हैं - ये कहेगा। (और) उत्पन्न आत्मा में ही होते हैं ये भी साथ में कहेगा, लेकिन सारे पाप हैं।

तो इसीलिए इसमें बहुत फरक है। वो व्यवहार है लेकिन व्यवहार मोक्षमार्ग और व्यवहार-धर्म अथवा व्यवहार रत्नत्रय वो नहीं है। और उसका कारण है कि तीव्र कषाय होने पर, हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील आदि के परिणाम होने पर कोई भी व्यक्ति तत्त्व को सुन भी नहीं सकता। क्योंकि उसका तो जो कलेजा है वो पापों से भरा हुआ है। इसीलिए उसको धर्म स्थानों में, पुण्य स्थानों में भी पाप के ही विचार (हैं) और धर्म-चर्चा में भी पाप के ही विचार चलते हैं। इसीलिए वो साधन माने व्यवहार साधन नहीं बन सकता - व्यवहार साधन। सत्य साधन नहीं, वो बनता नहीं है। इसलिए वहाँ उसको तो व्यवहार मोक्षमार्ग और व्यवहार धर्म नहीं कहते। केवल मंद कषाय में ये chance (मौका) है।

उसका भी कारण है - क्योंकि अज्ञान अवस्था में हमारे पास केवल दो ही भाव हैं, या तो पापभाव है या पुण्यभाव है। और तीसरा भाव जो वीतरागभाव है - सम्यग्दर्शन है, वो हमारे पास अभी नहीं है और हमको उसके लिय प्रयत्न शुरू करना है। तो हम इन दोनों में से किसी एक भाव के होने पर ही उसका प्रयत्न कर सकते हैं। अब चूँकि पापभाव में वो प्रयत्न नहीं बनता है तो पुण्यभाव में, मंद कषाय में वो प्रयत्न बनना ही चाहिए। अन्यथा मोक्षमार्ग और मोक्ष का कोई रास्ता नहीं (होगा) क्योंकि पापभाव में वो काम होता नहीं है।

जैसे किसी को भोजन बनाना है। उसके पास कमरा वगैरह नहीं है, तो (वो) छत पर भोजन बनाता है। तो छत पर जब तक छाया है तब तक वो भोजन बना ले। धूप आ जाने पर वो भोजन नहीं बना सकेगा और भोजन नहीं कर सकेगा और भूखा रहेगा। उसी तरह जैनदर्शन में पुण्यभाव की, शुभभाव की, शुभोपयोग की अगर कोई उपयोगिता है तो वो यह है कि शुभभाव और शुभोपयोग आते ही तुम उसकी ओर न देखकर और इसके प्राप्त होने पर शुद्धात्मा का पुरुषार्थ शुरू कर दो। शुद्धात्मा की चर्चा शुरू कर दो। शुद्धात्मा का चिंतन शुरू कर दो तो तो शुद्धात्मा की उपलब्धि हो जाएगी। अन्यथा वापस पापभाव आ जायेगा और ये chance (मौका) निकल जाएगा। इसलिए सारा ही पुण्यभाव और मंद कषाय वो कोई पूजा करने लायक नहीं है केवल, लेकिन वह शुद्धात्मा की साधना करने के लिए होता है।

मुमुक्षुः- शुद्धात्मा की साधना करने के लिए होता है, बस।

पूज्य बाबूजीः- कोई भी व्यक्ति किसी अपने शहर को जाता है, नगर को जाता है, गाँव को जाता है तो वहाँ पर रास्ते में धूप है। धूप में चलता-चलता घबरा जाता है। तब कोई पेड़ देखता है और उसकी छाया में वो ठहर जाता है, विश्राम करता है। लेकिन उस छाया में ठहरकर भी वो छाया उसके लिए हेयतत्त्व है। यद्यपि बाहर से उसे प्रसन्नता हो रही है, पसीना सूख रहा है, आराम मिल रहा है - ऐसा। लेकिन वो उसे आराम नहीं मानता क्योंकि आराम तो अपने गाँव के अतिरिक्त, अपने घर के अतिरिक्त अन्यत्र है ही नहीं। इसीलिए वो आराम कहकर भी उस आराम को भी

हेय मानता है। और यदि वो वहाँ सो जाए तो इसका अर्थ ये है कि वो उसमें लुब्ध हो गया और अब उसने अपना गंतव्य खो दिया (है)।

इस तरह उसे शीतल छाया की तरह ये जो मंद कषाय है वह शुद्धात्मा की साधना के लिए आई है, ऐसा जानकर उस chance (मौका) को न खोया जाए और शुद्धात्मा का पुरुषार्थ, उसकी चर्चा, उसका चिंतन, उसका मनन ये किया जाए तो सिद्धि हो सकती है। ये है उस गाथा का अर्थ।

जो अज्ञानी है वो इन भावों को, व्यवहार भावों को शुद्धात्मा के साथ मिलाकर अनुभव करता है। जैसे वो जो अज्ञानी है न गाँववाला व्यक्ति! तो उसे जैसा कुछ कुए से जल मिलता है, वो उसको ठीक वैसे का वैसा पी लेता है - गन्दा जल। उसको पी लेता है और वो जानता है कि जल ही है, ऐसा ही होता है। ऐसा ही होता है। और जो चतुर है वो उसमें फिटकरी डालकर और (फिर) उसमें जो कादव है, वो नीचे बैठ जाता है और शुद्ध जल पी लेता है।

इसी तरह जो ज्ञानी है वो व्यवहार भावों को शुद्धात्मा के साथ न मिलाकर और अपने को व्यवहार भाववाला न मानकर, शुद्धनय की फिटकरी डालकर उस व्यवहार के जो विकल्प हैं, उनको नीचे बिठा देता है। और शुद्धनय का अवलंबन लेकर, निर्विकल्प होकर आत्मा की अनुभूति कर लेता है। ये तरीका है।

मुमुक्षु:- [51]अभेद एकाकार नित्य वो जरा स्पष्ट कीजिए। अभेद एकाकार नित्य वो स्पष्ट कीजिए।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! वो अभेद एकाकार नित्य है न! उसका कारण ये है कि एक तो उसमें किसी की मिलावट नहीं है। ये तो ठीक है? कि आत्मा में किसी की मिलावट नहीं है। दूसरा ये कि आत्मा में परिणमन नहीं होता (है), शुद्धात्मा में। परिणमन हो तो विकार की सम्भावना रहती है और परिणमन नहीं होता है इसलिए वो निर्विकारी है। तो इन दोनों कारणों से वो बिल्कुल एकरूप रहा, सदा ही। क्योंकि किसी की मिलावट नहीं, तो अशुद्ध नहीं होता (है) और परिणमन नहीं होता इसीलिए ध्रुव रहता है। ध्रुव रहता है और शुद्ध रहता (है)। और जो ध्रुव है वो एकरूप ही रहता है, अनादि-अनंत क्योंकि उसमें परिवर्तन होगा ही नहीं, जब परिणमन नहीं होता है तो। तो इसीलिए वो हर समय उपलब्ध किया जा सकता है। इसीलिए एकाकार, एकरूप (और) अनेक उसके विशेषण हैं। वो सारे एक ही अर्थ को प्रगट करनेवाले हैं।

निराकार भी है। क्योंकि प्रदेशों का आकार होने पर भी वो आकार उसका नहीं (है)। वो उस आकार से भी भिन्न है। ये जो प्रदेशों का आकार - मनुष्याकार है, ये तो द्रव्य का आकार है न! व्यंजन पर्याय तो द्रव्य के प्रदेशों की होती है न! तो ये तो व्यंजन पर्याय, ये प्रदेशों का आकार होने पर भी, इन प्रदेशों के आकार से भी वो शुद्धात्मा भिन्न है। क्योंकि ये पर्याय है, पलट जाएगी।

51 अभेद एकाकार नित्य वो जरा स्पष्ट कीजिए। - 27.835 Mins

और वो ज्यों का त्यों रहेगा, वही का वही रहेगा। इसीलिए जो वही का वही रहे वो सदा एकाकार, एकरूप रहनेवाला शुद्धात्मतत्त्व है, अनंत वैभववाला है।

और ये जब होता है कि मैं तो एकरूप रहनेवाला ध्रुव, शुद्धतत्त्व हूँ - ऐसा जिसने विश्वास में ले लिया, जिसके ज्ञान ने दृढ़ता से इस बात को स्वीकार कर लिया, तो अब उसको भय, चिंता, क्लेश ये अगर कोई चलाकर, बुलाकर भी लावे, तो वो नहीं आयेंगे उसके निकट। क्यों आयेंगे? और उसमें कहाँ चिंता की गुंजाईश है? उसमें क्लेश की गुंजाईश कहाँ है जो ध्रुव एकाकार है (उसमें)?

तो मैं तो ध्रुव एकरूप तत्त्व हूँ ऐसा जहाँ निश्चय किया, वहाँ सारी चिंतायें और सारे क्लेश का अंत हो जाता है और इसीलए वो अनुभूति भगवान सिद्ध के सामान होती है। भगवान सिद्ध की अनुभूति में और उसमें कोई अंतर नहीं है। सम्यग्दृष्टि पुरुष का जो स्व-संवेदन होता है वो साक्षात् भगवान सिद्ध के समान होता है, ऐसा वचन है आगम का; जब स्वसंवेदन होता है तो, निर्विकल्प। उसमें कोई अंतर नहीं (है)। उस समय वो सिद्ध परमात्मा ही है।

निर्विकल्प स्व-संवेदन हुआ, रागादि का वेदन .... उस समय, राग है उस समय। राग के विकल्प भी हैं उस समय लेकिन वो एक ओर (हैं) क्योंकि वो शुद्धात्मा से एकमेक तो हैं नहीं। और ज्ञान की पर्याय से भी एकमेक नहीं हैं (कि) जो आत्मा का अनुभव कर रही है। उससे भी वो एकमेक नहीं हैं। इसीलिए ज्ञान की पर्याय ने शुद्ध को विषय बनाया तो इसको शुद्धनय नाम दिया है। क्योंकि इसने शुद्ध को विषय बनाया है, शुद्धात्मा को विषय बनाया है।

शुद्धात्मा को विषय करता हुआ ये जो शुद्धनय है, वो जो अनुभूति होती है उसमें एकांत सुख की अनुभूति होती है। आनंद की अनुभूति होती है। वहाँ पर दुःख और विकल्प ये पड़े रहने पर भी उनकी अनुभूति किंचित् मात्र भी नहीं होती। इसीलिए उसको भगवान सिद्ध के जैसी अनुभूति बताया। उनमें और इसमें कोई अंतर (नहीं है), उस समय वो साक्षात् सिद्ध परमात्मा ही है। उस समय मैं साक्षात् सिद्ध परमात्मा ही हूँ - ऐसा अनुभव करे तो निर्भीक हो जाता है।

क्यों क्या अंतर रहा? अब अपन अंतर की बात करें कि क्या अंतर रहा? क्या अंतर है? कि ये इसको राग-द्वेष-मोह हैं। कि इसने तो बाहर निकल दिए। बहार ही थे और इसने उनको अपने ज्ञान से बाहर जान लिया। जान लिया माने बाहर निकाल दिया। तो जब राग-द्वेष-मोह बाहर निकल गए और ये केवल सिर्फ ज्ञान और आत्मा ही दो रह गए, उसमें भी ज्ञान भी ज्ञायक बन गया। तो अब क्या अंतर रहा? भगवान सिद्ध भी ज्ञायक हूँ - ये अनुभव करते हैं और ये भी मैं मात्र ज्ञायक हूँ - ये अनुभव कर रहा है। (तो) क्या अंतर रहा इसमें और सिद्ध परमात्मा में? कोई अंतर नहीं रहा।

इसमें जो हिचकी खाता है तो उसको दर्शन नहीं मिलता। उसको अनुभूति नहीं मिलती। जो हिचकता है (कि) अरे रे रे! अभी सिद्ध परमात्मा अगर मैं अपने आप को कहने लगूँगा तो सिद्ध

परमात्मा का अनादर हो जायेगा। अनादर नहीं होगा (बल्कि) वो सारे सिद्ध परमात्मा प्रसन्न हो जायेंगे।

मुमुक्षु:- बराबर! बराबर! बराबर!

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि उनका उपदेश ही यही है।

जो interview होता है न – बड़े, बड़े interview - कलेक्टर है, commmisioner है कोई जज है। (तो) उनके जो interview होते हैं, तो उनमें जो विद्यार्थी जाते हैं, तो उनके interview भी इसी तरह के होते हैं। माने उनसे कोई खास ऐसी बातें नहीं पूछी जातीं (हैं)। उनको तो उनके पद, वो जिस पद पर जाना चाहते हैं उस पद के लायक बात पूछी जाती है।

तो जैसे एक विद्यार्थी interview दे रहा है। और वो जो interview लेनेवाले हैं, वो कहते हैं कि जरा चपरासी को बुलाकर लाना। तो वो कुर्सी से खड़ा होकर चपरासी को बुलाने नहीं जाता। वो वहाँ टेबल पर जो घंटी रहती है, उस घंटी को बजा देता है और उसे चुन लिया जाता है। और कोई उठकर चपरासी को बुलाने चला जाये, तो (उसको) कहते हैं (कि) तू तो चपरासी को (ही) बुलायेगा? तेरा काम collector बनने का, commisioner बनने (के लायक) का नहीं है।

इस तरह मैं सिद्ध परमात्मा हूँ वर्तमान में, इस अनुभूति के समय, तो वो सिद्ध परमात्मा बन ही जाता है क्योंकि वो इस लायक है।

मुमुक्षु:- उसके संसार की घंटी बज जाती है।

बाबूजी! आपने यहाँ बोला कि जब परिणमन होता है तो उसमें विकार भी है, ऐसा क्यों कहा?

पूज्य बाबूजी:- क्या?

मुमुक्षु:- [52]परिणमन होता है तो विकार की शक्यता है (ऐसा क्यों कहा)?

पूज्य बाबूजी:- परिणमन में विकार की शक्यता है, शक्यता है। हाँ! क्योंकि चार में परिणमन होता है, चार द्रव्यों में, अचेतन द्रव्य में; लेकिन उनमें विकार नहीं है। और इधर यहाँ परिणमन भी है और विकार भी है - पुद्गल में और जीव में। तो पुद्गल को तो कोई फिकर है ही नहीं। लेकिन जीव ज्ञानवाला है तो ये दुखी रहता है। हुआ न विकार! परिणमन है तो वहाँ विकार की संभावना होती है। संभावना होती है, possibility होती है। आवश्यक नहीं। .. में विकार हो जाता है क्योंकि वो स्वयं विकार उत्पन्न करता है।

मुमुक्षु:- [53]बराबर! शुद्धोपयोग के काल में मिश्र वेदन कहेंगे या एकांत का वेदन कहेंगे?

52 परिणमन होता है तो विकार की शक्यता है (ऐसा क्यों कहा)? - 52.58 Mins

53 शुद्धोपयोग के काल में मिश्र वेदन कहेंगे या एकांत का वेदन कहेंगे? - 53.45 Mins

पूज्य बाबूजी:- नहीं! एकांत शुद्ध का वेदन होता है। मिश्र वेदन नहीं होता। मिश्र वेदन शुद्धात्मा से जब वो बहार के पदार्थों की ओर चला जाता है तो उस समय मिश्र, मिश्र है। उसमें भी वेदन में फरक रहता है। कभी केवल दुःख का ही वेदन करता है। कभी केवल लौकिक सुख का ही वेदन करता है लेकिन दुःख का ही वेदन है। लेकिन वो कम हो जाता है क्योंकि उतना दुःख टूट गया न! उतना दुःख टूट गया है अनुभूति के समय, इसीलिए वो मिश्र होता है। कुछ सुख के अंश और कुछ दुःख के अंश।

जो स्वास्थ्य की वो होती है न एक प्रक्रिया - स्वस्थ होने की एक प्रक्रिया.... तो स्वस्थ होने की प्रक्रिया में जो रोगी है उसको ५० परसेंट आराम हो गया है। तो अब उसको उतना दुःख है क्या? जिस समय उसने चिकित्सा ही प्रारंभ नहीं की थी, उतना दुःख (अभी) है क्या? और पूरा सुख है क्या? क्योंकि अभी तो ५० परसेंट बाकी है, इसलिए वो एक मिश्र वेदन है।

मुमुक्षुः- तो उसको कौनसा वेदन है?

पूज्य बाबूजी:- अशुद्ध वेदन है, मिथ्यावेदन है। मिथ्या, मिथ्याज्ञान है। अशुद्ध वेदन माने मिथ्याज्ञान।

मुमुक्षुः- तो बाबूजी! उसी समय जो सामान्य उपयोग प्रवर्तता है, उसका कोई योगदान हुआ कि नहीं? सामान्य उपयोग जो जानना-जानना जानना हुआ..

पूज्य बाबूजी:- उसका कुछ योगदान नहीं है। वो पुरुषार्थ करे तो योगदान है (अन्यथा) उसका कोई योगदान नहीं है। उसका क्या योगदान है? वो उपयोग को जिधर ले जायेगा उधर उपयोग जायेगा। उपयोग को शुद्धात्मा की ओर ले जाये तो उपयोग शुद्धात्मा की ओर जायेगा। पर उपयोग को इसको विश्वास तो दिलाओ! तुम तो इसको दुखी करते हो। ज्ञान को कष्ट देते हो रात और दिन। उसको विश्वास तो दिलाओ कि मैं तुझे ऐसी जगह ले जा रहा हूँ कि जहाँ दुःख का नाम-निशान भी नहीं है। और अनंत सुख है - ऐसी जगह मैं तुझे ले जा रहा हूँ। एक जानवर भी नहीं जायेगा। राजा के यहाँ से छूटकर के कहीं गरीब को बेच दिया जाये तो वो जानवर (भी) बार-बार राजा के महल में जायेगा।

मुमुक्षुः- सही बात है!

पूज्य बाबूजी:- तो ये विश्वास तो दिलाया जाये उपयोग को पहले (मगर) वो तो विषयों में फँसा है। उसने बता ही उसे ये रखा है कि सुख यहाँ है, वो मानता ही यही है।

मुमुक्षुः- [54]आबाल-गोपाल को सुख का अनुभव होता है, आत्मा प्रगट रहता है उसका क्या अर्थ है?

पूज्य बाबूजी:- आबाल-गोपाल को सुख का अनुभव नहीं होता है। आबाल-गोपाल सबको आत्मा अनुभव में आता है - ऐसा कहा है। पर उसके आगे 'किन्तु' शब्द है। वहाँ उसका अर्थ यह

54 आबाल-गोपाल को सुख का अनुभव होता है, आत्मा प्रगट रहता है उसका क्या अर्थ है? - 56.30 Mins

है कि आबाल-गोपाल माने जगत के सारे प्राणी, सारे प्राणी, एकेन्द्रिय से लगाकर सैनी पंचेन्द्रिय तक सारे प्राणी वे ये जानते हैं कि मैं जाननेवाला हूँ। मैं जाननेवाला हूँ। मैं जानता हूँ और जाननेवाला हूँ।

तो जाननेवाला हूँ - ऐसा उसने स्वीकार किया ज्ञान में, लेकिन जाननेवाले का स्वरुप क्या है ये नहीं जाना। और जानन-क्रिया का, ज्ञान का स्वरुप क्या है - ये भी नहीं जाना। इसीलिए वो अन्य के साथ प्रतिबद्ध हो जाता है। भाई! इतना जानकर भी वो अन्य पदार्थ के साथ ममत्व जोड़ बैठता है तो इसलिए उसे शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता। ये, इसका नाम अनुभव है।

मुमुक्षु:- मैं ज्ञान से जानता हूँ।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! जैसे जो हमेशा झूठ बोलता है, तो उसे सत्य की अनुभूति है सदा ही। लेकिन वो बोलता झूठ है।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह!

पूज्य बाबूजी:- इसी तरह उसको वो अनुभव में आना चाहता है लेकिन ये दूसरे के साथ जुड़ जाता है। ये अन्दर से प्रेम कर बैठता है। अगर वो ये मान ले कि ये मैं जाननेवाला हूँ, बस! तो वो हो गया। और जाननेवाला ऐसा शुद्ध होता है एकदम, तो काम हो जायेगा।

मुमुक्षु:- असत्य बोलता है उसे सत्य की अनुभूति है।

पूज्य बाबूजी:- सत्य की अनुभूति है।

मुमुक्षु:- फिर भी वो (उसको) तिरोभूत कर देता है।

पूज्य बाबूजी:- तिरोभूत कर देता है उसको। जानता है न इतना तो! सत्य को जानता है असत्य बोलनेवाला।

मुमुक्षु:- बराबर! ऐसा तो नहीं है कि असत्य भी सत्य को जानता ही नहीं है। जानते हुए भी नहीं (जानता) है।

पूज्य बाबूजी:- बस! ये ही, इतना ही जानना है वो आबाल-गोपाल को।

मुमुक्षु:- उसको मालूम तो है। आहाहा!

बहुत सुंदर प्रश्न! असत्य का स्वरुप ही ये है कि सत्य जानते हुए भी वो छुपा देता है।

पूज्य बाबूजी:- तिरस्कृत करता है उसको।

मुमुक्षु:- तिरस्कृत कर देता है (उसको)।

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि दूसरी ओर फँसा है न! दूसरी ओर फँसा है न! परपदार्थ की लोलुपता है न! अन्य की लोलुपता है न!

मुमुक्षु:- हाँ! अन्य की लोलुपता है। बाबूजी! इसका कारण उसकी ऐसी ही परिणति है - ऐसा ही ले लेना?

पूज्य बाबूजी:- नहीं! पुरुषार्थ की कमी है। ऐसा नहीं लेना (कि) उसकी ऐसी परिणति है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! यदि पुरुषार्थ की कमी बोलते हैं, तो (इसका अर्थ ये कि) उसको मालूम तो पड़ा कि सत्य ये ही है। फिर भी क्यों?

पूज्य बाबूजी:- मालूम पड़ा तो (भी) नहीं करता है न वो। तो ये उसके पुरुषार्थ की कमी है कि नहीं? और ज्ञान की भी, ज्ञान भी भ्रष्ट है उसका। ज्ञान भी भ्रष्ट है। सद्गुरु जो बताते हैं वो बात वो स्वीकार नहीं करता (है)।

मुमुक्षु:- दो दिन पहले का एक छोटा सा प्रश्न है - ज्ञान का फल विरति कहा जा सकता है? ज्ञान का फल विरति?

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान का फल विरति नहीं, ज्ञान का फल रति है शुद्धात्मा में। विरति से क्या होता है? विरति तो negative (शब्द) है। उससे क्या होता है? हाँ! विरति हो जाती है। लेकिन रति होती है तो विरति हो जाती है। शुद्धात्मा में.....

मुमुक्षु:- जब रति होती है तो पुद्गल कर्म से विरति हो जाती है।

पूज्य बाबूजी:- विरति हो गई। केवल विरति से क्या होना है? कुछ मिलना चाहिए न उसके स्थान पर।

परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

<u>जिनवाणी-स्तुति</u>

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर १९, तारीख १२-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:- [55]कल बात आई थी बाबूजी!

प्रश्न है, भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है - ११ वीं गाथा (में कहा) एवं नवतत्त्व को भूतार्थ से जानते हुए सम्यग्दर्शन ही है। तो एक प्रश्न ये है प्रभु! कि भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है (ऐसा) ११ वीं गाथा (में कहा)। और नवतत्त्व को भूतार्थ से जाने हुए ही, जाने हुए ही सम्यग्दर्शन है। ये बात कैसे?

पूज्य बाबूजी:- ये तो हो गया न (कि) भूतार्थ के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु:- यह तो कल वाली बात थी।

पूज्य बाबूजी:- ये तो ठीक है। तो आ गया न समझ में?

मुमुक्षु:- थोड़ी बहुत।

पूज्य बाबूजी:- भूतार्थ माने भूत अर्थ, विद्यमान वस्तु। और जो सम्यग्दर्शन है श्रद्धा, उसके लिए जो एकमात्र विद्यमान वस्तु है विश्व में, वह केवल शुद्धात्मा है। क्योंकि अन्य की विद्यमानता, यदि उसमें प्रतीत होती है, श्रद्धा (का) विषय बनती है (तो) वो मिथ्यादर्शन होता है। क्योंकि उसकी जो प्रकृती है श्रद्धा की वो अहम् करनेरूप है। जो भी विषय होगा उसमें वो अहम् करेगी और उसको आत्मा मानेगी। पूरा आत्मा मानेगी।

इसलिए सारे विश्व को छोड़कर ज्ञान ने जैसा पहले निर्णय किया (कि) सम्पूर्ण विश्व में केवल इस शुद्धात्मा के सिवाय अपनी शुद्धाशुद्ध पर्याय भी पर हैं, परद्रव्य हैं। ऐसा जान लेने पर एकमात्र ज्ञायक ही शेष रहता है कि जिसको श्रद्धा अपना श्रद्धेय बनाती है। इसलिए श्रद्धा के लिए वो विद्यमान वस्तु में सिर्फ ज्ञायक ही है, सम्पूर्ण विश्व में। और कोई विद्यमान नहीं है, (सब) अविद्यमान हैं। अर्थात् सब वो व्यवहारनय के विषय हैं। व्यवहारनय उनको भले ही भूतार्थ कहे, विद्यमान कहे, लेकिन श्रद्धा की ओर से तो वो सारे के सारे अविद्यमान हैं। और ज्ञान की ओर से भी (अविद्यमान हैं)। क्योंकि ज्ञान उस समय अनुभूति में प्रवर्तित हो रहा है। (तो) उसकी ओर से भी जो अभूतार्थ है। ज्ञान की ओर से होते हुए भी... क्योंकि ज्ञान तो जानता है न! इसलिए जानने में आये हैं जरूर लेकिन वे काम के नहीं थे, (किसी) मतलब के नहीं थे। इसलिए ज्ञान उधर से लौटकर ज्ञायक में ही स्थापित हो जाता है।

55 समयसार ११वीं गाथा। - 0.15 Mins

श्रद्धा के लिए तो भूत अर्थ इस विश्व में एकमात्र शुद्धात्मा है। शेष कोई वस्तु नहीं है। और यदि वो कही जाए ज्ञान की ओर से कि भूतार्थ, भूतार्थ माने उसका होना। वहाँ भूतार्थ का अर्थ व्यवहारनय की ओर से भूतार्थ माने उसका होना, उसके अस्तित्व का होना। (यदि) वो मान भी लिया जाए तो वो सारा परद्रव्य होने से हमारे लिए किसी प्रयोजन का नहीं है। हमारे लिए किसी प्रयोजन का नहीं है - इसका नाम (हुआ कि) सम्पूर्ण विश्व को जानना।

मुमुक्षुः- इसका नाम (ही) सम्पूर्ण विश्व को जानना (है)।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न! और जानने में..... ज्ञान ने तो बोला ही है कि मेरे लिए सम्पूर्ण विश्व किसी प्रयोजन का नहीं है, किसी मतलब का नहीं है। हो गया जानना, जानकर ही तो बोला वो। नहीं जानता तो बोलता कैसे?

मुमुक्षुः- यह मेरा विकार है, वो देखकर (बोलता है)।

पूज्य बाबूजीः- यह मेरे बिल्कुल किसी मतलब का नहीं है। ऐसा वो जानकर ही, समझकर ही बोला है। तो वह भी श्रद्धा की तरह शुद्धात्मा में ही स्थापित होकर 'मैं ज्ञायक हूँ' - ऐसा अनुभव करता है। (इस तरह) भूतार्थ के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होने की बात की।

भूतार्थ का अर्थ समझ लेना चाहिए अच्छी तरह से। भूतार्थ, भूत-अर्थ, विद्यमान वस्तु जो ध्रुव है एकरूप सदा रहनेवाली है, अक्षय-अनंत - ऐसी जो वस्तु है उसका नाम भूतार्थ (अर्थात्) विद्यमान। सम्यग्दर्शन में केवल एक वही नजर आता है। नजर आता है अर्थात् प्रतीति में आता है, अहम् रूप में प्रवर्तित होता है, केवल एक वही। अन्य जगत में कोई नहीं (है)। इसलिए अन्य जगत सारा का सारा श्रद्धा के लिए अविद्यमान रहता है। और ज्ञान के लिए भी वो सब व्यवहार होने से अर्थात् पराया होने से वो अविद्यमान जैसा ही है, ज्ञायक की ओर से।

मुमुक्षुः- ज्ञान के लिए भी विद्यमान एक ही आत्मा है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! ज्ञान विद्यमानता को स्वीकार करता है, लेकिन वो जानता है कि इसका होना मेरे लिए किसी मतलब का नहीं है। इसका अस्तित्व मेरे लिए (और) मेरे अस्तित्व के लिए किसी प्रयोजन का नहीं है। ऐसा जानकर, तब उससे मुड़कर वो शुद्धात्मा में स्थापित हो जाता है।

मुमुक्षुः- माने ज्ञान में हेय-उपादेयबुद्धि साथ में ही चलती है?

पूज्य बाबूजीः- हो गई न ये! साथ में ही चलती है। बस, यही चलता है (कि) ये मेरा नहीं है। ये हेय वाक्य हुआ। (और) ये मेरा है, ये उपादेय वचन हुआ। लेकिन दोनों को छोड़कर उपादेय में अहम् रूप में प्रवर्तित हो जाना वो दोनों से अलग चीज है। ये दो विकल्प हैं।

मुमुक्षुः- दोनों को छोड़कर उपादेय में अहम्बुद्धिरूप प्रवर्तित हो जाना - ये बात जरा स्पष्ट कीजिए प्रभु (कि) क्या कहना है?

मुमुक्षुः- दो प्रकार के विकल्प हुए। दो प्रकार की बात जब आएगी तो विकल्प होगा। ये जगत में कोई भी मेरे नहीं हैं - एक तो ये वचन अर्थात् हेय है (कि) मैं नहीं हूँ, मेरे नहीं (हैं)। और

एकमात्र शुद्धात्मा ही मेरा है। तो ये दो विकल्प हुए। इन दोनों विकल्पों से टूटकर और उसी ज्ञान का, एकमात्र ज्ञायक ही मेरा है ऐसा बोलकर, ऐसी प्रवृत्ति ज्ञान में करके और सिर्फ ज्ञायक में तल्लीन हो जाना, स्थापित हो जाना, समाहित हो जाना, अहम् रूप प्रवर्तित होना उसका नाम ज्ञान है।

मुमुक्षुः- उसका नाम सम्यग्ज्ञान है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! ज्ञान में भी ये ही वास्तव में अभूतार्थ हैं और श्रद्धा की दृष्टि से तो वे हैं ही नहीं। ये तो उसकी बात हुई।

मुमुक्षुः- श्रद्धा की दृष्टि से वे हैं ही नहीं।

पूज्य बाबूजीः- श्रद्धा की दृष्टि से तो वे हैं ही नहीं। जगत ही नहीं है क्योंकि उसका विषय केवल एक शुद्धात्मा हुआ। अब अगर कोई दूसरा विषय बनता है, तो उस समय वो (श्रद्धा) अहम् रूप प्रवृत्ति किए बिना नहीं रहेगी। उसको वो अपना आत्मा माने बिना नहीं रहेगी, तो मिथ्यादर्शन हो जाएगा। इसलिए क्षायिक सम्यकत्व हो जाए तो अनंतानंतकाल तक श्रद्धा का विषय एकमात्र शुद्ध चिन्मात्र ही होगा और कोई नहीं।

माने श्रद्धा का जो जगत है वो केवल चिन्मात्र ज्ञायक है। श्रद्धा का जो लोक है, वो चिन्मात्र एक ज्ञायक ही है और कोई नहीं। श्रद्धा का संसार केवल ज्ञायक का बना हुआ है और नहीं। ये तो इसकी बात हुई। अब नवतत्त्व भूतार्थ से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हैं - ये है न बात।

मुमुक्षुः- यही है, यही बात है। नवतत्त्वों को भूतार्थ से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही (है)।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! भूतार्थ से जाने हुए नवतत्त्व सम्यग्दर्शन ही है। यहाँ पर बताया है व्यवहार और निश्चय। अर्थात् जब भूतार्थ अर्थात् शुद्धात्मा का दर्शन होता है, इसमें श्रद्धा और ज्ञान दोनों आए दर्शन में। तो जब उसका दर्शन होता है, तो वो नवतत्त्व के विचारपूर्वक ही होता है। अथवा स्व और पर के विचारपूर्वक होता है। तो नवतत्त्व के विचारपूर्वक होता है ऐसा जब जाना, तो उस नवतत्त्व के विचार को भी सम्यग्दर्शन के नाम से पुकारा जाता है। वो इसलिए पुकारा जाता है कि नवतत्त्व के विचार तक यदि ये नहीं पहुँचेगा तो फिर सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ इसको हो ही नहीं सकेगा। कर ही नहीं सकेगा ये।

कैसे नहीं कर सकेगा? क्योंकि नवतत्त्व में जो जीव है पहला, वो तो ये मनुष्यादि पर्यायवाला है। दूसरा जो अजीव है, वो तो इससे अन्य और पर है - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। आस्रव और बंध को जानेगा कि वर्तमान में मेरी दशा बहुत कलंकित है, बहुत खराब है, बहुत दूषित है, बहुत मैली है। ये जानेगा तो उसे मिटाने के लिए संवर और निर्जरा का विचार करता है। और अंत में ये सब समाप्त हो जाने पर मुक्ति हो जाती है।

ये जब तक नहीं जानेगा तब तक उस आस्रव और बंध को समाप्त करने के लिए शुद्धात्मा की ओर क्यों ढलेगा? क्यों ढला है ये शुद्धात्मा की ओर क्योंकि आस्रव और बंध को इसने जाना

है। और ये आस्रव-बंध का जन्म कैसे हुआ? कि जब मैं शुद्धात्मा से चूका, शुद्धात्मा से स्खलित हुआ, शुद्धात्मा से मैं फिसल गया और अन्य में मोहित हो गया तो आस्रव-बंध का जन्म हुआ। अब मैं उन सबको उपेक्षित करके और एकमात्र शुद्धात्मा की अपेक्षा करूँ और उसी में अहम् रूप प्रवर्तूं तो आस्रव और बंध समाप्त हो जायेगें। तो इस तरह नवतत्त्व के विचारपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है - ये उसका सीधा अर्थ है।

इसलिए भूतार्थनय से जाने, भूतार्थ से जाने हुए नवतत्त्व सम्यग्दर्शन ही हैं। उसका अर्थ क्या हुआ? भूतार्थ से जाने हुए (उसमें) वजन वो है। नवतत्त्व जाने हुए वो तो मिथ्यादर्शन हैं, केवल। केवल नवतत्त्व का जानना और नवतत्त्व का विचार वो तो मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षु:- अभी तो कहा कि ....

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अभी तो कहा कि भूतार्थनय से जाने। भूतार्थ से जाने हुए माने भूतार्थ का ज्ञान हो इसे कि एक शुद्धात्मा ही ध्रुव है और वही उपादेय है - ऐसा जानकर वो नवतत्त्व में प्रवर्ते, नवतत्त्व के विचार में.. ये सिर्फ जानने की, विकल्प दशा की बात चल रही है।

तो नवतत्त्व के विचार में प्रवर्ते और ये जाने कि वर्तमान में मुझे आस्रव-बंध है और ये बहुत दुखदायी है। ये दुख सहा नहीं जाता। इस दुख को तो नष्ट करना है - ऐसा जानकर वहाँ से हटे। अपनी दृष्टि माने ज्ञान को, उपयोग को वहाँ से हटा ले और शुद्धात्मा पर उस ज्ञान को स्थापित कर दे, तो आस्रव-बंध टल जाते हैं।

दूसरा क्या है? कि जगत में जो अन्य दर्शन हैं, उनमें तत्त्व अनेक प्रकार से कहे। और ये नवतत्त्व की बात यदि यहाँ नहीं कही जाती, तो ये किसी भी दर्शन के तत्त्वों को जानकर शुद्धात्मा को पाने की चेष्टा करता, गृहीत मिथ्यात्व से। माने तत्त्व तो बहुत कहे (हैं) न! जैसे सांख्यमत भी तत्त्व कहता है, नैयायिक कुछ कहता है, वैशेषिक कुछ कहता है, मीमांसक कुछ और कहता है। इस तरह से अलग-अलग प्रकार से अलग-अलग वस्तु का स्वरूप बताया है। तो अगर ये नवतत्त्व की बात सर्वज्ञ-उपदिष्ट है, भगवान सर्वज्ञ ने जो कहे हैं सात तत्त्व.... सात तत्त्व अर्थात् नव पदार्थ अथवा नवतत्त्व (वो) एक ही बात है। उसमें पुण्य और पाप का भेद कर दिया है। सात तत्त्व में पुण्य और पाप का भेद नहीं है। तो भेद किया माने जितना भेद है उतना भेद जानना चाहिए।

तो ये नवतत्त्व अगर नहीं जाने गये जो भगवान सर्वज्ञ ने कहे हैं, तो सचमुच वो शुद्धात्मा की ओर जाएगा ही नहीं। क्योंकि बहुत से दर्शन आत्मा को एकमात्र शुद्ध ही कहते हैं कि पुरुष जो है, वो तो पवित्र है और जो प्रकृति है, वो जड़ है। प्रकृति जड़ है और वो प्रकृति के संयोग से पुरुष जो है वो मैला हो जाता है। माने पुरुष तो वास्तव में पवित्र है। तो अब वो विकार को स्वीकार ही नहीं करते। वो प्रकृति में कहते हैं विकार, तो वो विकार को स्वीकार ही नहीं करते।

यहाँ तो पहले विकार को स्वीकार करना। अध्यात्म-पद्धति भी यह है और आगम-पद्धति भी (यह) है कि पहले विकार को स्वीकार करे, विकार को दुखद माने, विकार को महाकष्टप्रद

माने, आकुलतामय माने। तो जब ये आकुलता का अनुभव करेगा, तो उस आकुलता को मिटाने के लिए उपाय सोचता है। और उसका उपाय है कि ये पैदा कैसे हुए थे? कि मैं स्वरूप से चिगा, शुद्धात्मा से चिगा क्योंकि जगत में कोई भी अपना मानने लायक नहीं है। केवल शुद्धात्मा ही अपना मानने लायक है। तो शुद्धात्मा से चिगा तो आस्रव-बंध का जन्म (हो गया)। कैसे हो गया? कि शुद्धात्मा से चिगा तो अन्य में ममत्व कर बैठा, इसका नाम (है) आस्रव-बंध। अन्य में राग-द्वेष कर बैठा, इसका नाम (है) आस्रव-बंध।

तो इस तरह संपूर्ण निदान करके अच्छी तरह से, युक्तियों से उसने आस्रव-बंध को जानकर, आस्रव-बंध एकदम आकुलतामय हैं - बस, ऐसा विचार करके वो शुद्धात्मा की ओर ढला तो आस्रव और बंध ये समाप्त हुए और संवर-निर्जरा प्रगट हुए और अंत में मोक्ष प्रगट हो जाता है।

इसलिए नवतत्त्व वो भगवान सर्वज्ञ के कहे हुए हैं। नौ ही हैं, दस नहीं है (और) आठ नहीं हैं। अर्थात् सात ही हैं, आठ नहीं है, छह नहीं हैं। इस तरह से उनकी श्रद्धा करके और उनके स्वरूप को जानकर.... श्रद्धा करके वो ज्ञानपरख ही है बात है सारी। ज्ञान में ही होगी क्योंकि श्रद्धा तो केवल आत्मा की ही है, सम्यग्दर्शन में। बाकी और तो नवतत्त्वों का श्रद्धान वो सम्यग्दर्शन नहीं है क्योंकि वो तो जो व्यवहारी है, उस व्यवहारी को भी नवतत्त्व का श्रद्धान होता है लेकिन वो मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षुः- माने नवतत्त्व को जानने से एक तो गलती क्या है, वो समझ में आती है। और गलती का सुधर जाने के बाद फल क्या पाता है, वो भी समझ (आता है)।

पूज्य बाबूजीः- फल क्या पाता है (और) गलती क्यों पैदा हुई। क्यों पैदा हुई? गलती है एक बात। गलती क्यों पैदा हुई (वो) दूसरी बात। गलती कैसे टलेगी और उसका फल क्या होगा? इसलिए भूतार्थ दिया है साथ में शब्द। केवल नवतत्त्व को जाने तो वो तो मिथ्यादर्शन ही प्रवृत्ति है। क्योंकि आत्मा को जो एकरूप है, एक है और एकरूप है, शुद्ध है, ध्रुव है, उसको नौ रूप माना तो इसका नाम मिथ्यादर्शन है। नौ प्रकार का माना आत्मा को और आत्मा नौ प्रकार का होता नहीं (है)। व्यवहारनय जरूर पर्याय की ओर से उसे नौ प्रकार का कहता है। ये पर्यायार्थिकनय का विषय है। सारे, सारे ही नवतत्त्व वो पर्यायार्थिकनय के विषय हैं। इसलिए पर्यायार्थिकनय भले ही कहे क्योंकि वे हैं इसलिए पर्यायार्थिकनय कहेगा जरूर, लेकिन पर्यायार्थिकनय के द्वारा कही गई बात क्योंकि उसमें दुख भी शामिल है, इसलिए दुखद होने से वो ग्राह्य और उपादेय नहीं हो सकती। इसलिए वो नवतत्त्व को भूतार्थ के आश्रय से, शुद्धात्मा के आश्रय से नवतत्त्वों को जानता है। और जो नवतत्त्व का विचार करता है, तो नवतत्त्वों का विचार रुककर शुद्धात्मा में स्थापित हो जाता है। इसका नाम भूतार्थ से जाने हुए नवतत्त्व वो सम्यग्दर्शन हैं।

तो ये बताना कितना सुंदर रहा कि तुम्हें यदि सम्यग्दर्शन पैदा करना है, तो तुमको पहले ये नवतत्त्वों तक आना पड़ेगा। सात तत्त्व तक आना पड़ेगा अथवा संक्षेप में कहें तो जीव और अजीव तक आना पड़ेगा।

मुमुक्षु:- संक्षेप में ये हो गया।

पूज्य बाबूजी:- संक्षेप में ये हो जाएगा। तो यहाँ आना ही पड़ेगा। इनका भेद जानकर ये मैं नहीं हूँ और इनसे भिन्न एकदम शुद्ध ज्ञायक हूँ मैं, ये बात गुरु के प्रसाद से जो प्राप्त हुई - उसे जानना ही पड़ेगा। और उसे यदि नहीं जानता है, तो शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए निमित्त की ओर से और व्यवहार की ओर से वो बात कही गई है। व्यवहार के विषय हैं वो। उनको कहा है कि **तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तम् (समयसार गाथा १३)** तीर्थधर्म की प्रवृत्ति के लिए। तीर्थ माने व्यवहार-धर्म। शुभभाव!

मुमुक्षु:- व्यवहार-धर्म माने?

पूज्य बाबूजी:- शुभभाव की प्रवृत्ति। आस्रव-बंध[56] का विचार करता है तो भी शुभभाव होते हैं।

मुमुक्षु:- वाह! ये पाप है इतना विचार करे वो भी शुभभाव?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ये पाप है। तो (भी) ये कहना पाप नहीं (है), कहना (तो) पुण्य है।

मुमुक्षु:- और ये जाने (कि यह) तो पाप (है) ये भी बात आती है।

पूज्य बाबूजी:- जाने तो भी पुण्य है कि ये आस्रव-बंध आकुलतामय हैं ये जाना, तो वो तो पुण्यभाव है। ज्ञानभाव है साथ में, और उसका फल जो है वो पुण्यभाव है।

मुमुक्षु:- तो व्यवहार-धर्म की प्रवृत्ति का अर्थ जो आया १३ वीं गाथा में....

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तीर्थ कहा उसको तीर्थ। तो तीर्थ इसलिए कहा क्योंकि तीर्थ तो वास्तव में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। लेकिन निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति यहाँ आने पर होती है, यहाँ आने पर। तो यहाँ आने पर होती है इसलिए इसको तीर्थ कहने से कितना लाभ हुआ? कि हम यदि यहाँ आते हैं, तो यहाँ आकर उस आत्मा की प्राप्ति के लिए भिन्न पुरुषार्थ करें, तो सम्यग्दर्शन हो सकता है। इसलिए इसको तीर्थ कहना, (मात्र) कहना उपयुक्त है। कहना सही है, पर मानना मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षु:- तीर्थ कहना सही है और मानना मिथ्यादर्शन है।

पूज्य बाबूजी:- मानना मिथ्यादर्शन (है)।

मुमुक्षु:- माने नवतत्त्वों को तीर्थ कह सकते हैं?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! नवतत्त्व का विचार ही हुआ न, व्यवहार-धर्म की प्रवृत्ति के लिए।

मुमुक्षु:- नवतत्त्व का विचार तीर्थ है। भूतार्थ से जाने....

56 आस्रव-बंध का विचार करता है तो भी शुभभाव होते हैं। - 22.07 Mins

पूज्य बाबूजी:- भाई! व्यवहार-धर्म की प्रवृत्ति कहा न, तो शुभभाव हुए। पुण्यभाव तो होते नहीं (हैं) व्यवहार-धर्म में। व्यवहार-धर्म कहा न, केवल व्यवहार नहीं कहा। केवल व्यवहार कहे तो पापभाव भी आ जाए। तो व्यवहार-धर्म माने पुण्य, शुभभाव; और उसके साथ ज्ञान के स्वरूप को जाने। तो ज्ञान के स्वरूप को जाने तो उसका फल होता है पुण्यभाव। पुण्यभाव भी साथ चलता है। ज्ञान अगर उनके स्वरूप को न जाने और केवल पुण्य के विकल्प करे, तो कुछ नहीं होगा। उनके स्वरूप को जानने से ही होता है, इसलिए उसको तीर्थ नाम देना बहुत सुंदर है।

उदाहरण के लिए जैसे किसी (का) एक कमरा है अपने घर में। और उसमें हम भोजन बनाते हैं, रसोई बनाते हैं। तो उस कमरे को भी रसोई के नाम से पुकारते हैं। उस कमरे को रसोई के नाम से पुकारना बहुत अच्छा है (मगर) उपादेय नहीं (है)। श्रद्धा करने लायक नहीं (है)। लेकिन यदि उसे रसोई नहीं कहा जाएगा तो भोजन की उपलब्धि ही नहीं होगी। तो फिर हम उपादेय से भी वंचित रह जायेंगे। क्योंकि जैसे बच्चा ये कहता है कि माँ भूख लगी है। अब रोटी कहाँ है? तो अगर वो ये जवाब दे कि रोटी जो है वो तो रोटी में है। अथवा रोटी जो है वो तो कटोरदान में है। तो वो पूछता है (कि) कटोरदान कहाँ है? कि कटोरदान कटोरदान में है। तो वो प्राप्ति नहीं होगी।

इसलिए कहना ही पड़ेगा कि वो रसोई में है। और वो रसोई तो वास्तव में भोजन को कहते हैं। उसको नहीं कहते हैं (रसोई के) पत्थर को और उसको (कोई) खाता भी नहीं है। लेकिन उसको अगर रसोई नाम न दें, तो असली रसोई की प्राप्ति नहीं होती। इसी तरह इन नवतत्त्वों को तीर्थ नाम ना दें तो असली तीर्थ की उत्पत्ति नहीं होती।

ये तो बम्बई है न! अब मुझे यदि कोटा जाना है, तो मैं बम्बई स्टेशन पर जाकर ये पूछूँगा कि कोटा का प्लेटफॉर्म कौनसा है? तो कोटा का प्लेटफॉर्म तो कोटा में होता है। बम्बई में कोटा का प्लेटफॉर्म कहाँ से आया? लेकिन यदि मैं ये नहीं पूछुँ (और) ये पूछुँ कि बम्बई का प्लेटफॉर्म कौनसा है, तो कोटा नहीं पहुँच सकूँगा। इसलिए मुझे ये असत्यार्थ कहना ही पड़ेगा वहाँ। (इस प्रकार का) असत्यार्थ-झूठ कहना ही पड़ेगा कि कोटा का प्लेटफॉर्म कौनसा है?

मुमुक्षु:- माने कोटा जानेवाली गाड़ी का प्लेटफॉर्म कौनसा है।

पूज्य बाबूजी:- ये अर्थ हुआ न उसका। पर कहना ये पड़ेगा कि कोटा का प्लेटफॉर्म कौनसा है। और कोटा से बम्बई आना हो तो बम्बई का प्लेटफॉर्म कौनसा है (ऐसा कहना पड़ेगा), यद्यपि (वो) वहाँ पर (कोटा में) नहीं है। असत् कहा न! अविद्यमान कहा न! है विद्यमान? नहीं है। तो भी कहा तो उपलब्धि हो गई वास्तविकता की। माने मुझे बम्बई मिल गया (मात्र) ये पूछने से। और यदि मैं केवल कोटा का प्लेटफॉर्म पूछता रहता तो मुझे वो नहीं मिलता।

मुमुक्षु:- माने सही तीर्थ के लिए नवतत्त्व को तीर्थ कहना, वो प्लेटफॉर्म है।

पूज्य बाबूजी:- प्लेटफॉर्म है वो। उस प्लेटफॉर्म तक आना पड़ेगा। अन्य कोई प्लेटफॉर्म इस विश्व में नहीं है, ये भी साथ में मानना पड़ेगा। अन्य कोई प्लेटफॉर्म दुनिया में नहीं है। केवल है, तो सर्वज्ञ प्रतिपादित ये सात तत्त्व हैं, और कुछ नहीं। ये अर्थ है उसका।

मुमुक्षु:- माने नवतत्त्वों का विचार शुभभाव की प्रवृत्ति है। वो शुभभाव की प्रवृत्ति अगर एकांत से पुण्य के भाव की होती तो पाप के साथ की ही होती थी। और ये नवतत्त्व का जो होगा तो वो तीर्थ कहलाया जाता है।

पूज्य बाबूजी:- नवतत्त्व का होगा तो उनके स्वरूप के ज्ञानपूर्वक पुण्यभाव प्रवर्तित होगा। शुभभाव प्रवर्तित होगा।

मुमुक्षु:- उनके स्वरूप के ज्ञानपूर्वक....

पूज्य बाबूजी:- शुभभाव प्रवर्तित होगा। क्योंकि ज्ञान नहीं होगा तो फिर छोड़ने की और उपादेय की बात कहाँ से पैदा होगी? ज्ञान होगा तभी तो ये छोड़ने लायक है और उपादेय एकमात्र भूतार्थ अर्थात् मेरा शुद्धात्मा है; गुरुदेव ने ऐसा ही फरमाया ही था।

मुमुक्षु:- ऐसा ही फरमाया था।

पूज्य बाबूजी:- उसे मस्तक चढ़ाकर ये उस पर विचार करता है।

मुमुक्षु:- माने नौ ही तत्त्व के ज्ञानपूर्वक जो प्रवृत्ति होती है, वो ज्ञानपूर्वक वाली प्रवृत्ति उसको तीर्थ कह दिया।

पूज्य बाबूजी:- वहाँ शुभभाव होते हैं उसको तीर्थ कहा है।

मुमुक्षु:- और कर्ता-कर्म की प्रवृत्तिवाला पुण्यभाव होता है, वो पाप सहित होता है।

पूज्य बाबूजी:- वो पाप सहित होगा!

मुमुक्षु:- तो उसे तीर्थ नहीं कहेंगे?

पूज्य बाबूजी:- मिथ्यात्व का पाप।

मुमुक्षु:- मिथ्यात्व का पाप! पर यहाँ तो ये बात आई बाबूजी कि शुद्धनय से भूतार्थ के जानने से, तो अब सही जानना कहा....

पूज्य बाबूजी:- भूतार्थ से जाने हुए नवतत्त्व सम्यग्दर्शन ही हैं। अब इसका क्या अर्थ हुआ? भूतार्थ मुख्य है उसमें। भूतार्थ से जाने गए, शुद्धात्मा की दृष्टि से जाने गए जो नवतत्त्व हैं, वे सम्यग्दर्शन हैं। तो भूतार्थ शुद्धात्मा हो गया और जो नवतत्त्व हैं, वो व्यवहार सम्यग्दर्शन में चले गए।

मुमुक्षु:- तो भूतार्थ साधन बन गया या भूतार्थ को जानना साधन बन गया?

पूज्य बाबूजी:- साधन कोई भी नहीं बना। नवतत्त्व साधन नहीं हैं। लेकिन साधन कहना इसका नाम व्यवहारनय और बाधक मानना इसका नाम निश्चयनय।

बाधक हैं। क्योंकि विचार नहीं करना है मुझे और मुझे करना (तो) है अनुभूति। मुझे ज्ञायक तक पहुँचना है। इसलिए ज्ञायक तक पहुँचने में ये बाधक हैं क्योंकि ये विचार आता है और मुझे पहुँचना (तो) है (वहाँ)। तो ये तो बीच में व्यवधान है इसलिए वास्तव में बाधक (है)। लेकिन यदि ये नहीं हों, यहाँ तक मैं नहीं आऊँ, इस जगह तक प्लेटफॉर्म तक, तो वो प्राप्त नहीं हो सकेंगे। इसलिए यहाँ मुझे आना पड़ता है। वो जाने गये प्रयोजनवान हैं - ऐसा आया १२ वीं गाथा में। व्यवहार जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। जान लिए गये हेयबुद्धि से। बस! हो गया काम।

मुमुक्षु:- बराबर! तो पहले भूतार्थ को जानना वो कार्य बनकर रह गया?

पूज्य बाबूजी:- भूतार्थ को जानना वो वास्तविकता है। वास्तविकता है। बात तो दोनों ही आएगी न कि ये नवतत्त्व हैं वो तू नहीं है। तू इनसे न्यारा एक शुद्ध चैतन्य की बात आई न! तो वो विचार करने लगा नवतत्त्व का। तो नवतत्त्व पर विचार करने लगा (और) उधर शुद्धात्मा का स्वरूप जाना। तो नवतत्त्व (का) विचार करते-करते विचार रुका और शुद्धात्मा में स्थापना हो गयी।

मुमुक्षु:- नवतत्त्व का विचार करते-करते विचार रुका और शुद्धात्मा में स्थापना हो गयी।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए यहाँ पर व्यवहार और निश्चय ये दोनों बताये हैं। ये दोनों बताए कि निश्चय की प्राप्ति के लिए व्यवहार कैसा चाहिए क्योंकि व्यवहार के अनेकरूप होते हैं। हम यदि यहाँ व्रत, समिति, गुप्ति का व्यवहार लावें तो उससे नहीं होगा। मुनियों के २८ मूलगुण का लावें तो नहीं होगा। श्रावक के १२ व्रतों का व्यवहार लायें तो नहीं होगा। नवतत्त्व के विचार को लायें तो सम्यग्दर्शन हो सकेगा, हो सकेगा। हो सकने की ग्यारंटी नहीं है। भूतार्थ का निश्चय हो और उसकी महिमा हो तो हो जाएगा।

मुमुक्षु:- तो ग्यारंटी?

पूज्य बाबूजी:- (हाँ!) तो ग्यारंटी।

मुमुक्षु:- तो ग्यारंटी वाली बात ही लेवें न फिर! व्यवहार क्यों सोचें?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ग्यारंटी वही करें न!

उसका अर्थ अन्य का अन्य, कुछ का कुछ किया जाता है, वो नहीं है उसका अर्थ। सीधा अर्थ ये है उसका कि व्यवहार-निश्चय ये दो बताए हैं। व्यवहार की भूमिका कैसी होती है सम्यग्दर्शन के लिए? सम्यग्दर्शन के लिए व्यवहार की भूमिका सात तत्त्वरूप, सात तत्त्व के विचाररूप है। पुण्यभाव उसके साथ-साथ चलता है।

मुमुक्षु:- सम्यग्दर्शन के लिए सात तत्त्वों की भूमिका....

पूज्य बाबूजी:- सात तत्त्व के स्वरूप को जानकर, सात तत्त्व का विचार - ये उसकी भूमिका है। और इससे भिन्न फिर होगा वो पुरुषार्थ। नवतत्त्व कोई साधन हों और नवतत्त्व कोई कारण हों, तो (ऐसा) नहीं (है)। लेकिन नवतत्त्व के विकल्प तोड़कर और फिर शुद्धात्मा का विकल्प करे और शुद्धात्मा का विकल्प भी तोड़कर शुद्धात्मा में स्थापित हो जाए, तो होगा।

मुमुक्षुः- बड़ा लंबा दिखता है।

पूज्य बाबूजीः- लंबा तो नहीं है, एक क्षण में हो जाता है। एक क्षण में हो जाता है।

नवतत्त्व का विचार किया कि इनमें से मैं हूँ ही नहीं, कोई भी नहीं (हूँ) नवतत्त्व में मैं। पहला जीवतत्त्व भी मैं नहीं। पहला जीव तत्त्व माने देव-नारकी कहलाता है। और पहला जीवतत्त्व जो मनुष्य, तिर्यंच, नारकीवाले जीवतत्त्व से न्यारा ज्ञायक (है) चिन्मात्र, वो जीवतत्त्व। वो!

इसलिए नवतत्त्व को यदि पर्यायार्थिकनय से लें, तो फिर दसवाँ होता है वो ज्ञायक। वो ज्ञायक दसवाँ होता है। ये सब पर्यायार्थिकनय के विषय हैं सारे के सारे। पहला जीवतत्त्व भी पर्यायार्थिकनय का विषय है।

मुमुक्षुः- नवतत्त्व को पर्यायार्थिकनय से लें तो ये तत्त्व दसवाँ बन जाता है।

पूज्य बाबूजीः- दसवाँ होता है। हाँ!

मुमुक्षुः- क्योंकि पर्यायमात्र से रहित उसका स्वरूप है।

पूज्य बाबूजीः- भिन्न है वो, नौ से ही भिन्न है। नौ से वो भिन्न है। नौ को कहा परद्रव्य, नव तत्त्वों को कि - परद्रव्य (हैं)। तो मिथ्यादृष्टि को नवतत्त्व का श्रद्धान होता है। तो श्रद्धान होता है वो मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षुः- क्योंकि वो पर्याय सहित का जीव (है)।

पूज्य बाबूजीः- क्योंकि वो भूतार्थ से नहीं जानता है उनको। भूतार्थ से नहीं जानता उनको। नवतत्त्व को जानता है! ये जानता है कि नवतत्त्व के विचारपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है - ऐसा जिनवाणी में लिखा है। तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है - ऐसा लिखा है। तो वो तत्त्वों का श्रद्धान करने लगता है। नौ हैं, नौ का स्वरुप ये है - इस तरह विचार करने लगता है। मेरे (को) आस्रव-बंध हैं। इन आस्रव-बंध को तोड़कर संवर-निर्जरा प्रगट करके मोक्ष चला जाऊँगा। बस! ऐसा करता है। ये मिथ्यात्वरूप प्रवृत्ति है। क्योंकि नौ की श्रद्धा है - वो आत्मा है एक और एकरूप। नौ हैं, वो नौ रूप हैं।

मुमुक्षुः- एक है और एकरूप है, माने क्या?

पूज्य बाबूजीः- एक है, एकरूप रहनेवाला सदा। ये नौ हैं, (ये) नौ रूप हैं।

मुमुक्षुः- तो वो नौ रूप नहीं होनेवाला?

पूज्य बाबूजीः- नौरूप है ही नहीं वो, वो है ही नहीं। लेकिन (रहता) है वो नौ के बीच में (ही)। ये नौ के बीच में (ही रहता) है। पर नौ के बीच में रहने पर भी वो नौ रूप नहीं होता, वो एकरूप ही रहता है सदा ही। कुछ भी हो लेकिन वो बिगड़ता नहीं है।

प्रकाश है जैसे, प्रकाश! इस पृथ्वी पर सब जगह प्रकाश फैला हुआ है। अब उस प्रकाश में हम कितना इत्र छिड़कें कि वो प्रकाश जो है वो सुगंधित हो जाए? (या फिर यूँ कहें कि) अटैची बंद करो वरना ये (प्रकाश) नोट ले जाएगा। तो प्रकाश पर इतना भरोसा रहता है।

उसी तरह ज्ञान पर इतना भरोसा, ज्ञानमय चिदात्मा पर इतना भरोसा होना चाहिए।

मुमुक्षुः- माने नौ तत्त्व में भी....

पूज्य बाबूजीः- नौ तत्त्व सम्यग्दर्शन नहीं हैं।

मुमुक्षुः- और (उनके) बीच में रहकर भी वो अलग है।

पूज्य बाबूजीः- (नवतत्त्व) सम्यग्दर्शन के विषय अर्थात् सम्यग्दर्शन के निमित्त कहे जाते हैं यदि सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ नवतत्त्व के विचार से अलग किया जाए, तो निमित्त कहे जा सकते हैं। अन्यथा निमित्त भी नहीं हैं। कार्य हो तो निमित्त कहलाता है।

मुमुक्षुः- नवतत्त्व में छिपी हुई आत्मज्योति....

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वही नवतत्त्व में छिपी हुई (अर्थात्) नौ में रहती है (वो)। नौ में रहती है।

इसमें एक प्रश्न और होता है कि जैसे (आत्मज्योति) जीवतत्त्व में तो रही, पहले (तत्त्व) में। जैसे मनुष्य है तो ये मनुष्य देह है, मनुष्याकार और ये पुद्गल का आकार है। तो इसके भीतर आत्मा है कि नहीं है? है न! ज्ञायक है न इसके भीतर। शुद्धात्मा है या नहीं? इसीतरह अजीव (तत्त्व है)। तो अजीव में तो होता नहीं है लेकिन शुद्धात्मा। फिर नवतत्त्व में छिपी हुई ज्योति (क्यों) कहा है? तो वो तो उसको तो सार्थक करना पड़ेगा न वचन को, आचार्य को। तो वो अजीव में कैसे छुपा हुआ है आत्मा? अजीव नहीं, अजीव के संबंध में चलनेवाले विकल्प, उसको अजीव कहा है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! अजीव का ज्ञान! बहुत सुंदर! अजीव के संबंध में चलनेवाले विकल्प...

पूज्य बाबूजीः- विकल्प उनको अजीव कहा है।

मुमुक्षुः- अजीव को तो अजीव कहने की जरूरत ही कहाँ है?

पूज्य बाबूजीः- अजीव में तो आत्मा होता ही नहीं है। उसमें तो होगा ही नहीं। तो अजीव के संबंध में चलनेवाले जो विकल्प हैं - ये मेरा नहीं है, ये भिन्न है इत्यादि।

मुमुक्षुः- माने देह के संबंध में चलनेवाले विकल्प अजीव हैं।

पूज्य बाबूजीः- अजीव हैं।

मुमुक्षुः- देह अजीव है, अभी उसकी बात तो है ही नहीं।

पूज्य बाबूजीः- वो तो है ही सही अजीव लेकिन ये भी अजीव है, उनके संबंध में होने वाले (विकल्प)।

मुमुक्षुः- माने भूख का ज्ञान होवे वो विकल्प अजीव है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ!

मुमुक्षुः- यहाँ अजीव में से जीव खोजना है?

पूज्य बाबूजीः- उन विकल्पों में तो जीव बैठा है, शुद्धात्मा बैठा है। वरना नौ कैसे रहेंगे? आठ रह जायेंगे फिर (तो)। आचार्यों का वचन नौ का है, नवतत्त्व में छिपी हुई (आत्मज्योति)। और

में तो (जीव) होता ही है, आस्रव में होता है, बंध में होता है, संवर में होता है और निर्जरा में होता है, मोक्ष में होता है। और का जब अभाव हो जाता है, तो वो मोक्ष में रहता है। मोक्ष में रहता है। रहता ज्ञायक ही है, वो (ही) जो शुरू से चला था।

मुमुक्षुः- आस्रव-बंध में कैसे रहता है?

पूज्य बाबूजीः- आस्रव-बंध में भी है, वहीं है वो तो। आस्रव-बंध ही नहीं होगा अगर आत्मा नहीं हो तो। किसको होगा? पत्थर को होगा क्या? दीवार को होगा? तो फिर नहीं होंगे। तो आत्मा तो होना चाहिए पहले। आत्मा हो (पहले) कि (फिर) उसकी पर्याय बिगड़े (तो) उसका नाम आस्रव-बंध (कहा जाए)। आत्मा को नहीं जानने से आत्मा की पर्याय बिगड़े, मलिन हो, उसका नाम आस्रव-बंध है।

मुमुक्षुः- वो कर्म जड़ बंधते है, वो द्रव्यकर्म आस्रव-बंध (हैं)?

पूज्य बाबूजीः- वो अलग बात है, वो अलग बात। वो अजीव में चला जाएगा।

मुमुक्षुः- पर्याय का जो बिगाड़ है, उसे आस्रव-बंध कहते हैं।

पूज्य बाबूजीः- उसको आस्रव-बंध कहते हैं। वो (तो) अजीव में चला जाएगा कर्म, नोकर्म।

मुमुक्षुः- बराबर! पर्याय में जो विकार है, वो आस्रव है। कभी-कभी हम भावकर्म को परद्रव्य भी कह देते हैं।

पूज्य बाबूजीः- भावकर्म, पुद्गल!

मुमुक्षुः- जीव के?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! जीव के (हैं - ये) तो पहले कहा था हमने। अब chapter (पाठ) बदल गया। पाठ बहुत आगे बढ़ गया अब। पाठ बहुत आगे बढ़ गया। बीस बरस तक हमने बेटी को अपना कहा लेकिन (वो) एक क्षण सातवें फेरे का, उसके बाद कहना छोड़ दिया।

मुमुक्षुः- माने ज़ुबान नहीं बदली।

पूज्य बाबूजीः- बस, कहना है! कहना है, भले ही कहने को कहें। लेकिन मानना तो बिल्कुल छोड़ ही दिया कि एक percent (प्रतिशत) भी अब हमारी नहीं है। कहा बीस बरस तक। इसलिए पहले chapter (पाठ) की थी ये बात। अब chapter (पाठ) बदल गया (और) प्रयोग का (पाठ) चल गया।

मुमुक्षुः- प्रयोग का (पाठ) चल गया। ज़ुबान नहीं बदली, प्रयोग का chapter (पाठ) बदल गया।

निश्चयनय आश्रित मुनिवरा[57] - आश्रय करना तो पर्याय का स्वभाव है। तो आश्रय के समय में कर्ता-कर्म की अनुभूति होती है?

57 आश्रय करना तो पर्याय का स्वभाव है। तो आश्रय करने में कर्ता-कर्म की अनुभूति होती है? - 42.02 Mins

पूज्य बाबूजी:- नहीं! नहीं! आश्रय करने का अर्थ वो पर्याय अपने भीतर ही आश्रयरूप-लक्षरूप प्रवर्तित होती है, उसका नाम आश्रय। पर्याय अपने भीतर ही भीतर उस शुद्धात्मा के लक्षरूप प्रवर्तित होती है, उसका नाम आश्रय कहलाता है। आश्रय माने साक्षात् आश्रय नहीं (कि) जैसे कोई दीवार का सहरा लेकर बैठता है, ऐसा आश्रय नहीं।

मुमुक्षु:- भीतर माने, भीतर माने क्या?

पूज्य बाबूजी:- भीतर माने मैं ज्ञायक हूँ, बस ये। ये आश्रय, इसका नाम आश्रय (है)।

मुमुक्षु:- पर ये बाबूजी! इतना नजदीक है कि ऐसा लगता है कि (मानो) अपने में आ गया (हो)।

पूज्य बाबूजी:- विषय बन जाता है वो, विषय बन जाता है।

मुमुक्षु:- ये जो रागादिभाव हैं, वो इतने नजदीक हैं कि जैसे हमारे क्षेत्र में आ गये हों, ऐसा भी तो लगता है न!

पूज्य बाबूजी:- ऐसा लगता है, बस वही है; वही झंझट है सबसे बड़ी। ऐसा लगता है...

मुमुक्षु:- बहुत पास में रहते हैं बाबूजी!

पूज्य बाबूजी:- ऐसा लगता है... तो और बारीक अनुसंधान करना चाहिए क्योंकि मेल तो है नहीं दोनों में। वो शुद्ध है, पवित्र है, निर्मल है, निर्दोष है।

मुमुक्षु:- वो सब बात कबूल!

पूज्य बाबूजी:- नित्य है। और इधर ये है उससे बिल्कुल विपरीत है। इसका अर्थ ये कि दोनों में कहीं न कहीं, कोई न कोई संधि है। बस! उस संधि पर प्रज्ञा की चोट करना चाहिए तो दो दिखाई देते हैं। हैं दो (और) दो ही दिखाई देंगे।

मुमुक्षु:- ये संधि देखना मुश्किल है क्योंकि ये बहुत पास में हैं।

पूज्य बाबूजी:- मुश्किल कुछ भी नहीं है। दोनों अपने स्वलक्षणों से जाने जाते हैं - ये आचार्यों ने कहा है। तो कैसे जानें अच्छा? कि ज्ञान का जो लक्षण है, वो जाननेरूप है, वो तो चेतन है। और इनका जो लक्षण है वो बिल्कुल अचेतन है। क्योंकि ये चेतन में पाए जाने पर भी वास्तव में इनका जो स्वभाव है, वो अचेतन है। चेतन जैसा इनका स्वभाव और स्वरूप (बिल्कुल) नहीं है। बस! ये संधि जान ली इनकी। बारीक से बारीक जान लेते हैं न! नकली-असली कैसे जानते हो आप? कैसे जान लेते हो?

मुमुक्षु:- उसको तो बहुत अच्छी तरह से जानते हैं।

पूज्य बाबूजी:- बस! ऐसा ही है। तो ये नकली है, ये नकली आत्मा है।

मुमुक्षु:- क्योंकि ये लक्षण जो है, एक जड़भावरूप (और) एक चेतनभावरूप, वो वर्तमान में भी थोड़ा सा स्थिरता से विचार करें तो दोनों के लक्षण अलग हैं, वो समझा जा सकता है। पर प्रदेश इतने बाजू में हैं कि वो समझने पर भी गलती हो जाती है।

पूज्य बाबूजी:- प्रज्ञा तीक्ष्ण हो तो कुछ भी गलती नहीं होती है। एक जो ज्वेलर होता है न! (वो) सोने की एक डली लेता है। उसमें आधा सोना है और आधा तांबा है और वो बिल्कुल उसमें संधि कर लेता है। संधि है या नहीं उसमें? और बिल्कुल एक दिखाई देती है। चीज एक देखाई देती है लेकिन दो हैं और उसमें बीच में संधि है। तो वो संधि को देख लेता है कि आधा सोना है और आधा तांबा है।

बस! इसी तरह ये देखे कि यह डली है। ये आस्रव-बंध और ज्ञायक - ये एक डली, एक स्कन्ध जैसा है। (पुद्गल के जैसा) स्कन्ध नहीं है पर एक (पिंडरूप) स्कन्ध जैसा है। (तो) देख लेता है जो ज्ञानी होता है कि इसका तो अलग है, स्वरूप ही अलग है। बिल्कुल स्वरूप ही अलग है।

मुमुक्षु:- उसको प्रज्ञा-छैनी कह देते हैं।

पूज्य बाबूजी:- बस! वो प्रज्ञा से निकाल देता है।

मुमुक्षु:- प्रज्ञा का पूरा अर्थ माने क्या?

पूज्य बाबूजी:- प्रज्ञा माने ज्ञान!

मुमुक्षु:- ज्ञान! माने ज्ञान की पर्याय।

पूज्य बाबूजी:- एक जो इत्रवाला है, वो किसी राजा के पास इत्र लाया। और (वो) बहुत अच्छा इत्रवाला कहलाता था। तो उसको तो विश्वास ये था कि मेरे इत्र को कोई ठुकरा नहीं सकता। माने pass (उत्तीर्ण) न करे ऐसा नहीं हो सकता। वो राजा के पास लाया और राजा को उसने वो गुलाब का इत्र दिया। राजा ने सूँघकर कहा कि जाओ जहाँ भैंसें बाँधते हैं, वहाँ (इसको) फेंक दो। तो वो इत्रवाला बड़ा हैरान हुआ कि क्या बात है? तलाश करना चाहिए।

तो फिर इत्रवाले ने तलाश किया तो क्या था कि वो जो गुलाब की बाड़ी थी, उस गुलाब के फूलों की बाड़ी में जो पानी आता था वो प्याज के खेत से आता था। तो राजा ने कहा कि इसमें प्याज की बू आती है। प्याज की बू आती है। अब ये संधि कैसे देख ली उसने?

कोई ये राजस्थान के नरेश की बात (है)। सच्ची घटना है! राजस्थान में ऐसे नरेश हुए हैं (कि जैसे) पानी लाता है नौकर। तो वो (राजा) कह देगा कि ये यह वहाँ का (पानी) है, बीकानेर के घड़े का। फिर कोई दूसरा लाएगा तो कहे कि ये जैसलमर के घड़े का है।

मुमुक्षु:- वो की खुशबू से मालूम पड़ जाता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! उससे पता लगता है।

सामान्य आदमी होता तो (उसको तो) खुशबू आती। लेकिन उसने (तो) ज्ञान को बहुत बारीक, सूक्ष्म और तीक्ष्ण करके वैसे देखा न कि इसमें से तो प्याज की गंध आती है। फेंक दे इसको जहाँ, अपन भैंसें बाँधते हैं (वहाँ)।

मुमुक्षु:- पर बाबूजी! वहाँ तो दो मूर्त्त पदार्थ हैं। यहाँ तो एक मूर्त्त है (और) एक अमूर्त्त है। वो दिक्कत वाली बात है।

पूज्य बाबूजी:- वो आराम से हो सकता है, लक्षणों से। (मूर्त्त-अमूर्त्तपने का) कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। लक्षणों से देखा जाए तो तुरंत समझ में आता है।

मुमुक्षु:- जाननभावरूप ज्ञान है, बात तो ये है।

पूज्य बाबूजी:- बिल्कुल जाननभावरूप है।

मुमुक्षु:- और आकुलताभावरूप राग है - ये बिल्कुल सही है।

पूज्य बाबूजी:- राग तो आकुलतारूप है ही सही। स्थिर रहता नहीं है (वो)। उसका कोई विषय नहीं (है)। सबसे बड़ी कमजोरी उसकी ये है कि वो जिसको विषय बनाता है उसको ग्रहण ही नहीं कर पाता, अनादि-अनंत। अभव्य हो और कोई शुभ राग भी करता है, अशुभ भी करता है, सभी तरह का करता है। एक भी विषय का एक कण भी ग्रहण नहीं कर सकता। सबसे बड़ी कमजोरी ये है। इसलिए व्यर्थ है वो (राग) - ये राग की व्यर्थता (है)।

और ज्ञान जब अपने स्वरूप में जमता है तो आनंद के फव्वारे चलते हैं। ज्ञान का वो श्रम ऐसा है। इसलिए राग के लिए तो श्रम करना ही व्यर्थ है, चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो।

मुमुक्षु:- ज्ञान कभी खाली हाथ नहीं आता। राग तो खाली हाथ आता-जाता रहता है।

पूज्य बाबूजी:- खाली हाथ आता है बिल्कुल। वो तो एकदम छोड़ो! आचार्य तो यूँ कहते हैं (कि) एकदम छोड़ दो। उत्साह ऐसा है आचार्यों का (क्योंकि) कुछ नहीं मिल सकता है। कभी भी, कुछ नहीं मिलेगा (इनसे)।

मुमुक्षु:- कभी भी कुछ नहीं मिलेगा।

पूज्य बाबूजी:- कुछ नहीं मिलेगा, जरा सा भी। इसलिए व्यर्थ है वो। उसके लिए किया गया श्रम भी बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि कोई उत्पादन नहीं (है उसका)। उत्पादन है तो (मात्र) आकुलता है।

मुमुक्षु:- क्योंकि प्राप्ति की इच्छा (जंखना) होती है और प्राप्त कुछ होता नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- प्राप्त कुछ होता नहीं है।

मुमुक्षु:- और फल तो आकुलता ही है।

पूज्य बाबूजी:- आकुलता ही आकुलता है, सर्वत्र।

मुमुक्षु:- और ज्ञान कभी खाली हाथ नहीं आता।

पूज्य बाबूजी:- कभी खाली हाथ नहीं रहता।

मुमुक्षु:- तो वो ज्ञायक के सन्मुख होवे तो भी थोड़ी बहुत तो खुशी लेकर आता है।

पूज्य बाबूजी:- उसमें जो भरा हुआ है उसको (वो) लेकर ही आता है।

मुमुक्षु:- कि अगर या तो थोड़ा उसकी ओर झुके, तो भी थोड़ी बहुत खुशी लेकर आ जाता है।

पूज्य बाबूजी:- खुशी होती है न! विषय जैसी खुशियाँ नहीं होती।

मुमुक्षु:- हाँ! (मगर) वो अलग किसम की होती है। वो बात सही है एकदम।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए उसको सविकल्प स्वसंवेदन कहा।

मुमुक्षु:- [58]बहुत सुंदर! बाबूजी! ये नवतत्त्व को अवस्तु जो बोला है वो कितना यथार्थ है?

पूज्य बाबूजी:- अवस्तु हो गई न! वहाँ से छूटकर कि ये नौ प्रकार का नहीं हूँ मैं, मैं केवल एक ही प्रकार का हूँ। बस! ऐसा जानकर छूट गया तो अवस्तु हो गई वो। वस्तु तो अब केवल ज्ञायक बन गया। अगर उनको भी वस्तु माने तो उधर भी ज्ञान जाएगा फिर।

ज्ञायक की ओर जब सन्मुख होता है ये, तो इससे पूछा जाए (कि) तुझे क्या दिख रहा है? तो उसके आसपास सब हैं, वहीं पर ही ये नवतत्त्व हैं, वहीं पर जहाँ ज्ञायक है। लेकिन जिसने ज्ञायक को एकदम सीधा जिसका लक्ष्य-वेध करना (उद्देश्य) बनाया है, लक्ष्य-वेध, तो वो उससे पूछा जाए कि तुझे क्या दिखाई दे रहा है? मुझे तो एकमात्र ज्ञायक दिखाई दे रहा है। और नौ कहाँ गए? कि नौ हैं ही नहीं, अवस्तु हैं। नौ हैं ही नहीं। अगर वो उनकी भी सत्ता स्वीकार करे, तो वो कभी भी ज्ञायक का लक्ष्य-वेध नहीं कर सकेगा।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! कभी नहीं कर सकेगा।

पूज्य बाबूजी:- लक्ष्य-वेध का तरीका ही यही है।

मुमुक्षु:- अर्जुन क्या दिखता है तुझे?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! अर्जुन का उदाहरण जरा अच्छा नहीं आता है कि एक आँख दिखती है। ये ज़रा अच्छा नहीं लगता है क्योंकि वो हिंसक थोड़े ही था। चाहे वो भले ही कि कोई कहे कि वो तो मिट्टी की थी। तो भी मिट्टी की हो तो भी पाप तो लगता है, बराबर का।

मुमुक्षु:- माने जिसको पाना है वही देखता है।

पूज्य बाबूजी:- इसलिए वो उदाहरण देना नहीं चाहिए। दूसरे प्रकार का देना चाहिए। दूसरा उदाहरण है।

मुमुक्षु:- [59]दो-तीन दिन पहले एक दूसरी बात आई थी प्रभु! कि पर्याय की जो बात चल रही थी कि कथंचित् सत् और कथंचित् असत् - ये किस तरह (से) स्पष्ट (होता है)?

पूज्य बाबूजी:- पर्याय है वो केवल वर्तमान समयमात्र होती है, विद्यमान पर्याय। शेष जो भूत और भविष्य की पर्याये हैं वे अभी नहीं हैं, इसलिए वे असत् (हैं)। असत् तो हैं लेकिन वे होनेवाली हैं, वे होंगी। और होंगी तो वर्तमान पर्याय का व्यय होकर और नई पर्याय आएगी। ये नई पर्याय पहले नहीं थी और नई आई है - इस ओर से देखा जाए तो असत् का जन्म मालूम होता है। और असत् के जन्म से, सर्वथा असत् के जन्म से जैनदर्शन इनकार करता है। बल्कि सारे ही दर्शन इनकार करते हैं। गधे के सींघ कभी नहीं हो सकते, आकाश में फूल कभी नहीं हो सकते।

58 नवतत्त्व को जो अवस्तु बोला है वो कितना यथार्थ है? - 51.11 Mins

59 पर्याय कथंचित् सत् और कथंचित् असत् कैसे है? - 53.11 Mins

इस तरह जो असत् है उसका जन्म नहीं हो सकता। इसलिए जैनदर्शन कहता है कि ये कथंचित् असत् है। कथंचित् असत् है अर्थात् इसके पीछे एक शक्ति पड़ी है, एक गुण पड़ा है। और वो गुण पड़ा है तो वो पर्याय पैदा होती है। अगर गुण न हो तो ये पर्याय पैदा नहीं होती। इसलिए सत् रूप गुण पड़ा है और वहाँ से ये उत्पन्न हो रही है इसीलिए ये कथंचित् सत् है; सर्वथा असत् नहीं है। सर्वथा असत् तो तब हो जब उसके पीछे गुण (ही) नहीं हो।

मुमुक्षुः- बराबर! बराबर! बिल्कुल सही बात है!

पूज्य बाबूजीः- बिना गेहूँ की रोटी बन जाए तब तो ठीक माना जा सकता है। लेकिन रोटी बन रही है तो वहाँ गेहूँ नहीं दिखायी देता। लेकिन कैसे बनी? कहते हैं (कि वहाँ) गेहूँ था, गेहूँ था।

मुमुक्षुः- रोटी बन रही है तो गेहूँ दिखायी नहीं देते। फिर भी हैं कि नहीं? वो सत् भी है और असत् भी है।

पूज्य बाबूजीः- इस तरह शक्ति पड़ी है। इसलिए कथंचित् सत् है (और) कथंचित् असत् है।

मुमुक्षुः- माने पर्यायों के पीछे जो शक्ति पड़ी है गुणरूप.....

पूज्य बाबूजीः- 'कथंचित् असत् है' का अर्थ ये हुआ कि पहले नहीं थी और नयी पैदा हुई है - ये तो हुआ कथंचित् असत्। और कथंचित् सत् का अर्थ ये हुआ कि इसके पीछे एक ध्रुव नित्य गुण पड़ा है। इसलिए वहाँ से यह पर्याय आई है तो ये कथंचित् सत् हुई। सर्वथा असत् नहीं (है)।

मुमुक्षुः- कथंचित् सत् है, उस अपेक्षा से वो गुण की पर्याय कही जाती है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! गुण की पर्याय कही जाती है।

मुमुक्षुः- वो चाहे हो न हो पर उसके पीछे कोई था, है (और) रहेगा। उस अपेक्षा से वो सत् है। और जो वर्तमान में वो पहले नहीं थी......

पूज्य बाबूजीः- इसलिए असत् है।

मुमुक्षुः- असत्!

बाबूजी! इसी तरह कथंचित् भिन्न-अभिन्न का concept (सिद्धांत) थोड़ा clear (स्पष्ट) कीजिए।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न! पर्याय कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है आत्मा से क्योंकि एक ही पदार्थ की है। एक पदार्थ के जितने अवयव होते हैं, वे सब अभिन्न भी होते हैं और भिन्न भी होते हैं। तो कथंचित् तो भिन्न है अर्थात् अलग-अलग हैं, न्यारे-न्यारे हैं और अपना काम न्यारा-न्यारा करते हैं। और एक पदार्थ के ही हैं ये सारे के सारे, उससे अलग नहीं हैं इसलिए अभिन्न भी हैं।

जैसे हाथ है तो इस शरीर से अलग कर दिया जाए, तो फिर इसको क्या मनुष्य कहेंगे क्या? होगा ही नहीं। इसलिए अभिन्न भी है और भिन्न भी है। दोनों भिन्न-भिन्न, न्यारा-न्यारा काम करते हैं, अपना-अपना। और अभिन्न इसलिए हैं कि वो कभी द्रव्य से अलग होते नहीं हैं।

मुमुक्षुः- तो भिन्न-अभिन्न दोनों ही ज्ञान अपेक्षा से लेना? कि एक में ज्ञान अपेक्षा (और) दूसरे में श्रद्धा अपेक्षा?

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान ही है दोनों, दोनों ज्ञान हैं। अनेकांत में ज्ञान ही लगता है।

मुमुक्षुः- बराबर! अनेकांत में ज्ञान ही लगता है।

पूज्य बाबूजीः- ज्ञान ही लगता है।

मुमुक्षुः- तो बाबूजी! हर समय की ऐसी ही स्थिति चलती है न? हर समय कथंचित् भिन्न-अभिन्न?

पूज्य बाबूजीः- हर समय की स्थिति (है) वो एक बार जानकर छोड़ देना। एक बार जानकर छोड़ देना और भिन्न को ले लेना।

मुमुक्षुः- जो प्रश्न था वो इसी का था।

पूज्य बाबूजीः- क्योंकि अभिन्न किया तो अभिन्न करने से कुछ लाभ नहीं होगा, फायदा नहीं होगा। इतनी ज्ञान में ताकत है सोचने की। और अभिन्न कर देने पर तो दोष भी बहुत आयेंगे। लेकिन अभिन्न नहीं कहे तो फिर कोई दूसरा ले जाएगा (उसको)। इसलिए उसी वस्तु की है वो, अन्य की नहीं है (ऐसा कहा)। लेकिन स्वरूप दोनों के न्यारे-न्यारे हैं इसलिए भिन्न है। तो दोनों में से जब हेय-उपादेय की ओर से हम बात करेंगे, तो पर्याय कभी भी उपादेय नहीं हो सकती क्योंकि वो स्थिर नहीं रहती (है)। वो आती है और चली जाती है। यदि उसे आत्मा मान लिया जाए और उपादेय मान लिया जाए, तो फिर प्रतिसमय मृत्यु का अनुभव होगा और तीव्र वेदना होगी। तीव्र वेदना!

मुमुक्षुः- माने दूसरे की अपेक्षा अभिन्न है और हेय-उपादेय की अपेक्षा वो भिन्न है?

पूज्य बाबूजीः- हेय-उपादेय की अपेक्षा लिया जाए, तो जब हेय करेंगे तो पर्याय को हेय-कोटि में रखेंगे। और केवल द्रव्य है वो उपादेय-कोटि में आएगा। तो दोनों की परीक्षा करेंगे कि दोनों में से मेरे लिए कौन है अहम् करने लायक? - ये परीक्षा करना है। तो इस परीक्षा में जो द्रव्य है, वो pass (उत्तीर्ण) होगा और पर्याय fail (अनुत्तीर्ण) हो जाएगी।

मुमुक्षुः- मेरे लिए दोनों में से उपादेय करने लायक कौन है? ये परीक्षा...

पूज्य बाबूजीः- परीक्षा करेगा ज्ञान। ज्ञान ये प्रश्न करेगा (और) फिर दोनों में से select (चयन) करेगा, दोनों का स्वरूप जानकर।

मुमुक्षुः- तो द्रव्य pass (उत्तीर्ण) हो जाएगा, पर्याय नापास हो जाएगी।

पूज्य बाबूजी:- और फिर ये भी करेगा कि अब तक तो ये पर्याय का अवलंबन रहा, लेकिन एक क्षण के लिए भी आराम नहीं मिला। इसका अर्थ ये है कि आराम किसी दूसरे के अवलंबन से होगा। इसके अवलंबन से नहीं हो सकता। और दूसरा (कुछ) है तो वो केवल चिन्मात्र ज्ञायक ही है, इसके अलावा। (इसलिए) उसी की उपादेयता से होगा।

मुमुक्षु:- माने उसके पास अभी कोई चारा ही नहीं रहा। द्रव्य को स्वीकृत करने के बजाय चारा ही नहीं रहा क्योंकि पर्याय को स्वीकृत करते-करते तो अनंतकाल से दुखी हुआ (है)।

पूज्य बाबूजी:- अनंतकाल से दुखी हुआ - जानेगा न वो इस बात को कि - ये तो मैंने किया है। प्रयोगात्मक किया है ये तो मैंने।

मुमुक्षु:- और वहाँ रहते-रहते सुख की इच्छा तो रही है जागृत।

पूज्य बाबूजी:- रही है, बराबर।

मुमुक्षु:- इस अपेक्षा से सोचा जाए तो बहुत सरल लगता है (कि) दोनों में से एक ही choose (चयन) करना है।

पूज्य बाबूजी:- दोनों में से selection (चयन) कर ले, उसमें क्या है और?

मुमुक्षु:- तो सरल है!

पूज्य बाबूजी:- Selection (चयन) कर ले दोनों में से।

मुमुक्षु:- तो तो बात सरल है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ!

मुमुक्षु:- [60]पर्याय को एक समय का सत् कहते हैं, वो किस प्रकार से?

पूज्य बाबूजी:- एक समय की सत् है। ठीक है! और क्या है? एक समय ही रहती है।

मुमुक्षु:- इसी हिसाब से लेना? इसी हिसाब से लेना? किस प्रकार से लेना वो?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! एक समय की है। क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर है! क्षण (भर) रहती है (और) फिर भंग हो जाती है - इसका नाम क्षणभंगुर। एक क्षण के लिए रहती है फिर भंग हो जाती है। तो ये क्षणभंगुर है और क्षणभंगुर का जो आश्रय है वो कभी भी आराम नहीं दे सकता। जैसे बालू की दीवार हो और उसके सहारे खड़ा हो जाए फिर क्या होगा?

मुमुक्षु:- गिरेगा, उसी समय गिर जाएगा।

पूज्य बाबूजी:- गिर जाएगा।

मुमुक्षु:- [61]बाबूजी! १३वीं गाथा में लिखा है कि **शुद्धनयरूपसे स्थापित आत्माकी अनुभूति होती है।** इसमें **शुद्धनयरूपसे स्थापित आत्मा** और **अनुभूति होती है।** बाबूजी इन दो का थोड़ा स्पष्टीकरण (कीजिए)।

60 पर्याय को एक समय का सत् किस प्रकार से कहते हैं? - 1.01.20 Hours

61 समयसार १३वीं गाथा। - 1.02.12 Hours

पूज्य बाबूजी:- एक ही बात है। शुद्धनय से, क्या है वचन?

मुमुक्षु:- शुद्धनयरूपसे स्थापित आत्माकी अनुभूति होती है।

पूज्य बाबूजी:- शुद्धनयरूपसे स्थापित आत्माकी अनुभूति होती है — जिसका लक्षण आत्मख्याति है शुद्धनय है वो आत्मा की अनुभूतिस्वरूप ही है। शुद्धनयरूप से स्थापित है वो अनुभूति। माने शुद्धनय है वो आत्मा का अनुभव करता है, स्वयं गायब होकर।

मुमुक्षु:- स्वयं गायब होकर।

पूज्य बाबूजी:- हो गया (समय)?

मुमुक्षु:- सही बात तो ये है (कि) हो गया (अनुभव)।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

<u>जिनवाणी-स्तुति</u>

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर २०, तारीख १३-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षुः- [62]पूज्य बाबूजी! प्रश्न है (कि) ९-१०वीं गाथा से (कि) जो द्वादशांग को जानता है वह तो श्रुतकेवली है और आत्मा को जाननेवाले को भी श्रुतकेवली कहा जाता है।

फिर से। प्रश्न है कि - द्वादशांग को जो जाने उसको तो श्रुतकेवली कहा है और साथ में आत्मा को जो जाने उसको भी श्रुतकेवली कहा है। द्वादशांग को जानना वो तो पर का जानना होता है। और आत्मा के जाननेवाले को श्रुतकेवली कहें - तो ये बात (में) जरा समस्या है, समझाईये।

पूज्य बाबूजीः- द्वादशांग का जो केंद्र है वो एकमात्र शुद्धात्मा है। द्वादशांग के हृदय में जो बैठा है वो एकमात्र शुद्धात्मा है। द्वादशांग में से जो शुद्धात्मा अलग कर दिया जाए तो कुछ बचता नहीं है। इसलिए द्वादशांग के निमित्त से माने द्रव्यश्रुत के निमित्त से जो शुद्धात्मा को सीधा जानता है, शुद्धात्मा के अभिमुख होकर जो शुद्धात्मा का वेदन करता है, उसको निश्चय श्रुतकेवली कहा है। और शुद्धात्मा (का) वेदन ही निश्चय सम्यग्ज्ञान है। और श्रुतकेवली इसलिए कहा कि श्रुत उसमें निमित्त है।

श्रुत पहले शुद्धात्मा का स्वरूप जानता है और उसके बाद उसका निर्णय करके, विचार करके उसकी महिमा लाकर, शुद्धात्मा का निर्विकल्प स्वसंवेदन करता है। इसलिए वो निश्चय श्रुतकेवली रहा। और द्वादशांग को जाननेवाला वो भी ज्ञान है। द्वादशांग स्वयं नहीं है श्रुतकेवली, पर द्वादशांग को जाननेवाला ज्ञान है, वो श्रुतकेवली है। वो श्रुतकेवली माने व्यवहार श्रुतकेवली है क्योंकि निश्चय के साथ व्यवहार घटाना आवश्यक है न।

तो वो तो है उत्कृष्ट बात! लेकिन जो शुद्धात्मा को जानते हैं, वे द्वादशांग को जानते ही हों - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षुः- ये क्या कहा?

पूज्य बाबूजीः- वो तो है ही सही न! शुद्धात्मा को जो जानते हैं, जिन्हें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ है, वे द्वादशांग को जानें ही जाने - ऐसा आवश्यक नहीं है। द्वादशांग का सार तो वो जानते हैं। लेकिन पूरा द्वादशांग जाननेवाले ये द्वादशांग के पाठी वो श्रुतकेवली कहलाते हैं,

62 ९-१०वीं गाथा से जो द्वादशांग को जानता है वह तो श्रुतकेवली है और आत्मा को जाननेवाले को भी श्रुतकेवली कहा जाता है। - 0.15 Mins

व्यवहार श्रुतकेवली; क्योंकि वो द्वादशांग को जानते हैं। द्वादशांग को जानकर आत्मा को जाने, वो निश्चय श्रुतकेवली होता है और द्वादशांग को जाननेवाले वो व्यवहार श्रुतकेवली (होते हैं)।

द्वादशांग को जानने में भी ये जो आशय है, अभिप्राय है, वो यही रहता है कि मुझे शुद्धात्मा जानना है द्वादशांग के द्वारा। तो द्वादशांग निमित्त होता है इसलिए निमित्त की ओर से वो जो शुद्धात्मा को जाननेवाले हैं, निर्विकल्प स्वसंवेदन में तो उस निर्विकल्प स्वसंवेदन को श्रुत नाम दिया। श्रुतकेवली उनको कहा। और जो सर्व द्वादशांग को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं - ये व्यवहार है।

लेकिन क्योंकि वो सबको संभव नहीं होता है। जैसे **तुष-माष भिन्नम्** जैसा वो शिवभूति मुनि का ज्ञान था, तो उसमें द्वादशांग का ज्ञान पूरा कहाँ था? द्रव्यश्रुत का? तो भी द्रव्यश्रुत का जो सारभूत कि शुद्धात्मा है, उसका ज्ञान उनको था। तो वो जो ज्ञान है, वो द्वादशांग का जो ज्ञान है वो आत्मा ही है। ज्ञान द्वादशांग का नहीं (है) पहली बात तो ये।

मुमुक्षुः- ज्ञान द्वादशांग का नहीं (है)।

पूज्य बाबूजीः- नहीं! ज्ञान आत्मा का (है)। लेकिन द्वादशांग इसकी उत्पत्ति में निमित्त हो जाता है। अगर हमारे ज्ञान का उपादान थोड़ा अच्छा हो तो वो निमित्त हो जाता है, इसलिए उसको श्रुतकेवली संज्ञा दी जाती है। लेकिन हर कोई नहीं जानता है न! इसलिए वो जितना कुछ ज्ञान होता है, उस ज्ञान में वह आत्मा का चिंतन चलता है तो उसमें भेद उत्पन्न होता है। माने ज्ञान सो आत्मा - ये इतना भेद ये (भी) बहुत अंतिम भेद (है), सूक्ष्म भेद है ये (कि) ज्ञान सो आत्मा।

ये ज्ञान सो आत्मा - इस विचार में चिंतन में जो प्रवृत्त हो रहा है वो तो हुआ व्यवहार श्रुतकेवली। यानि द्वादशांग का जाननेवाला वो तो उत्कृष्टरूप से श्रुतकेवली है ही। लेकिन सबको द्वादशांग का ज्ञान नहीं होता और निश्चय के साथ व्यवहार आवश्यक है। तो सबको नहीं होता, तो जो द्वादशांग के सारभूत आत्मा को जानता है, तो वो व्यवहार श्रुतकेवली हुआ चाहे उसका ज्ञान कितना ही (कम हो)। द्रव्यश्रुत का ज्ञान चाहे कितना ही (कम हो)! वो ज्ञान सिर्फ इतना (हो) कि ये जो ज्ञान है सो आत्मा है। बस! ये तिर्यंच ऐसा कर लेता है कि ये जो ज्ञान है सो आत्मा है। तो वो जो तिर्यंच है, वो व्यवहार श्रुतकेवली हुआ। और ऐसा करते हुए वो शुद्धात्मा पर पहुँच जाता है, तो वो निश्चय श्रुतकेवली है तिर्यंच, नारकी सब।

मुमुक्षुः- माने ज्ञानस्वरूप आत्मा के निर्णय को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न वहाँ। अनुभूति कहाँ है वहाँ? वहाँ तो चिंतन है, विचार है। ज्ञान सो आत्मा, बस इतना। इतना भेद जहाँ पड़ा (तो) और नहीं कुछ लंबा-चौड़ा दूसरा (कुछ भी), देव-शास्त्र-गुरुवाला नहीं वो। (बस!) ज्ञान सो आत्मा - इतना जो भेद पड़ा, तो वो व्यवहार हो गया। तो वो व्यवहार श्रुतकेवली है।

मुमुक्षुः- हाँ! पर वो अगर अनुभूति के साथ हो तो....

पूज्य बाबूजी:- अनुभूति हो जाएगी। अनुभूति होनेवाली हो तो उसका नाम व्यवहार श्रुतकेवली - बस इतना। अनुभूति नहीं होनेवाली हो और वो केवल भेद में, विचार में, चिंतन में प्रवृत्तमान हो, तो (इसका अर्थ है कि) वो चिंतन उसे प्रिय लगा। चिंतन के प्रति उसे ममत्व हो गया (तो) वो शुद्धात्मा को भूल गया (और) इसलिए मिथ्यात्व और अज्ञान आ गया।

मुमुक्षु:- बराबर! माने श्रुतकेवली जैसे ज्ञान सो आत्मा, वो उतना अनुभव के पहले भी विचार चिंतन यथार्थरुप से करे, उसे भी श्रुतकेवली कहा जाता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! कहा जाता है।

मुमुक्षु:- पर वो व्यवहार से है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! पर वास्तविक तो जिस समय निश्चय श्रुतकेवली होते हैं, शुद्धात्मा की अनुभूति करते हैं, तभी उसको व्यवहार संज्ञा मिलती है। लेकिन ये भी अनुचित नहीं है कि जिसे शुद्धात्मा का वेदन होनेवाला है, तो उसके पहले जो ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा - ऐसा जो विचार चलता है उसको व्यवहार श्रुतकेवली कहना सर्वथा अनुचित हो, ऐसा नहीं है। वो कहना चाहिए, कहना चाहिए। (उसको सर्वथा व्यवहार) श्रुतकेवली कहें ही नहीं - ऐसा नहीं है, क्योंकि वो तो प्राप्त करनेवाले हैं। इसलिए प्राप्त कर लिया है, इस रूप में उसको स्वीकार किया जाता है।

मुमुक्षु:- बराबर! और प्राप्त करने के बाद अगर फिर विचार कर रहे हैं (तो) या तो ज्ञान खुल गया द्वादशांग का, (तो) उसे भी व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं।

पूज्य बाबूजी:- वो भी व्यवहार है।

मुमुक्षु:- माने व्यवहार श्रुतकेवली के दो प्रकार बन गए। एक तो अनुभूति के पहले ही जिसको अनुभूति होनेवाली है, उसे भी व्यवहार श्रुतकेवली कहेंगे। और अनुभव के बाद उसको जब सविकल्पदशा में शास्त्रों का ज्ञान या तो द्वादशांग का ज्ञान खुल गया (हो) तो उसे भी श्रुतकेवली कहा जाता है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! उसे भी श्रुतकेवली कहते हैं। जैसे [63]आत्मा की जब अनुभूति होती है तो उसका process (विधि) ये ही है कि वो पहले आत्मा के किन्हीं विशेष गुणों का चिंतन उसे चलता है, और महिमा बढ़ती है तो (फिर) तुरंत शुद्धात्मा पर पहुँचकर उसका संवेदन कर लेता है। ये ही तरीका है बस। और (कोई) दूसरा तरीका नहीं है।

मुमुक्षु:- आत्मा के गुणों का चिंतन चलता है।

पूज्य बाबूजी:- आत्मा के जो मुख्य गुण हैं, मुख्य में भी फिर ज्ञान रह जाता है तो उसका चिंतन चलता है। ज्ञान और आनंद स्वरूप हूँ - ऐसा चिंतन चला। लेकिन क्योंकि इस चिंतन में तो विकल्प है, विचार है, तरलता है, चंचलता है। स्थिरता नहीं है और यह अनुभूति का स्वरुप नहीं है

63 आत्मा की अनुभूति की विधि। - 10.42 Mins

तथा आत्मा का भी स्वरूप नहीं है। इसलिए आत्मा इस तरह चिंतनपूर्वक खंड-खंडज्ञान से अपना अनुभव कर सके - ऐसा नहीं है। इसलिए दोनों ही ये आत्मा न होने के कारण उनको व्यवहार कहा है। लेकिन ये व्यवहार साधन अवश्य बन जायेंगे यदि ये आत्मा का अनुभव कर लेगा, तो व्यवहार साधन (है)।

मुमुक्षु:- क्योंकि चिंतन से महिमा बढ़ती है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! (और) वास्तव में तो बाधक है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! [64]सविकल्प स्वसंवेदनवाले को व्यवहार केवली बोल सकते हैं न? सविकल्प स्वसंवेदनवाले जो भगवान आत्मा हैं, उनको व्यवहार केवली बोल सकते हैं?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! बोल सकते हैं।

मुमुक्षु:- यहाँ सम्यग्दृष्टि को केवली कहा? यहाँ सम्यग्दर्शन वाला, चौथावाला (जो है) उसको केवली क्यों कहा?

पूज्य बाबूजी:- केवली कहा न! केवल को जानता है वो, केवल माने मात्र शुद्धात्मा। शुद्धात्मा को जानता है। उसका नाम केवल है, शुद्धात्मा का नाम। इसलिए कहा (है) केवली। और श्रुत उसमें निमित्त है इसलिए श्रुतकेवली कहा।

मुमुक्षु:- [65]आपने अभी बताया कि द्वादशांग का ज्ञान वास्तव में द्वादशांग का नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- नहीं है। द्वादशांग का नहीं है, आत्मा का है। इसलिए वो द्वादशांग का कोई भी, कोई भी भाग, कोई भी हिस्सा जानकर और आत्मा पर आ जाता है। उसको (बस) इतना सा रहता है (कि) ज्ञान सो आत्मा। तो ये ज्ञान बना लिया न उसने सारे द्वादशांग को।

द्वादशांग का ज्ञान द्वादशांग का नहीं (है), पर ज्ञान आत्मा का है। इसलिए यह जो ज्ञान है सो मैं ही हूँ (अर्थात्) आत्मा ही है - ये ज्ञान, ये व्यवहार श्रुतकेवली हो गया। ऐसा करते-करते ये विचार रुक जाता है और अनुभूति वो प्रगट हो जाती है।

मुमुक्षु:- माने अनेकाकार ज्ञान में से उसने एकाकार ज्ञान के स्वरूप को जाना।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! एकाकार करना ही पड़ता है न! एकाकार करना ही पड़ता है। ये जो अनेक भेद हैं, वो सब उसमें से निकल जाते हैं और अकेला ज्ञान सामान्य जो है (वो) शुद्धात्मा का अनुभव कर लेता है। स्वयं ज्ञायक बन जाता है। स्वयं ज्ञायक बन जाता है - ऐसी अभेदता! यहाँ तो भेद है। वहाँ अभेदता ऐसी होती है कि - ये है तो अनुभूति, पर्याय (है) लेकिन ये स्वयं ज्ञायक बनकर बोलती है। ज्ञायक बनकर बोलती है (कि) मैं ज्ञायक हूँ, चिन्मात्र हूँ, चैतन्य हूँ - ऐसा इसका स्वर होता है।

64 सविकल्प स्वसंवेदनवाले को व्यवहार केवली बोल सकते हैं? - 12.22 Mins

65 ज्ञान द्वादशांग का नहीं है। - 13.10 Mins

मुमुक्षुः- तो वो पर्याय का स्वर पर्यायमय होता नहीं (बल्कि) वो ज्ञायकरूप हो जाता है उसका स्वर।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! पर्याय का स्वर पर्यायमय नहीं रहता, पर पर्याय का स्वर द्रव्य बन जाता है।

मुमुक्षुः- तो व्यवहार श्रुतकेवली निश्चय श्रुतकेवली बन जाता है।

पूज्य बाबूजीः- निश्चय श्रुतकेवली वही होता है। ये निश्चय श्रुतकेवली है। इसलिए सभी निश्चय श्रुतकेवली हैं जो ऐसा करते हैं - नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव (सभी)। क्योंकि उसमें भेद कैसे होगा? क्योंकि सब एक ही विधि से उस शुद्धात्मा को पा रहे हैं। दूसरी कोई विधि है नहीं। बस ये ही विधि है कि ज्ञान सो आत्मा, आनंद सो आत्मा। ऐसे किया (तो) ऐसा करते-करते अनुभूति हुई, तो (वो) निश्चय श्रुतकेवली हो गया (और) ये व्यवहार रह गया।

मुमुक्षुः- माने इसका मतलब तो ये हुआ बाबूजी कि स्वरूप का सही चिंतन करनेवाले को, माने ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करनेवाले को भी व्यवहार श्रुतकेवली कह दिया है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! कहा है। है वो, है। है वो। कहा है माने वो है व्यवहार श्रुतकेवली। क्योंकि है तो उसका भी ज्ञान श्रुत (ही)। उसके ज्ञान में भी है तो श्रुत ही निमित्त। तो श्रुत निमित्त होने पर भी वो श्रुत का विकलपात्मक चिंतन कर रहा है। विकलपात्मक चिंतन कर रहा है, इसलिए वो अभी अनुभूति में न होने के कारण व्यवहार हो गया।

मुमुक्षुः- तो ऐसा लगता है कि एक गरीब को राजमहल में बिठाकर राजा बना दिया। आत्मा के चिंतन करने वाले को व्यवहार श्रुतकेवली बोल दिया।

पूज्य बाबूजीः- आत्मा सदा ही अमीर है न, गरीब नहीं है। इसलिए जो पर्याय है न गरीब, वो पर्याय महारानी बन जाती है। वो साम्राज्ञी बन जाती है। वो तो सम्राट है शुद्धात्मा तो और वो साम्राज्ञी बन जाती है। गरीबी तो पर्याय में है (कि) मैं दुखी हूँ। ये गरीब ही बोलता है (कि) मैं अज्ञानी हूँ; (ये) गरीबी है पर्याय की। ये पर्याय की गरीबी समाप्त होकर ऊँचाईओं को छूती है।

मुमुक्षुः- ऊँचाईओं को छूती है। बराबर! Absolutely! बराबर!

पूज्य बाबूजीः- हो ही जाता है (न)! कोई गरीब कन्या किसी राजा के घर चली जाये, तो फिर क्या स्थिति होती है उसकी? और क्या मानती है (वो) अपने आप को? बल्कि (सिर्फ) संबंध भी हो जाए तो? क्या मानती है? महारानी मानती है। अब उस गरीबी को कौन याद करे? गई वो तो, समाप्त हो गई।

मुमुक्षुः- यूँ भी बुरे दिन किसी को याद आते अच्छे नहीं लगते।

पूज्य बाबूजीः- बुरे दिन तो लोक में याद करने चाहिए, बाकी प्रकरण में। अध्यात्म में बुरे दिन होते ही नहीं हैं आत्मा के। आत्मा के कभी बुरे दिन आए ही नहीं। अब कल्पना में कोई ऐसा बन जाए तो उसका कोई क्या करे? कल्पना में, भ्रम में किसी भी रूप से आत्मा को भूलकर जो

दीन हो गया, हीन हो गया। हीन हो गया माने अपने आपको हीन मानने लगा पर्याय में, स्वयं अत्यंत उच्च होने पर भी, ओजस्व-तेजवाला होने पर भी अपने आप को पर्याय में दीन और हीन मानने लगा। लेकिन इससे वो जो तत्त्व है परम तत्त्व, उसमें हीनता नहीं आई। उसमें दीनता नहीं आई। वो तो ऊँचा ही रहा, आसमान को ही चूमता रहा वो।

हाँ! ये पर्याय (है) यदि उसको आज समझ में आ जाए (और उसकी) समझ ठीक हो जाए तो ये उस जैसी बन जाती है। और ऐसी बनती है कि फिर अपना स्वर ही बदल देती है। तो स्वर बदलकर बिल्कुल जैसे कोई छाती से छाती लगाकर ऐसा एकाकार मिलन हो रहा हो, ऐसा एकाकार मिलन होता है कि जिसमें (वो) स्वयं गायब हो जाती है।

मुमुक्षुः- बराबर! सही बात है!

एक दूसरा प्रश्न है प्रभु![66] अनुभूति के पहले की विचारधारा में स्व-पर के भेद की धारा का चिंतन कार्यकारी है कि ज्ञायक की महिमा का (चिंतन कार्यकारी है)?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ज्ञायक की महिमा का। स्व-पर का भेद तो पहले ही कर लेना चाहिए। पहले ही किया जा चुका होता है, स्व-पर का भेद (तो)। स्व-पर का भेद करके जो पर है, वो तो मेरे किसी काम का नहीं है, किसी प्रयोजन का नहीं है - ये मैंने जान लिया है। उसको कहते हैं जानना। अब उनको ज्ञेय की कोटि में रखना कि वे मेरे किसी काम के (और) किसी मतलब के नहीं हैं। सारे के सारे हेय तत्त्व हैं और अहम् करने लायक नहीं हैं। मैंने जो अब तक उनमें अहम् किया वो सारा का सारा बरबाद हुआ, व्यर्थ हुआ। और उसमें जो श्रम किया गया वो भी सारा का सारा बरबाद हुआ। ऐसा जानकर पर से विमुख होकर और अपनी पर्याय को पर से खाली कर देता है, विविक्त कर लेता है पर्याय को। ज्ञान की पर्याय को परपदार्थों से विविक्त करके उसमें एकमात्र चैतन्य को भर देता है। और चैतन्य को भरकर चैतन्य का चिंतन करने लगता है कि मैं तो शुद्ध, बुद्ध, एक, एकरूप, अनंत और अनंत समृद्धि सम्पन्न हूँ। अनंत वैभव सम्पन्न हूँ। तो अनंत वैभव सम्पन्न मैं हूँ अगर ज्ञान ने ऐसा वास्तव में दृढ़ता से स्वीकार किया तो इस चिंतन में प्रसन्नता नहीं होगी क्या?

मुमुक्षुः- आनी ही है। प्रसन्नता ही होगी।

पूज्य बाबूजी:- होगी ही होगी न! क्योंकि निश्चितरूप में, अत्यंत निश्चित रूप में वो इस बात को (स्वीकार) करता है। दृढ़ता से ज्ञान ने स्वीकर किया कि और कुछ नहीं है इसके सिवाय। बस! ये एक ही मेरा उपादेय और अहम् करने योग्य है - ऐसा जानकर और (ऐसा माना कि) इसका जो वैभव है, वो अनंत है (और) अपार है। अर्थात् मेरा वैभव अनंत और अपार है और वो वर्तमान में विद्यमान है। वो कोई लाया जाएगा (और) पर्याय उसे पैदा करेगी - ऐसा नहीं है। लेकिन

66 अनुभूति के पहले की विचारधारा में स्व-पर के भेद की धारा का चिंतन कार्यकारी है कि ज्ञायक की महिमा का? - 19.52 Mins

वर्तमान में विद्यमान है वो और अपरंपार है उसकी महिमा। इस तरह जिसने महिमा को जाना तो तुरंत विकल्प छूटकर महिमा-मग्न हो जाता है।

मुमुक्षु:- तुरंत विकल्प छूटकर महिमा-मग्न हो जाता है।

पूज्य बाबूजी:- हो जाता है। आनी महिमा और उसका स्पष्ट ज्ञान। (बाकी) सबको निकाल दिया, सारे जगत को निकाल दिया (उसने)। सारे जगत को अपने से, अपनी जो पर्याय है, वो सारे जगत से खाली कर ली क्योंकि राग-द्वेष नहीं बचे। क्योंकि राग-द्वेष तो कब पैदा होते थे? कि जब उन पदार्थों को यह अपने साथ जोड़ता था ममत्व में, अहम् में जोड़ता था। तब न मिथ्यादर्शन और राग-द्वेष पैदा होते थे। अब जब वो सारे पदार्थ मेरे से न्यारे ही हैं, तो वो उनके ममत्व से उत्पन्न होने वाले जो मिथ्यादर्शन और राग-द्वेष के भाव हैं, क्या वे अब पैदा होंगे?

फिर से। जब सारे पदार्थों को अपने से बिल्कुल न्यारा मान लिया तो वे राग-द्वेष और मिथ्यादर्शन बचा या नहीं बचा?

मुमुक्षु:- कैसे बच सकता है?

पूज्य बाबूजी:- तो कैसे नहीं बचेगा? ये जब सारे को अलग माना तो उनसे ममत्व करने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। कोई अवकाश ही नहीं रहता। इसलिए ममत्व और राग-द्वेष से भी खाली हो गया। वो भी पर में चले गए। पर के साथ वो भी पर में चले गए क्योंकि ये जो भाव (हैं, ये) पैदा तो मेरे में (ही) होते थे लेकिन इनका संबंध था अन्य पदार्थों से। इसलिए उनको परपदार्थों में ही रख दिया। इस तरह सबसे विविक्त हो गया। मोह-राग-द्वेष और परपदार्थ सबसे विविक्त होकर, खाली होकर और वो जो पर्याय है, वो पर्याय ज्ञायक से भर गई। और ज्ञायक से भरकर ज्ञायक का धारावाहिक चिंतन महिमापूर्वक करने लगी। और अंत में समय आया कि ये जो चिंतन है, उसको भी हेय जानता था; शुरु से ही हेय जानता था। और आत्मा का स्वरुप निश्चित हो ही चुका है। इसलिए ये जो चिंतन है, ये भी विराम पाकर अंत में आत्मा में आत्मस्थ हो जाता है। ये तरीका है।

क्योंकि वो तो गुणों की जो अनेकता है वो भी घटती जाती है। पहले तो गुण.... कई गुणों के आधार से विचार करे। उसके बाद वो गुणों की अनेकता भी घटती जाती है और ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र, आनंदमात्र, बस इतना। अंत में जाकर इतना रह जाता है। जैसे बरफ जमते-जमते वो तरंग जो है, वो दिखाई भी नहीं देती (है)। तो इस तरह अंतिम स्थिति ऐसी हो जाती है कि बस ज्ञायक-ज्ञायक-ज्ञायक ही हूँ एक, ऐसा। और अभी भी विकल्प है लेकिन और इसको भी हेय जान रहा है। और बस अगले कदम में शुद्धात्मा में पदार्पण कर लेता है।

मुमुक्षु:- बराबर! अद्भुत! अद्भुत! अनुभव पूर्व के अंतिम क्षणों का परिणमन कैसा होता है?

पूज्य बाबूजी:- ये (ही) होता है।

मुमुक्षुः- ये होता है।

पूज्य बाबूजीः- बहुत मधुर प्रकरण है ये। बहुत मधुर! दुनिया में इतना मधुर, इतना सुंदर प्रकरण कोई सुनने को मिल जाए, ऐसा आज तक हुआ नहीं और होगा नहीं। इतना मधुर प्रकरण है ये आत्मानुभूति का और उसकी विधि का।

मुमुक्षुः- उसकी विधि में भी मधुरता है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! विधि ये ही। ये ही विधि है उसकी। (इसमें भी) बहुत मधुरता है, बहुत मधुरता है। उछलता है जैसे भीतर ही भीतर। भीतर ही भीतर उछलता है कि ये मिला, ये मिला, ये मिला, वो आ गया।

मुमुक्षुः- आहाहा! [67]पर को जानना कहा आपने, तो इसका मतलब ये मेरे नहीं हैं - ये पर को जानना हुआ?

पूज्य बाबूजीः- ये हुआ पर को जानना क्योंकि मेरा अस्तित्व स्वीकृत हो गया। तब ही कहा न इसने कि ये मेरे नहीं है और इनका मेरे से कोई संबंध नहीं है। ये कब कहा? कि जब उनका अस्तित्व स्वीकार कर लिया। तो हो तो गया तीनलोक का जानना।

मुमुक्षुः- बराबर! पर कैसे हैं - ये पर का जानना नहीं।

पूज्य बाबूजीः- वो नहीं। पर कैसे हैं उनसे नहीं (है) मतलब।

मुमुक्षुः- पर मेरे नहीं हैं - वो पर का जानना हुआ।

पूज्य बाबूजीः- वो पर का जानना हुआ।

मुमुक्षुः- ये क्या बाबूजी! ये बात तो विचारकोटि में भी आने की मुश्किल है।

पूज्य बाबूजीः- मुश्किल लगती है क्योंकि उसमें दिल नहीं लगता है। विस्तार में जाता है। उसकी आदत विस्तार में जाने की पड़ी है इसलिए अनेक पदार्थों पर विचार करने लगता। शरीर मेरा नहीं है, इंद्रियाँ मेरी नहीं हैं। अरे भाई! एक में डाल दे न सबको। अजैन-अजैन सब एक कोटि के हैं। बस! हो गया खतम। मैं जैन हूँ बस। वो सब एक ही कोटि के हैं।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! पर को जानना माने पर मेरे नहीं हैं - ये जानना है। ये पर का जानना (है)।

पूज्य बाबूजीः- ये प्राण है उसका, पर को जानने का। ज्ञान का प्राण है ये।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! स्व-पर को विभाजित करने की प्रक्रिया में ये है कि पर कैसे हैं - ये नहीं जानना है। पर मेरे नहीं हैं - ये जानना है पर का।

पूज्य बाबूजीः- बस वही है। उसी में ये परम सदाचारी हो गया, परम सदाचारी। एक अणुमात्र भी मेरा नहीं है।

67 पर को जानना कहा आपने, तो इसका मतलब ये मेरे नहीं हैं - ये पर को जानना हुआ। - 27.10 Mins

तो जिसने इतने बड़े विश्व के साथ फैले हुए अपने ममत्व को समेटकर जो जिस क्षण में ये बोला कि अणुमात्र भी मेरा नहीं है, तो फिर केवलज्ञान का ताज किसको पहनाया जाएगा? इसको नहीं पहनाया जाएगा (क्या)? और कौन है जो केवलज्ञान के लायक है? क्योंकि केवलज्ञान में तो दिखाई अनेक देंगे। जो इसने इतने थोड़े से श्रुतज्ञान में सारे ही विश्व को परत्व दे दिया, सारे विश्व को! इतने छोटे से ज्ञान में सारे विश्व को परत्व दिया और केवलज्ञान भी सारे विश्व को परत्व देता है, तो इसमें (और) केवलज्ञान में कहाँ अंतर रहा? और जो यदि अंतर माना भी जाता है तो केवलज्ञान का उत्तराधिकारी कौन है? कहते हैं (कि) ये ज्ञान है **तुष माष भिन्नम्** जितना।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! ये ज्ञान है..

पूज्य बाबूजी:- इसको ताज पहनाया जाएगा।

मुमुक्षु:- Beautiful! केवलज्ञान का उत्तराधिकारी किसको माना जाता है? ये **तुष माष (भिन्नम्)** जितना ज्ञान (उसका) उत्तराधिकारी है।

पूज्य बाबूजी:- इस अल्पज्ञान में ताकत कितनी कि संपूर्ण विश्व में अणुमात्र भी मेरा नहीं है। कितनी ताकत! कितना ईमान-धर्म! इसको कहते हैं ईमान-धर्म।

मुमुक्षु:- ये छोटे मुँह बड़ीवाली बात नहीं है। ये तो ईमान-धर्म की है।

पूज्य बाबूजी:- ईमान-धर्म की बात है।

मुमुक्षु:- हमने तो ये सोचा था कि आपने कह दिया कि पर को जानना मत, तो जानना ही बंद कर दिया था। तो ये मेरे नहीं है - इतना जो जानना बाकी रह गया था, उसका सुझाव (अब) मिल गया।

पूज्य बाबूजी:- बस! तो वो हो गया। जानना बंद हो गया (और) यहाँ पर पूर्णाहुति हो गई। पूर्ण ज्ञान हो गया (कि) बस मेरे नहीं हैं। अब कोई संबंध भी नहीं है। था भी नहीं (और) है भी नहीं। केवल मानने की कल्पना में था, वो ख़त्म हो गई। वो मेरे से जुदा हो चुकी (है), बस।

मुमुक्षु:- [68]तो ज्ञायक की महिमा फलदायी होती है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! ज्ञायक की महिमा इसी तरह आवे कि उसे (ज्ञायक को) वो समृद्धशाली माने। जगत का सबसे समृद्धशाली पदार्थ वो मैं हूँ। वो इसलिए हूँ कि जगत में भले ही हैं जीव मेरे जैसे, लेकिन उनकी समृद्धियाँ उनके पास हैं। वे तो मुझे एक दाना भी नहीं देते हैं। इसलिए सबसे समृद्धशाली मैं हूँ क्योंकि मैं उनके भी सामने जाता नहीं हूँ। मैं उनसे भीख कभी माँगता नहीं हूँ।

तो मेरा जो आत्म-गौरव है वो सबसे ऊँचा है। सबसे ऊँचा! मैं तो भगवान सिद्ध से ही नहीं माँगता हूँ, और की (तो) क्या बात है? और की क्या बिसात है? मैं तो भगवान सिद्ध से ही नहीं माँगता हूँ। क्योंकि मेरे पास (जो) है वो क्या काम आएगा? मेरा टिफ़िन क्या काम आएगा अगर

68 ज्ञायक की महिमा कब फलदायी होती है? - 31.11 Mins

मैं भगवान से माँगूँगा तो? और वो क्यों देंगे? वो देंगे तो.. वो पूजा में लिखी है ये बात कि वो अपराधी हैं अगर दे देवें (तो)। अपराधी हैं वो क्योंकि उन्होंने जगत में भीख माँगने का व्यवसाय शुरू करा दिया। ये अपराध है बड़ा भारी (है)। ये बड़ा भारी अपराध है।

मुमुक्षुः- विश्व की सुंदरता खत्म हो जाती है।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! विश्व की ही नहीं (बल्कि) ये तो सौन्दर्य समाप्त हो गया उसका, जीव का। जीवलोक जो है वो सब भिखारी बन गया। भिखारी बन गया।

मुमुक्षुः- आहाहा! जीवलोक है, वो सब भिखारी बन गया।

पूज्य बाबूजीः- अज्ञानी तो चाहता ही ये ही है कि कोई दे दे। बिना मेहनत के मिल जाए बस और क्या है! अज्ञानी को तो प्रमाद ने घेर रखा है, इसलिए वो शुद्धात्मा की ओर आना ही नहीं चाहता। उसको तो ये है कि दे दें भगवान और क्या है? उनके पास बहुत तो है, क्या करेंगे? मेरे पास भी है उसका बोध इसको नहीं है।

ज्ञान को भगवान के सामने ले जाया जाये, केवल राग को नहीं ले जाये। हाँ! हम तो राग को ले जाते हैं इसलिए फेरी लगाकर आ जाते हैं। ज्ञान को भगवान के सामने ले जाए तो निश्चितरूप में कुछ लेकर लौटता है। माने ये स्वीकार करके लौटता है कि अरे! मैं तो स्वयं ही भगवान हूँ। मैंने क्या किया ये कि मैं भगवान के सामने गया और उनसे माँगा?

मुमुक्षुः- आहाहा! ज्ञान को भगवान के पास लेकर गया तो भगवान के द्रव्य, गुण और पर्याय से मिलान हो गया।

पूज्य बाबूजीः- अनेक करोड़पति हों, उसमें कौनसे करोड़पति को यह याद आवे कि ये दूसरे और भी अपने जैसे करोड़पति हैं। तो अपन देखें, एक दिन चलें तो सही न उनके पास। कुछ थोड़ा-बहुत माँगकर तो देखें! ऐसा विचार आएगा? अरे अपन तो (खुद) हम ही करोड़पति हैं। वो भी हैं तो होंगे, उनके घर के हैं वो। भगवान भगवान के घर के हैं। मुझे देकर थोड़े (ही) खाते हैं।

मुमुक्षुः- तो तो बाबूजी आपने तो सभी को अहमिंद्र बना दिए।

पूज्य बाबूजीः- अहमिंद्र ही है ये।

मुमुक्षुः- कमी है ही नहीं।

एक प्रश्न है[69] कि सम्यग्दर्शन होते ही श्रद्धा परिपूर्ण हो जाती है। प्रश्नकार का विचार लिखा है कि - सम्यग्दर्शन होते ही श्रद्धा परिपूर्ण हो जाती है और ज्ञान केवलज्ञान होते परिपूर्ण होता है। त्रिकाली ध्रुव तो अकार्यकारणत्व का धारक है। तो फिर श्रद्धा-ज्ञान की परिपूर्णता का असली कारण कौन है? कृपया समाधान कीजिए।

69 श्रद्धा-ज्ञान की परिपूर्णता का असली कारण कौन है? - 35 Mins

पूज्य बाबूजी:- स्वयं ही है वैसे तो। दोनों बातें आती हैं कि - वो जो शुद्धात्मा है (उसको) कारण परमात्मा भी कहते हैं। वो इसलिए कहते हैं कि पर्याय जो है, वो सारे जगत से लौटकर उसकी ओर झाँकती है। तो इसलिए उसे कारण भी कहा जाता है। (लेकिन वो तो) हमेशा से ही बना हुआ है। इसलिए पर्याय में कहाँ दोष का निवारण हुआ? लेकिन पर्याय ने अपना अपराध छोड़कर उस कारण परमात्मा की ओर (जब) झाँकी, तो वो कारण परमात्मा बन गई स्वयं। स्वयं परमात्मा बन गई, इसलिए पर्याय में ही होता है।

और केवलज्ञान में पूर्ण होता है सम्यग्ज्ञान - ऐसा नहीं (है)। सम्यग्ज्ञान तो हो गया। जिस समय श्रद्धा पूरी हुई उस समय ज्ञान भी सम्यक् रूप में तो पूरा हो गया। अब ये केवलज्ञान की बात है तो वो तो गिनती की (बात) है, पदार्थों की। पदार्थों की गिनती की है। तो वो दिखाई दें (अथवा) न दें, इससे क्या मतलब है इसको? उनको दिखाई देते हैं भगवान को, तो भी भगवान को उनके प्रति पूरी उपेक्षा है। पूरी उपेक्षा है।

तो जिनके प्रति उपेक्षा है तो उसके संबंध में इसको अपेक्षा होगी क्या कि - मैं केवलज्ञान लूँ? ऐसा केवलज्ञान लूँ कि जिसमें लोकालोक दिखाई दे.. और फिर केवलज्ञान को क्या कहेगा? कि भाई! तेरे श्रुतज्ञान में ये लोकालोक का वो जो अपनी छाती में दबाकर बैठा है, वो दिख रहा है। तो तू उस केवलज्ञान को लेकर क्या करेगा? इस तरह केवलज्ञान की प्रीति तोड़ने पर केवलज्ञान भागा आता है।

मुमुक्षु:- दौड़ा आता है।

पूज्य बाबूजी:- दौड़ा आता है।

मुमुक्षु:- माने ज्ञान भी परिपूर्ण हो गया, सम्यक् प्रकार से।

पूज्य बाबूजी:- सम्यक् हो गया। सभी सम्यक् हैं ये मति सम्यक्, श्रुत सम्यक्, अवधि सम्यक्, मनः पर्यय सम्यक् और केवलज्ञान सम्यक्। सम्यग्ज्ञान तो हो गया पूरा।

मुमुक्षु:- [70]कार्य परमात्मा को निश्चय से कारण परमात्मा की अपेक्षा है?

पूज्य बाबूजी:- कारण परमात्मा निरपेक्ष है। तो उसकी अपेक्षा से कार्य परमात्मा सापेक्ष है, उसकी अपेक्षा से। क्योंकि कार्य परमात्मा तो नया बना है (और) कारण परमात्मा पुरातन है।

मुमुक्षु:- वो कहा गया है इसका मतलब क्या? शुद्धात्मा कारण परमात्मा है - ऐसा जो कहा गया है (उसका अर्थ क्या)?

पूज्य बाबूजी:- शुद्धात्मा कारण परमात्मा यानि ऐसा कारण नहीं है कि उसके होने पर शुद्धि हो ही हो - ऐसा आवश्यक नहीं। लेकिन फिर भी जब-जब शुद्धि प्रगट होगी, तो उसकी ओर ही पर्याय को झाँकना पड़ेगा। इसलिए उसे कारण परमात्मा कहते हैं। और, और जगत में

70 कार्य परमात्मा को निश्चय से कारण परमात्मा की अपेक्षा है? - 38.12 Mins

कोई नहीं, कोई पदार्थ कि जिसकी ओर ये देखे। केवल उसी की ओर देखेगा, तो पर्याय जो है वो कार्य परमात्मा बन जाएगी। इसलिए उसे कारण कहते हैं। वरना वो तो शुद्धात्मा शुद्ध चैतन्य है।

मुमुक्षुः- वो किसी का कारण होता नहीं।

पूज्य बाबूजीः- और भावरुप में अनुभव (में) आता है। किसी नाम से अनुभव में नहीं आता। इसलिए एक चैतन्यमात्र हूँ बस - ऐसा। ऐसा जो एक सामान्य बनाया चैतन्यमात्र हूँ मैं, ऐसा सामान्यभाव अनुभव में आता है। (उसको) चिन्मात्र कहते हैं। चिन्मात्र नाम से अगर करें तो नहीं आएगा।

मुमुक्षुः- वाह रे वाह! भावरुप से अनुभव में आता है, नामरुप से नहीं - ये क्या कहा?

पूज्य बाबूजीः- नामरुप से नहीं आता है (क्योंकि) नाम में तो विकल्प हो जाएगा। नाम में तो विकल्प हो जाएगा। नामरूप से नहीं आता। सीधा जैसा उसका स्वरुप निर्णय किया, ठीक वैसा का वैसा भासित ज्ञान में होता है।

मुमुक्षुः- माने सोचे तो अशांति, परिणमे तो शांति।

उसी भाँति का एक प्रश्न है [71]- पर्याय का षट्कारक पर्याय है। ये माननेवाला ज्ञानी हो या अज्ञानी, दोनों के अभिप्राय में फर्क होता है क्या?

पूज्य बाबूजीः- अज्ञानी तो जानता ही नहीं है इस बात को। वो तो पर्याय के षट्कारक मानता ही नहीं है। वो तो पर्याय को पराधीन मानता है। वरना अन्य के साथ ममत्व क्यों जोड़ेगा? और पराधीन क्यों बनाएगा उसको? इसलिए वो तो इस बात को मानता ही नहीं (है) क्योंकि वस्तु व्यवस्था... कहे भले ही। कहे भी (और) नहीं भी कहे।

और वस्तु-व्यवस्था ऐसी है कि पर्याय के जो है कारक हैं, कारक सामग्री (अर्थात्) काम बनानेवाली, काम करनेवाली सामग्री, उसका नाम कारक (है)। तो ये छह प्रकार के कारक जो हैं, वो कार्य की सामग्री हैं। तो वो हर पर्याय के पास रहते हैं - ये ज्ञानी जानता है। ये पर्याय अपने षट्कारकों से पैदा होती है। इसमें द्रव्य भी कारण नहीं और गुण भी कारण नहीं (है) - ऐसा जानकर वो पर्याय से भी निरपेक्ष हो जाता है। उसकी भी उपेक्षा कर देता है कि ये जो होगी तो अपने षट्कारक से होगी। इसमें अपने द्रव्य और गुण का कहाँ काम है? तो उससे विमुख हो जाता है, तो पर्यायदृष्टि छूट जाती है। इसमें भी पर्यायदृष्टि छूट जाती है। पर्याय के षट्कारक मानने में (क्योंकि) उसमें मेरा कोई काम नहीं है।

मुमुक्षुः- [72]पर्याय में राग-द्वेष हुआ तो अज्ञानी बोले कि उसको होनेवाला था तो हुआ, उसमें हमें क्या? तो क्या दोष आता है?

71 पर्याय का षट्कारक पर्याय है - ऐसा माननेवाले ज्ञानी और अज्ञानी में कोई फरक होता है क्या? - 40.43 Mins

72 पर्याय में राग-द्वेष हुआ तो अज्ञानी बोले कि जो होनेवाला था तो हुआ, उससे हमें क्या? तो क्या उसमें दोष आता है? - 42.34 Mins

पूज्य बाबूजी:- हाँ! होनेवाला था सो हुआ - ऐसा वो मानता है क्या? अज्ञानी बोला (कि जो) होनेवाला था सो हुआ, तो ऐसा वो मानता है कि नहीं मानता है? पहली बात (तो) ये। अगर वो खाली कहता ही है (और) मानता नहीं है, तो फिर उसने कहाँ माना कि होनेवाला है सो होता है? और यदि उसने मान लिया (हो) तो (फिर) उसकी दशा ही बदल जाती है। दशा बदल जाती है क्योंकि होनेवाला था तो हुआ - ऐसा जिसने जाना, उसका पर्याय की ओर से उपयोग हट जाता है; कि इसमें मैं क्या करूँगा? जो उसमें होना है वो सिद्ध भगवान, केवली भी नहीं लौटा सकते। तो मैं भी इसको (नहीं लौटा सकता)।

और इसको क्यों लौटाऊँ मैं? ये तो मेरे घर की व्यवस्था है, शान है मेरी कि मेरा कार्य कभी भी, तीन लोक, तीन काल में इधर-उधर होता ही नहीं है। इतना निश्चित timetable (समय-सारिणी) है कि वो इधर से उधर कभी होगा ही नहीं। तो ये तो मेरे द्रव्य की इतनी सुंदर व्यवस्था है कि जैसी है ही नहीं अज्ञानी के पास। अज्ञानी के पास नहीं है। ये तो मेरे द्रव्य का गौरव है न! कि वहाँ जो कुछ कार्य निश्चित है वो कार्य अपने समय पर होना है। तो ये गौरव है या नहीं?

तो उसने जाना कि ये जो होना है ये अपने समय पर होना है। तो इसमें मेरा कोई हिस्सा वास्तव में नहीं है। इसमें उलट-फेर करना, वो मुझे उलट-फेर करना भी नहीं है और ताकत भी किसी में नहीं है - इस तरह जानता है। ताकत नहीं है (ऐसा) माने तो कमजोरी आती है। तो ऐसे में उलट-फेर करना ही नहीं है। क्यों करे? व्यवस्था है, ये तो अपने घर की शान है। शान है ये तो। इसलिए व्यवस्थित को व्यवस्थित करने का नाम अव्यवस्था है।

तू उस व्यवस्थित को व्यवस्थित करना चाहता है। (तो) वो क्या करता है? (कहता है कि) होना था सो हुआ, होना था सो हुआ, होना था सो हुआ – (जब) ये व्यवस्थित है तो तू ये सौ बार क्यों दोहराता है इस बात को? इसका मतलब कि तू उसमें व्यवस्था थोपना चाहता है अपनी। होना तो ये चाहिए कि जब व्यवस्थित मान लिया तो तू वहाँ से हट जा एकदम। क्योंकि उसकी ओर देखना भी पाप है तेरे लिए। उसकी ओर देखना भी पाप है। क्यों देखा तूने उधर? इसका मतलब तुझे विश्वास नहीं है उसकी व्यवस्था पर तो (इसलिए) देखता है तू। (और) बार-बार (उसको) छेड़ता है।

जैसे (नक्की) हो गया है कि सवेरे बारात आनेवाली है और रात को सारा हमने, सारी सामग्री व्यवस्थित कर ली। सारी कुर्सियाँ, सोफा-सेट और दुनियाभर का सब-सब set (व्यवस्थित) कर लिया। अब एक व्यक्ति कोई आता है (कि) नहीं ये कुर्सी यहाँ नहीं, यहाँ। ये कुर्सी यहाँ नहीं, यहाँ। ये सोफा यहाँ नहीं, यहाँ - तो वो तो व्यवस्था बिगाड़नेवाला है। अरे भई! हमने तो सब सोच समझकर पहले किया था। ये क्या करता है तू? तो उसको हटा दिया जाएगा वहाँ से (कि) छेड़ना मत बिल्कुल। ऐसा का ऐसा रहने देना।

तू तो छेड़खानी क्यों करता है उसकी? इसलिए उस सारे कक्ष को ही, पर्याय के कक्ष को ही तू उपेक्षित कर दे। और उपेक्षित किया (तो) तेरी पर्यायदृष्टि छूट जाएगी। इसलिए जो होना है सो होता है, यदि ये भी तूने माना है (तो) तेरी ये पर्याय दृष्टि छूट जाएगी। बल्कि और कहें इससे भी बड़ी बात? क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा ही छूट जाएगी। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा करके और क्रमबद्ध पर्याय की श्रद्धा छूट जाएगी।

मुमुक्षुः- क्योंकि अक्रम स्वरूप से एकरूप हो जाता है।

पूज्य बाबूजीः- एकदम एकरूप हो गया न, क्रम से। तो अब पर्याय की थोड़े ही श्रद्धा रहेगी। क्रमबद्ध भी पर्याय है न! उसकी श्रद्धा छूट जाएगी पर्यायमात्र की। क्योंकि उधर क्यों देखेगा ये? उसमें अगर थोड़ी भी बुद्धि है, तो वो तो इतना सेट है, ऐसा सेटिंग है वो कि - तीन लोक (और) तीन काल में उसमें ज़रा भी तो फरक नहीं पड़ सकता है। तो ये उधर क्यों झाँकेगा? और क्यों जाएगा उधर?

बस! तो उससे विमुख हुआ कि यहाँ तो ठीक है। ये तो बिल्कुल सेट है मेरा कक्ष। पर्याय का कक्ष तो मेरा सेट है बिल्कुल, तो प्रसन्नता होती है। और प्रसन्न होकर वहाँ से विमुख हो जाता है कि बस! अब यहाँ तो कोई तीन लोक (और) तीन काल में कोई इसमें कुछ कर ही नहीं सकता। और मैं भी कुछ, (उसमें) मुझे भी कुछ करना नहीं है। बस! वहाँ से हटा और वो द्रव्य ही तो दिखता है फिर, और कौन दिखता है?

मुमुक्षुः- कोई जगह ही नहीं है दूसरी।

पूज्य बाबूजीः- कोई है ही नहीं बिल्कुल। ये उसका फल होता है। असल में तो फल तो हम समझते ही नहीं हैं। हम तो जो होना था सो हुआ। जो होना था तो (ऐसा कहकर) तू भीतर से तो रो रहा है और बाहर से ये बोल रहा है।

मुमुक्षुः- ये तो मनःपर्यय ज्ञान जैसी बात हो गई बाबूजी, आपके मन से। अद्‌भुत बात! अद्‌भुत बात! ये ही बाबूजी बात चल रही है।

पूज्य बाबूजीः- ये ही होता है।

मुमुक्षुः- ये ही होता है।

पूज्य बाबूजीः- अरे भाई! तेरा उनमें क्या है? होना था सो हुआ। उनमें क्या है? कि तेरे घर में हुआ, नोटों में हुआ, बंगले में हुआ, बंगले की दिवार गिरी। जो कुछ होना था सो हुआ। तेरा क्या हुआ इसमें? इसमें क्या होना-होना करता है तू? इसमें क्रमबद्ध पर्याय लगाता भी क्यों है तू?

मुमुक्षुः- सही बात है! ये तो उदय के खाते में (है)।

पूज्य बाबूजीः- हाँ! तू तो अपनी जो पर्याय होती है, उसमें लगा (क्रमबद्ध)। हाँ! कि ये मेरी पर्याय सेट है एकदम, त्रैकालिक! बस! उसका सेटिंग जानकर वहाँ से हट जा। वहाँ क्या करेगा? कोई भी बुद्धिमान होगा तो वहाँ से हट जाएगा (कि) यहाँ कुछ होनेवाला ही नहीं है। फिर क्या है?

तीन लोक में किसी की शक्ति ही नहीं है और मुझे करना नहीं है। क्योंकि इससे तो मेरा घर जो है वो अव्यवस्थित दिखता है, अगर मैं पर्याय को इधर-उधर करूँ तो।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर!

पूज्य बाबूजीः- (ऐसा दिखता है) कि इसके घर में व्यवस्था नहीं है। तो मेरा तो घर व्यवस्थित है। इसलिए पर्याय का कक्ष इतना सुव्यवस्थित है कि वहाँ झाँकना ही नहीं है मुझे अब। और विश्व में झाँकूँगा ही नहीं - ऐसी शपथ लेता हूँ। ऐसी शपथ लेता हूँ कि झाकूँगा ही नहीं उधर।

मुमुक्षुः- प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना सब हो गया?

पूज्य बाबूजीः- हो गया सब।

मुमुक्षुः- उसकी ओर झाँकूँगा भी नहीं।

पूज्य बाबूजीः- झाँकूँगा भी नहीं। क्यों झाँकूँगा? किसलिए झाँकूँगा? इसका अर्थ ये हुआ कि तुझे विश्वास नहीं है तेरी setting पर, तेरी व्यवस्था पर।

मुमुक्षुः- तो व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, वो कहा है - तो पर्याय की ही बात कही है।

पूज्य बाबूजीः- हो गया न! ये सारी पर्याय व्यवहार हुई। जाना हुआ प्रयोजनवान का अर्थ ये है कि वो उसे जानता रहे - ये नहीं है। लेकिन जानने में कभी आ जाए तो, बस इतना। कभी जानने में आ जाए, अपने ज्ञान की क्रमबद्ध दशा में। ज्ञान की क्रमबद्ध दशा में कभी जानने में आ जाए तो वो जाना हुआ प्रयोजनवान (है)। बस इतना! और जो जाना हुआ प्रयोजनवान होता है, उधर ज्ञान जाए क्यों बार-बार? ये तो सिर्फ जानना ही है, कुछ करना (तो) नहीं है। तो उधर क्यों जाए ज्ञान? जाएगा भी क्यों? नहीं जाएगा। समझदार होगा ज्ञान तो नहीं जाएगा।

मुमुक्षुः- [73]पर्याय की क्रमबद्धता निश्चित करके वो क्रमबद्ध से भी अलग हो जाता है।

पूज्य बाबूजीः- अलग हो जाता है। अलग हो जाता है, फिर नहीं करता है वो।

ये तो लोक के पदार्थों में लगा है। अब क्या है, क्या करें? अब तेरा बस नहीं चला तब तू कहने लगा और रोने लगा, तेरा बस नहीं चला जो। और नहीं तो बस चलता तब तो (कहता कि) कैसे हो सकता है ये? कैसे हो सकता है? - ऐसा। तो जब सारे प्रयत्न fail (अनुत्तीर्ण) हुए तब ये यहाँ आया (है)। पर आया क्या? आया ही नहीं वो तो, रो रहा है वो तो।

मुमुक्षुः- रो रहा है, रो रहा है। सचमुच रो रहा है। वो ही स्थिति है।

पूज्य बाबूजीः- दुःखी है वो तो, महादुःखी है भीतर से। क्रमबद्ध पर्याय का जो निर्णय है, वो तो सुख पैदा करता है एकदम। कि अरे! इतना बड़ा ये पर्याय समुदाय (और) इसमें मुझे कुछ करना नहीं। इतनी मेरी शान! इतनी मेरी व्यवस्था कि मुझे इसमें कुछ करना ही नहीं है।

73 पर्याय की क्रमबद्धता निश्चित करके वो क्रमबद्ध का से भी अलग हो जाता है? - 51.12 Mins

वो तो topic ही बहुत बड़ा है कि एक पर्याय को दूसरी जगह रखे तो सारा तेरा द्रव्य ही नष्ट होता है। द्रव्य ही नष्ट होता है। वो तो बहुत बड़ा topic है ये तो, क्रमबद्ध पर्याय का।

मुमुक्षुः- बाबूजी! उसका संक्षिप्त में हो सकता है तो बाबूजी, थोड़ा बोलिये न। क्योंकि जो आप इतनी बड़ी बात करते हैं और हम इससे विमुख रह जायें ये, ये बाबूजी थोड़ा दुखता है। तो आप इसमें अपना limited time (सीमित समय) लगाएँ, जितना है बाबूजी प्रयोजनभूत बोलिये।

पूज्य बाबूजीः- पर्याय को इधर-उधर कर सकता है का अर्थ ये हुआ कि इसको पर्याय को इधर-उधर करने का अधिकार मिल गया। ठीक हो गया न? नहीं?

ये अपनी पर्याय को, क्योंकि ये स्वयं इसकी है पर्याय। इसलिए ये उस पर्याय को इधर-उधर कर सकता है, ऐसा इसको अधिकार है। ऐसा इसने माना तो फिर ये कौनसी पर्याय को लायेगा? और वर्तमान में पर्यायें जो चल रही हैं, वो (तो) चल ही रही हैं। लेकिन इसका मन संतुष्ट नहीं है कि मुझे तो ये दुख नहीं चाहिए और दीनता नहीं चाहिए। हीनता नहीं चाहिए, अज्ञानता नहीं चाहिए। तो फिर उसको क्या करना पड़ेगा? कि वो जितना पर्याय का रास्ता है, जहाँ ये चल रही हैं पर्यायें, उन सारी पर्यायों को तो वो हटाएगा क्योंकि उनको हटाने का अधिकार मिल गया न इसको। उलट-फेर करने का (अधिकार)! उनको तो हटाएगा और उनके स्थान पर अब कमी भी क्यों रखेगा? वो तो सिद्ध दशा (ही) लाएगा (फिर)। ठीक हो गया? अच्छा! अब जो पर्यायें हटायी हैं उनका क्या हुआ? वो तो आयेंगी तो सही न आगे-पीछे (कभी भी)? तो वो सिद्ध भगवान करेंगे मोह का अनुभव।

मुमुक्षुः- आहाहा! अद्भुत बाबूजी! अद्भुत! क्योंकि दुख की पर्याय..

पूज्य बाबूजीः- क्योंकि उसने हटा दिया था उस समय। और वो उसको (सुख की पर्याय को) ले आया था। लेकिन वो हटी हैं लेकिन आयेंगी तो सही (कभी न कभी)। वो नष्ट थोड़ी (ना) हो गई हैं। तो आयेंगी, तो वहाँ आयेंगी (उधर)। इसलिए भगवान सिद्ध होंगे मोही-रागी-द्वेषी।

मुमुक्षुः- आहाहा! कितनी सुंदर व्यवस्था! तो अपने हाथ से ही अपनी शान (को) तोड़े रखता है?

पूज्य बाबूजीः- है ही नहीं न! एक सुख का मार्ग है (और) एक अत्यंत दुख का मार्ग है। बहुत कष्ट का मार्ग है!

मुमुक्षुः- [74]संपूर्ण द्रव्य कैसे नष्ट होता है इसमें?

पूज्य बाबूजीः- संपूर्ण द्रव्य तो नष्ट हो ही जाएगा जब वो पर्याय का प्रवाह टूट जाएगा। पर्याय का एक सुनिश्चित प्रवाह है और उस प्रवाह में से हमने एक पर्याय को निकाल दिया, तो वो टूटा कि नहीं वो प्रवाह? टूट गया! तो वो टूट गया तो वो द्रव्य टूट गया, खतम हो गया।

74 पर्याय की क्रमबद्धता न स्वीकारने में संपूर्ण द्रव्य कैसे नष्ट होता है? – 55.04 Mins

तोड़े बिना नहीं हो सकता है, पर्याय को निकालना क्योंकि पर्याय तो set है बिल्कुल अपनी जगह। और उसका प्रवाह है सुनिश्चित, एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक। ये जानता (है) कि पर्यायें इकट्ठी पड़ी हैं (तो) जो मेरी इच्छा हो, जो लाऊँ। उसका मानना ऐसा होता है। पर्यायें सब इकट्ठी पड़ी हैं। तो उनमें से मैं ढूँढ-ढूँढकर मेरी इच्छा हो जिसको लाऊँ। कि तू ला (तो) फिर बाकी का क्या होगा? जो विकारी हैं उनका (क्या होगा)? क्योंकि ऐसा थोड़े ही है कि तू कहेगा कि मैं सम्यग्दर्शन .... ना ना! सम्यग्दर्शन से क्या होता है? मुनि बन जाओगे (तो) मुनि से भी क्या होगा? और अरिहंत जाओगे तो अरिहंत भी क्यों? सिद्धि ही बनो न (फिर), जब अधिकार मिल गया है (तो)। इसलिए सबको हटाओ फिर। तो सबको हटाओ, तो वहाँ पर सिद्धदशा में लाना उनको (उन पर्यायों को)। क्योंकि वहाँ रहेंगी वो तो साथ (में फिर)।

मुमुक्षुः- तो इसका मतलब तो ये अच्छा है कि अपने-आप में वो उत्पाद हो और व्यय होकर...

पूज्य बाबूजीः- होता है माने वही है। वस्तु-व्यवस्था है वो तो। अटल है, अचल वस्तु-व्यवस्था है (वो)। एक-एक पर्याय भी पार्वती है - पर्वत की पुत्री (जो) हट नहीं सकती (है) अपनी जगह से।

मुमुक्षुः- बराबर! बिल्कुल सही बात है। कोई भी हिला नहीं सकता (है)।

पर्यायें [75]इतनी व्यवस्थित हैं तो फिर पुरुषार्थ की कहाँ जगह रही?

पूज्य बाबूजीः- हो गया न पुरुषार्थ! माने पर्याय को उलट-फेर करने का, इधर-उधर करने का जो पुरुषार्थ करता था, वो तो wastage (बर्बाद) होता था। अब इसने वो wastage तो छोड़ा और जहाँ वो सार्थक होता है, जिसके पास जाकर वो बिल्कुल निहाल होता है (जिससे) production (उत्पादन) होता है सुंदर, तो वो पुरुषार्थ ही तो हुआ वो। तो वो पुरुषार्थ ही तो हुआ। इधर-उधर करने को तो हम पुरुषार्थ मानें और इधर-उधर न करके, जैसा है वैसा करने को हम पुरुषार्थ न मानें तो ये तो हमारी गलती है न! भूल है। पुरुषार्थ पूर्वक ही हो रहा है सारा का सारा काम।

अरे! जैसे खिड़की से हमें टिकट लेना है तो एक तो पुरुषार्थ का अर्थ ये (है) कि सबको मारो, सबको हटाओ। और एक जो है चुपचाप खड़े रहो। तो अब ये समझता है कि चुपचाप खड़े रहना - ये कोई मेरा धर्म है क्या? कुछ करना चाहिए। तो वो पुरुषार्थ है या नहीं चुपचाप खड़े रहना? कितना धीरज है उसमें! कितना उद्यम है उसमें चुपचाप खड़े रहने में, उतना क्रम पार करने में। शांति रखना भी वो है न! माने अशांति में तो पुरुषार्थ है और शांति में पुरुषार्थ नहीं है। ये कैसे हो सकता है? Production (उत्पादन) तो दोनों है न? तो वो दोनों पुरुषार्थ से ही होते हैं production (उत्पादन) तो।

75 पर्यायें इतनी व्यवस्थित हैं तो फिर पुरुषार्थ की कहाँ जगह रही? पुरुषार्थ की जगह कहाँ रही? - 57.13 Mins

मुमुक्षु:- स्थिरता का भी पुरुषार्थ होता है कि नहीं?

पूज्य बाबूजी:- स्थिरता का पुरुषार्थ है न! किसी को कह दिया जाए कि यहीं खड़े रहना तो उसमें पुरुषार्थ नहीं है क्या?

मुमुक्षु:- सबसे बड़ा पुरुषार्थ तो वहाँ ही है।

पूज्य बाबूजी:- बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु:- क्रमबद्ध का स्वीकार वो ही बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

पूज्य बाबूजी:- क्रमबद्ध का स्वीकार बहुत-बहुत बहुमूल्य है बात।

मुमुक्षु:- बहुमूल्य बात है!

बाबूजी! आपने तो एक ही पासा (पड़खा) लिया कि स्वतंत्रता दे दी है (पर्याय को पलटने की)। अभी (यदि) ये स्वतंत्रता नहीं दी (जाये) तो इसकी बात करें अभी। आपने तो बोला कि मान लो वो तो हमने assumption किया कि उसको स्वतंत्रता दे दी। अभी चलो स्वतंत्र है - ये बात (तो) नक्की हो गई। अभी..

पूज्य बाबूजी:- स्वतंत्रता दे दी न! तो फिर अब हम उसे परतंत्र क्यों करना चाहते हैं (उसमें) झाँककर? या उसे छेड़कर? ये ही है न हमारी मनशा, परतंत्र करने की? वरना जो वो बिल्कुल स्वतंत्र और व्यवस्थित है तो फिर हम उसकी ओर देखकर (या) झाँककर बार-बार उसकी ओर निगाह करके हम उसे परतंत्र ही तो करना चाहता हैं... कि ये नहीं ये, ये हमारा मन है। और वो हो नहीं सकेगा (तो) इसलिए कष्ट पाएगा।

ये ही कष्ट रहा पर्याय में उलट-फेर करने का ही, जितना कष्ट रहा वो। अब वो हो नहीं सकती। ये मानता है कि पर्याय मेरी है तो कैसे नहीं होगी? वो तेरी है, तो तेरी शान इसमें है कि वो व्यवस्थित हो। इसमें है घर की शान तो। ऐसा नहीं है कि इसको उठाकर वहाँ रखो और इसको उठाकर वहाँ रखो। वो तो पागलपन है वो तो। Setting होना चाहिए न घर का भी, तब सुंदर लगता है वो। और फिर इसे तो फुरसत मिलेगी ही नहीं कभी (यदि) उस एक पर्याय में (उलट-फेर) करना शुरू किया (तो) ये पर्यायें तो अनंतानंत हैं। तो अनंतानंत काल तक फँस गया ये पूरी तरह से।

मुमुक्षु:- माने कि सही बात तो ये है कि पर्याय को उसके हाल पर छोड़ दो।

पूज्य बाबूजी:- हाँ बिल्कुल! पर्याय कक्ष जो है मेरा... मेरे कई कक्ष हैं। एक द्रव्य कक्ष है, एक गुण कक्ष है (और) एक पर्याय कक्ष है। तो पर्याय कक्ष को बिल्कुल, वो व्यवस्थित है एकदम। उसके किवाड़ (दरवाज़े) ही बंद कर दो।

मुमुक्षु:- चिंता करने की जरूरत नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसमें कुछ होना ही नहीं है।

मुमुक्षु:- अब गुणों की बात।

पूज्य बाबूजी:- गुण भी वैसे ही हैं। गुणों में तो कोई बात ही नहीं है। उनमें कहाँ उलट-फेर होता है?

मुमुक्षु:- [76]बाबूजी! क्रमबद्ध के स्वीकार में द्रव्यदृष्टि आ गई?

पूज्य बाबूजी:- आई, ये आई न! इसी से आती है। ये ही आती है।

मुमुक्षु:- जो पर्याय को बार-बार देखता है, उसको फेर करने की दृष्टि बनी रहेगी?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! दृष्टि तो है ही उसको, मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या प्रयास है उसका वो कि पर्याय को बार-बार देखता है, उसका वो प्रयास मिथ्या है। क्योंकि वो उसको इधर-उधर करना चाहता है। अपने स्थान से हिलाना चाहता है (और) वो अपने स्थान से हिलती नहीं है। अपने स्थान से नहीं हिलती है। ये आत्मा का जो सदन है, घर है, आत्मा का जो राजमहल है उसकी शान है ये। ये उसकी शान है ये, सचमुच। द्रव्य की शान ये है कि मेरी पर्याय ऐसी व्यवस्थित है कि उसमें कुछ होना ही नहीं (है) कभी, तीन लोक (और) तीन काल में। अब हम मानते हैं कि उसे दीनता कि (फिर तो) पुरुषार्थ नहीं रहेगा, पुरुषार्थ नहीं रहेगा। निहाल हो जाएगा वो, तुरंत आनंद को लेकर उत्पन्न होगा पुरुषार्थ।

मुमुक्षु:- सही बात है! माने जहाँ पर्याय की दृष्टि छूटी तो सही प्रकार से आनंद ....

पूज्य बाबूजी:- एक ही वस्तु बची है, बस। उसी वस्तु में तन्मय हो जाएगा तो आनंद का जन्म होगा क्योंकि उसके भीतर आनंद ही आनंद है। पर्याय में तो ये था ही नहीं। वो तो मैली-कुचैली न मालूम कैसी-कैसी आ रही थी। तो उससे क्या मिलने वाला था?

मुमुक्षु:- पर बाबूजी पर्यायदृष्टि के छूटने के बाद गुण-भेद के ऊपर भी तो दृष्टि जा सकती है?

पूज्य बाबूजी:- जा सकती है तो उसको भी छोड़ देगा। क्योंकि उसे मिला कहाँ उसे? उसका जो इष्ट था उसकी उपलब्धि नहीं हुई, तो वो उसको छोड़ देगा। इसमें इन गुणों को गिना थोड़े ही जाता है। गुणों को तो चूसा जाता आम की तरह, आम की तरह चूसा जाता उसे।

और वो इकट्ठे कैसे हों सारे के सारे? कि वो एक द्रव्य को मैं देखूँ तो सब इकट्ठे हो जाते हैं। सब इकट्ठे पड़े हैं उसमें। और मैं अलग-अलग देखूँगा तो एक भी नहीं आएगा। खाली विकल्प का धुआँ होकर रह जाएगा।

मुमुक्षु:- आहाहा! विकल्पों का धुआँ बनकर रह जाएगा।

पूज्य बाबूजी:- आत्मा का अनुभव करने की पद्धति ये है। कहाँ उसके टुकड़े करो? जो अखंड है, उसको अखंड अनुभव करो। बस! उसमें मिल जाएगा। टुकड़ों में क्या मिलता है? इसलिए गुण-भेद के भी विकल्प नहीं (हैं) और पर्याय के भी नहीं (हैं)। दोनों छूट जाते हैं।

76 क्रमबद्ध के स्वीकार में में द्रव्यदृष्टि आ गई? - 1.01.44 Hours

मुमुक्षुः- [77]बद्ध क्यों कहा बद्ध? क्रमबद्ध?

पूज्य बाबूजीः- क्रम-नियत शब्द है शास्त्र का (और) उसका जो हिन्दी है वो बद्ध है। बद्ध का अर्थ ये कि वो बंधी हुई। बंधे हुए क्रम में चलती है। बंधा हुआ क्रम माने जिस समय होना है उस समय (होती है)।

मुमुक्षुः- जुड़ी हुई नहीं?

पूज्य बाबूजीः- क्रमबद्ध माने बद्ध-क्रम (अर्थात्) क्रम नियत - ये शास्त्र का शब्द है। क्रमबद्ध जो है अपना, उसका अर्थ (ये) है (कि) बद्ध-क्रम में चलती है पर्याय, बंधे हुए क्रम में। एक के बाद एक चलती है, वो तो क्रम हुआ खाली। लेकिन बद्ध-क्रम वो होता है कि वो उसमें फरक (भी) नहीं पड़ता है। जो आनेवाली है वो ही आएगी, दूसरी नहीं आ सकती।

मुमुक्षुः- क्रमसर तो आती है, पर....

पूज्य बाबूजीः- ये तो सब दुनिया मानती है कि पर्याय में कहाँ फर्क पड़ा? अगर हमने इधर-उधर भी की तो भी पर्याय के बाद पर्याय ही तो आई। उसमें क्या फर्क पड़ा? लेकिन बद्ध-क्रम है उसका।

मुमुक्षुः- जो आनेवाली है।

पूज्य बाबूजीः- जो आनेवाली है।

मुमुक्षुः- कितना सुव्यवस्थित है!

पूज्य बाबूजीः- बहुत व्यवस्थित है। बहुत व्यवस्थित और हर चीज में से वो ही वो ही शुद्धात्मानुभूति (ही) निकलती है। हर चीज (में) हर सिद्धांत में से वही निकलती है।

मुमुक्षुः- तो इसका मतलब तो ये हुआ कि क्रमबद्ध को नहीं माने तो कर्म से बद्ध हो जावे।

पूज्य बाबूजीः- ये बिल्कुल अपराध करता है न! अपराध करता है न कि जो अपनी जगह सुव्यवस्थित है, ये उसको जाकर और disturb करता है। तो कितना बड़ा अपराध हुआ? बहुत बड़ा अपराध हुआ न ये? एक officer का बंगला हो और वहाँ दो-चार आदमी जाकर जो हैं उसको table को भी उलट दें, कुर्सियाँ भी उलट दें (और) officer को भी पटक दें, तो क्या होगा उनका? आखिर कारावास ही तो होगा।

तो ये जो पर्याय का जो ये कक्ष है, कक्षा है पर्याय की, ये कमरा है, उसमें जो व्यवस्था है उस व्यवस्था को ये क्यों बिगाड़ता है? (और) वो बिगड़ेगी ही नहीं, तो अपराधी है इसलिए कर्म बंधते हैं।

मुमुक्षुः- बाबूजी! बहुत सुंदर! वो बिगड़ती नहीं (है) लेकिन बिगाड़ने की चेष्टा का बहुत बड़ा अपराध है न ये?

पूज्य बाबूजीः- चेष्टा ही है न ये, बिगड़ता थोड़े ही ना है।

77 बद्ध क्यों कहा बद्ध? क्रमबद्ध? - 1.04.46 Hours

मुमुक्षुः- बिगड़ने की चेष्टा का अपराध!

पूज्य बाबूजीः- हाँ! केवल चेष्टा! मिथ्यात्व में भी, मिथ्याज्ञान में भी (और) मिथ्याचारित्र में भी केवल चेष्टा (है)। उससे कोई काम होना नहीं है, उसके विषय से। चेष्टा का (अपराध) माने intention का (अपराध)।

मुमुक्षुः- सचमुच किया होता तो कितना भारी अपराध बनता!

पूज्य बाबूजीः- चेष्टा माने प्रयत्न करता है पर सफल नहीं होता (है) और नियत अच्छी नहीं है। नियत अच्छी नहीं (है)। Intention (नियत) खराब है।

मुमुक्षुः- वस्तु-व्यवस्था का अनादर का इतना दोष, अद्‌भुत!

पूज्य बाबूजीः- कोई बहुत बड़ी भीड़ हो। अब उसमें से पुरुष भी निकल रहे हैं, स्त्रियाँ भी निकल रही हैं और बहुत बड़ी भीड़ है। तो ऐसे ठसाठस निकल रहे हैं, एक दूसरे को छूकर। वहाँ कौन किसी को दोष देता है? कोई दोष नहीं देता कि ये है ही ऐसी, व्यवस्था ही ऐसी है। क्योंकि नियत (खराब) नहीं है। उसमें तो ये है कि मुझे निकलना है बस। नियत खराब नहीं है। और ऐसा ही वो किसी दूसरे समय पर कर ले (कि) जहाँ पर खुला सा हो मैदान और खुला सा बाजार हो, तो वहाँ चप्पल पड़ जाएगी।

मुमुक्षुः- सही बात है! Intentions (नियत) खराब है। Intentions are bad - बहुत बुद्धिगम्य है।

पूज्य बाबूजीः- एक तो कोई बदनियत पुरुष हाथ लगाता है स्त्री को और एक डॉक्टर पूरा का पूरा investigation (निरीक्षण) करता है। कौन है अपराधी? और डॉक्टर पूरा investigation करता है सारा के सारा, फिर भी निर-अपराध है।

मुमुक्षुः- पर्याय की व्यवस्था को बदलने की नियत खराब है।

पूज्य बाबूजीः- नियत खराब है। नियत खराब है क्योंकि वो होती नहीं है। होती नहीं है (तो) इसे करना नहीं चाहिए। ये स्वयं अपनी व्यवस्था बिगाड़ता है। अपने घर की व्यवस्था बिगाड़ता है न, इसलिए अपराधी है ये। सारे जीव लोक की (व्यवस्था को) बिगाड़ना चाहता है।

मुमुक्षुः- जो खुद का बिगाड़ेगा वो तो पूरे जीव-लोक का बिगाड़ेगा।

पूज्य बाबूजीः- सबको ही ऐसा मानेगा न वो।

मुमुक्षुः- एक छोटी सी दिखनेवाली गलती के पीछे तो कितनी गलतियों की बौछार लगी हुई है। मालूम नहीं पड़ता।

पूज्य बाबूजीः- अपराध के पीछे अपराध होता है।

मुमुक्षुः- अपनी पर्याय को फेर-बदलना चाहा, तो पूरे विश्व की व्यवस्था...

पूज्य बाबूजीः- मानता है न? पूरे विश्व को मानता है। सब जड़-चेतन सबको कर दिया वो तो, पराधीन....

मुमुक्षुः- महासिद्धांत है ये बाबूजी।

पूज्य बाबूजीः- महासिद्धांत! महासिद्धांत ही हैं ये सब। जैनदर्शन में महासिद्धांत ही हैं सारे ही। एक-एक सिद्धांत महान है, कोई छू नहीं सका उनको।

मुमुक्षुः- एक-एक में से अनुभूति ही निकलती है।

पूज्य बाबूजीः- कोई विचार ही नहीं कर सकता। उसमें क्या है अपनी पर्याय है, कैसे भी करो। बस हो गया। उसमें पर्याय में क्या दिक्कत है? कैसी भी लाओ, कैसी भी ले जाओ, कहीं रखो। तुम्हारी इच्छा हो जिसे आने दो, तुम्हारी इच्छा नहीं हो तो मत आने दो। सीधी सी बात!

सबको समझ में बैठ जाती है कि हाँ! बात तो ठीक है कि जब अपनी है तो फिर क्या है? अपनी है, अपनी व्यवस्था है घर में। फिर भी कोई बच्चा है, वो उसको अगर गड़बड़ करता है तो उसको चपत पड़ती है (कि) क्या करता है ये? क्यों बिगाड़ता है? व्यवस्था को बिगाड़ना है ये तो। उधर झाँकना ही व्यवस्था खराब करता है।

मुमुक्षुः- आहाहा! उधर झाँकना ही।

पूज्य बाबूजीः- झाँकना ही व्यवस्था खराब करता है। तुमने देखा क्यों आखिर? किसके लिए देखा?

परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

जिनवाणी-स्तुति

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर २१, तारीख १४-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षुः- [78]प्रश्न का थोड़ा सा निराकरण बाकी है वो ले लेते हैं। कल एक प्रश्न आया था, उसके अनुसंधान में (ही है कि) त्रिकाली ध्रुव तो अकार्यकारणत्व का धारक (कहा) है। तो फिर श्रद्धा और ज्ञान की परिपूर्णता का असली कारण कौन है? यानि श्रद्धा की पर्याय और ज्ञान की पर्याय का असली कारण, परिपूर्णता का कारण कौन है? तो कुछ जो प्रश्न का उत्तर दिया गया था उससे ज्यादा स्पष्टीकरण हो जाए कि असली कारण कौन है? जैसे उपादान से तो बता दिया और उपचार से तो कारण परमात्मा बताया था। फिर भी थोड़ा सा...

पूज्य बाबूजीः- पर्याय का असली कारण तो पर्याय ही होती है। शुद्धात्माभिमुख जो पर्याय है वो असली कारण है (अर्थात्) उपादानकारण है। उसी के षट्कारकों से शुद्धात्मानुभूति होती है। असली कारण तो ये ही है।

मुमुक्षुः- तो इसमें कारणशुद्धपर्याय का क्या कार्य होता है?

पूज्य बाबूजीः- कारणशुद्धपर्याय का काम नहीं है इसमें, (लेकिन) वो तो साथ ही चलती है। जो शुद्धात्मा है वो उसके साथ चलती है। इसमें नहीं है। शुद्धात्मानुभूती में कारणशुद्धपर्याय नहीं है। कारणशुद्धपर्याय कोई नयी पैदा नहीं होती (है), पर कारणशुद्धपर्याय तो द्रव्यस्वरूप ही है। द्रव्य का स्वरुप ही है। यानि द्रव्य का जो प्रतिसमय एकरूप रहनेवाला जो वर्तमान है, एकरूप रहनेवाला.... द्रव्य तो त्रैकालिक है। है न! भूत-भविष्य-वर्तमान सबको एकदम अपने में समेटे बैठा है (वो) और एकरूप रहता है।

तो वो द्रव्य की जो वर्तमानकालिक एकरूपता है, उसको कारणपर्याय कहते हैं। माने त्रैकालिक का तात्कालिक, उसका नाम कारण(शुद्ध)पर्याय है। और द्रव्य कैसा है? कि कैसा है? जैसे आत्मानुभूति का अवसर हो, तो उस समय क्या विचार किया जायेगा कि कौनसे द्रव्य का अनुभव करूँ? कल वाले का करूँ? या आगे आने वाले कल का करूँ? या वर्तमान का करूँ? कौनसे द्रव्य का करूँ? कि कुछ नहीं! ये वर्तमान में जो है इसका करो। तो वो वर्तमान में जो कारणपर्याय है, कारणपर्याय सहित ही जो द्रव्य है उसकी अनुभूति होती है।

मुमुक्षुः- माने प्रश्नकार का ये प्रश्न था कि उपादान से तो पर्याय का कारण पर्याय मानी गई और उपचार से जो कारणशुद्ध परमात्मा कहा गया? - वो उपचार है। तो क्या कारण परमात्मा के

78 कारणशुद्धपर्याय की चर्चा। - 0.15 Mins

बजाय कारणशुद्धपर्याय भी कारण बनती है, जो कार्यरुप से श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय परिपूर्ण हुई है तब?

पूज्य बाबूजी:- कारण परमात्मा भी कहने की बात है न! उपचार है न! तो कारणशुद्धपर्याय भी उपचार ही हो गई। वो सहित द्रव्य जो है वो उसकी अनुभूति होती है। कारणशुद्धपर्याय सहित जो शुद्धात्मा है उसकी अनुभूति होती है, अनुभव की दशा में। तो जैसे वो द्रव्य कारण बना उपचार से, उसी तरह ये भी कारण बनती है, उपचार से। क्योंकि ये उत्पाद-व्ययवाली नहीं है पर्याय। पर्याय कहने से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उसमें परिणमन हो ही हो। पर्याय असल में भेद को कहते हैं।

जैसे गुणों का विचार जब किया जाता है, तो वो पर्यायार्थिकनय से होता है। और गुणों को द्रव्य के साथ लेकर जब विचार किया जाता तो वो द्रव्यार्थिकनय से होता है। वो निश्चयनय से, शुद्धनय से होता है।

मुमुक्षु:- ये प्रभु क्या बताया?

पूज्य बाबूजी:- गुणों का विचार जब किया जाता है आत्मा की महिमा बढ़ाने के लिए, तो वो पर्यायार्थिकनय से होता है। क्योंकि भेद कहते हैं न उस अंश (को), अंश पर हम विचार कर रहे हैं। तो वो जो है पर्यायार्थिकनय का विषय होता है। गुण पर्यायार्थिकनय के विषय कैसे होते हैं? और द्रव्यार्थिक के कैसे हो जाते हैं? तो क्योंकि द्रव्य जो है वो सारे ही गुणों को समेटे बैठा है अपने में। इसलिए जब अनंत गुणों को द्रव्य के साथ लेकर अनुभव किया जाता है, तो वो द्रव्यार्थिकनय का शुद्धनय का विषय होता है। आया (है) न ७वीं गाथा में, आया न! परमार्थ से देखा जाए तो अनेक पर्यायों को एक द्रव्य पी जाता है। ऐसा आया न ७वीं (गाथा) में! तो अनेक पर्याय माने?

मुमुक्षु:- गुण-भेद!

पूज्य बाबूजी:- अनेक पर्याय माने गुण। गुण-भेद नहीं गुण। अनेक गुणों को द्रव्य पी जाता है। इसलिए फिर आगे कहा कि **किंचिन्मिलितास्वादम (समयसार आत्मख्याति टीका गाथा ७)** किंचित् मिला हुआ स्वाद अनुभव में आता है।

मुमुक्षु:- वाह! वाह!

पूज्य बाबूजी:- उसका अर्थ ये कि गुण और द्रव्य अथवा गुण और पर्याय - ये दोनों मिलकर एक भी नहीं हो जाते और सर्वथा अलग-अलग भी नहीं रहते। अनंत गुणात्मक जो द्रव्य है, वो और पर्याय, अनुभव करनेवाली (पर्याय) और उससे उत्पन्न होनेवाला आनंद - ये सर्वथा अलग-अलग भी नहीं होते और सर्वथा एक भी नहीं हो जाते। इसलिए **किंचिन्मिलितास्वादम (समयसार आत्मख्याति टीका गाथा ७)** किंचित् मिला हुआ स्वाद! माने सारे गुणों का स्वाद तो न्यारा-न्यारा है जो उनकी पर्याय में आता है। पर्याय में जो परिणमन होता है, उनकी योग्यता के

अनुसार जितनी शुद्धि होती है तो उतना उसमें आता है। तो वो जो है (वो) है तो अलग-अलग हर एक गुण का। तो इस दृष्टि से तो वो बिना मिला हुआ (है) क्योंकि हर एक गुण का न्यारा-न्यारा पर्याय का स्वाद हुआ, शुद्ध पर्याय का। और सब गुणों की पर्याय का एकरुप होकर एक बार में अनुभव होता है। वो हुआ **किंचिन्मिलितास्वादम** किंचित् मिले हुए स्वादवाला। इसलिए किंचित् शब्द दिया आचार्य ने कि पर्यायें रहती हैं न्यारी-न्यारी। तो न्यारी-न्यारी होने पर भी जो अनुभूति है, उसकी गरिमा है ये, उसकी विशेषता है कि वो सबका निचोड़ यूँ.... जैसे ठंडाई को पीते हैं निचोड़कर, इस तरह से वो पी जाती है। तब आनंद प्रगट होता है। अगर अलग-अलग अनुभव करे तो आनंद प्रगट नहीं होता।

इसलिए पर्याय में ही, पर्याय का उपादान ही कारण है सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का। लेकिन मुख्यता क्या है कि तीनलोक में जितने पदार्थ हैं और जितने अन्यभाव हैं, रागादिक-द्वेषादिक, पुण्य-पाप इत्यादिक, इनमें से कोई भी शुद्धात्मा की अनुभूति के लिए काम का नहीं है। ये बताने के लिए (कहा)। तो कौन है (कारण)? कोई कारण नहीं है। इनमें से कोई भी कारण नहीं है। तो कौन है कारण? कि जो बचा हुआ है ज्ञायक चिन्मात्र, वो ही कारण है - ये कहा जाता है। इसलिए उसे कारण परमात्मा कहा।

वैसे न्याय की दृष्टि से देखा जाए तो अगर कारण कहा जाए तो वहाँ कार्य की उत्पत्ति होना (ही) चाहिए। उसकी परिभाषा ये है कि **पूर्वक्षणवर्तित्वं कारण लक्षणम्** और **उत्तरक्षणवर्तित्वं कार्य लक्षणम्।** जो पूर्व क्षण में रहता है वो कारण है और जो उत्तर क्षण में होता है वो कार्य है। लेकिन यहाँ ऐसी नहीं है विवक्षा। यहाँ तो तीन लोक, तीन काल में एकमात्र शुद्ध ज्ञायक के अवलंबन से ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आत्मानुभूति होती है। इसलिए ये बताने के लिए कि सारे विश्व में कौन है कारण? तो एकमात्र ज्ञायक ही कारण है, इसलिए कहा गया। पर वो कारण नहीं वास्तव में, क्योंकि कारण अगर बन जाएगा तो वो क्षणिक हो जाएगा। क्योंकि कारण बदलता रहता है।

जैसे पहली पर्यायवाला जो द्रव्य है वो कारण, तो उत्तर पर्यायवाला जो द्रव्य है वो कार्य। फिर उत्तर पर्यायवाला द्रव्य कारण (है) और उसके आगे आनेवाली पर्यायवाला द्रव्य जो है (वो) कार्य है। इस तरह अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय विशिष्ट द्रव्य, वो कारण (है) और अनंतर उत्तर क्षणवर्ती द्रव्य वो कार्य (है) - ऐसा होता है। ये है असली परिभाषा कारण-कार्य की। और इससे भी आगे चलें तो पर्याय का कारण पर्याय ही है। बस!

उसको तो ये बताने के लिए (कहा) कि तीन लोक में जो अनंत हैं, अनंत-अनंतानंत वस्तुयें जो हैं, इनमें से सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदन ज्ञान शुद्ध, आत्मानुभूति ये किसके अवलंबन से प्रगट होगी? तो ये एकमात्र चिन्मात्र ज्ञायक के अवलंबन से प्रगट होगी इसलिए वही कारण है। तो अब अन्यत्र जाना छूट गया न सब जगह! अपनी पर्यायों का भी अवलंबन और जगत का (भी) अवलंबन

वो छूट गया न? ये ही है एकमात्र अवलंबन लेने लायक, आश्रय करने लायक, अनुभव करने लायक - इस तरह समझना चाहिए।

मुमुक्षु:- तो बाबूजी! इसमें कारणशुद्धपर्याय का क्या प्रयोजन हुआ? कारणशुद्धपर्याय का प्रयोजन क्या हुआ?

पूज्य बाबूजी:- ये हुआ न (कि) उसमें उलझन नहीं रही (कि) कौनसे द्रव्य का अनुभव करूँ, कल वाले का कि आज वाले का? या (आने वाले) कल वाले का? वो त्रैकालिक है न! इसलिए सीधा ये जो विद्यमान है न, इसका (अवलंबन) करो।

मुमुक्षु:- वो कारणशुद्धपर्याय (है)?

पूज्य बाबूजी:- वो कारणशुद्धपर्याय (है), कारणशुद्धपर्यायवाला द्रव्य। केवल कारणशुद्धपर्याय की नहीं होती है अनुभूति। कारणशुद्धपर्यायमय द्रव्य, उसकी अनुभूति होती है।

मुमुक्षु:- तो साहब! कारणशुद्धपर्याय पर्याय नहीं है, तो पर्यायमय द्रव्य उसका अर्थ क्या?

पूज्य बाबूजी:- पर्यायमय माने कारणशुद्धपर्यायमय। कारणशुद्धपर्याय की वार्ता चलती है न? कारणशुद्धपर्यायमय जो द्रव्य है उसकी अनुभूति होती है।

मुमुक्षु:- कारणशुद्धपर्याय स्वयं ही द्रव्य है, तो फिर उसमय द्रव्य क्यों कहा?

पूज्य बाबूजी:- उसमय कहा जाएगा न ये तो। उसमय कहा जाएगा, जब दो भेद हमने किए तो उसमय (ही) तो कहा जाएगा।

मुमुक्षु:- वर्तमानमय त्रैकालिक?

पूज्य बाबूजी:- वर्तमानमय त्रैकालिक।

मुमुक्षु:- त्रिकाली में वर्तमान तो आ ही जाता है। त्रिकाल में वर्तमान तो है ही है। तो (उसको) त्रिकाली बोला जाता है - ऐसा?

पूज्य बाबूजी:- त्रिकाल में वर्तमान आया न! पर वर्तमान में वो भी तो आए भूत और भविष्य भी। इसलिए वो विकल्प टूट जाता है उसका और केवल ये जो विद्यमान है, बस इसका अनुभव करता है। उसमें काल संबंधी विकल्प टूट जाते हैं।

मुमुक्षु:- ये जो वर्तमान है वो त्रिकाली से अलग नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- अलग नहीं है। त्रैकालिक से अलग नहीं है वो।

मुमुक्षु:- [79]एक प्रश्न है कि आत्मदर्शन होने के पहले आत्मार्थी का व्यवहार कैसा होता है? (अथवा) कैसा होना चाहिए?

पूज्य बाबूजी:- आत्मदर्शन होने के पहले (का व्यवहार) - ये गतियों की अपेक्षा न्यारा-न्यारा है। क्योंकि सब गतियों में एक से साधन नहीं मिलते। लेकिन उसमें मुख्य जो है वो आत्मा की वो विशुद्धि कि जिस विशुद्धि तक पहुँचकर शुद्धात्मा का पुरुषार्थ किया जा सकता है, अलग

79 आत्मदर्शन होने के पहले आत्मार्थी का व्यवहार कैसा होता है? - 13.43 Mins

से। विशुद्धि तो वहाँ रहे। विशुद्धि तो वहाँ रहे माने अस्तित्वरूप रहे। और उस विशुद्धि से हटकर, वहाँ से उपयोग को हटाकर और शुद्धात्मा के अभिमुख होकर, उसके स्वरुप के अभिमुख होकर उसका चिंतन करे और फिर उसका अनुभव करे। तो वो विशुद्धि कारण होती है। उस विशुद्धि को कारण कहा जाता है। है वो बाधक लेकिन साधक कहा जाता है। है वास्तव में बाधक क्योंकि विपरीत है पर्याय।

विशुद्धि माने दो अर्थ में आता है। एक तो शुद्धि के अर्थ में आता है और एक विशुद्धि जो है वो शुभभाव के अर्थ में आता है। यहाँ शुभभाव से तात्पर्य है कि शुभभाव जो है, वो किस प्रकार का होना चाहिए। लोक में जो अनेक प्रकार के शुभभाव होते हैं। होते है न बहुत से - जैसे अपात्रों को खाना खिलाना, गायों को घास डालना या जानवरों को चारा डालना, धर्मशालायें बनाना इत्यादि। और कोई संस्थायें खोलना ये (भी) उसमें शामिल नहीं है। ये तो सभी करते हैं, सारी दुनिया ही करती है ये तो। इसलिए विशेष प्रकार की विशुद्धि (चाहिए)। भले वो विशुद्धि ज्यादा हो सकती है, दूसरे लोगों की; उससे नहीं है मतलब। लेकिन एक विशेष प्रकार की विशुद्धि (होनी चाहिए) कि जिसके होने पर शुद्धात्मा का पुरुषार्थ किया जा सके। वो होती है।

जैसे भोजन बनाते हैं न अपन। तो stove (चूल्हा) होता है। तो stove की दो गति होती हैं या तीन गति मान लो। एक तो ऐसी कि बहुत तेज, एक ऐसी कि बहुत धीमी और एक ऐसी कि मध्यम। तो मध्यम जो उसका ताप है, उसमें हम भोजन बना सकेंगे। बहुत तेज में बनायेंगे तो जल जाएगा। बहुत कम में बनायेंगे तो कच्चा रह जाएगा। इसलिए मध्यम जो ताप है उसमें (भोजन) बनेगा।

इसी प्रकार विशुद्धियाँ तो अनेक प्रकार की औरों को भी होती हैं। और माने जैनेतर जो दूसरे हैं, उनको भी होती है। पर वो विशुद्धि भी इधर बिल्कुल शामिल नहीं है। इसलिए यहाँ का जो व्यवहार है, वो भी विशेष प्रकार का होता है। वो नैतिकता नहीं! नैतिकता जैसे जगत में कोई आदमी जो है, वो हिंसा तो करता है लेकिन झूठ नहीं बोलता; इत्यादि, इत्यादि। इस तरह के पंगु व्यवहार होते हैं। और कैसे भी हों, वो उनके.... जैसे अगर वो उपवास करते हैं और रात में खाते हैं तो वो व्यवहार नहीं माने। यद्यपि होता है और वो भी वहाँ बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं। वो भी बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं लेकिन वो व्यवहार बिल्कुल नहीं (है)। यहाँ तो व्यवहार है शुद्ध, जो भगवान जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक और जो अन्य प्रकार का व्यवहार उत्पन्न होता है आत्मा में। एक तो भक्ति वो भी व्यवहार (है) और एक अन्य प्रकार का (है) जो लौकिक व्यवहार होता है अन्य प्रकार का, जैसे अनुकंपा, दया का परिणाम (आदि)। तो दया का परिणाम कैसा होता है? और लोगों को तो ऐसा होता है कि भाई! ये ठीक हो जाए। मैं इसको ठीक करता हूँ। मैं इसको ठीक कर सकता हूँ, इसलिये मुझे इसकी सेवा करना चाहिये। इस तरह का व्यवहार अथवा उसको जो है वो भोजन दे देना, दवाई दे देना इस तरह का।

यहाँ तो व्यवहार ऐसा होता है कि वो जो अनुकंपा होती है, उसमें उसको ज्ञानी को ये विचार आता है कि ये भवार्णवों (भव के दुखों) से कैसे छूटे? बस! ऐसा जानकर उसके प्रति जो दया का भाव हो और उसमें फिर (साथ-साथ उस रूप) शारीरिक क्रिया भी हो जाए। तो वो इस तरह की अनुकंपा होती है। माने यहाँ सभी विशेष प्रकार के ही हैं, जैनदर्शन में। जितने भी अन्य प्रकार के और विशुद्ध भाव कहे जाते हैं, वो भी यहाँ पर विशेष प्रकार के हैं सारे के सारे।

अकलुष भाव माने - जिसमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह इत्यादि का परिणाम न हो। उस समय नहीं होता है। माने जिस समय वो विशुद्धि (हो उस) में वो नहीं होता है। और होता तो है, अपन सब लोगों को पापभाव तो होता है। लेकिन जिस समय वो विशुद्धि हो तो उस विशुद्धि में वो पापभाव नहीं होता, निमित्त नहीं बनता है। और सत्य को तुरंत स्वीकार करे।

इधर अहिंसा का परिणाम इतना जबरदस्त कि किसी एक जीव की मेरे से हिंसा न हो। यद्यपि लोग इसको चारित्र में लेते हैं, लेकिन ये चारित्र नहीं है। ये तो व्यवहार-चारित्र कहलाता न? पर यहाँ व्यवहार-चारित्र भी नहीं है क्योंकि असली चारित्र का अभी जन्म ही नहीं हुआ। इसलिए व्यवहार भी नहीं बताया (है)। तो उसके पहले की भूमिका है ये तो। जैसे हम भोजन बनाते हैं, तो उसके पहले रसोई को साफ करते हैं। तो ये सफाई है एक तरह की।

मुमुक्षुः- बस! वो सफाई कैसे हो?

पूज्य बाबूजी:- वो सफाई है। भोजन बनाना नहीं है लेकिन ये सफाई है एक तरह की। इसलिए ऐसा परिणाम हो कि दया में भीगा रहे हमेशा। चित्त हमेशा दया में, अनुकंपा में भीगा रहे और वो इस रूप में कि ये जीव भवार्णव से कब छूटे - ये। और उसके लिए जो भी करना (हो), जो भी औषधि देना हो, वो (सब) सेवा भले ही उसकी हो। लेकिन भीतर से परिणाम ये हो कि ये कैसे छूट जाए हमेशा के लिए - इस तरह का। ऐसी दया का परिणाम!

तो और तो लोक व्यवहार के बारे में बहुत बातें हैं। जैसे व्यवसाय करता है, तो व्यवसाय में सत्यवादिता होनी चाहिए। झूठ-अझूठ बहुत अधिक न हो। अथवा ऐसा न हो कि जो राजकीय नियमों के विरुद्ध हो, जिसके कारण हमेशा tension (आकुलता) बनी रहे, हमेशा पापभाव बना रहे, भय बना रहे, चिंता बनी रहे। तो उस परिणाम में जो है वो, तत्त्व का सुनना (श्रवण) ही नहीं हो (पाये)गा। तत्त्व का सुनना (श्रवण) नहीं होगा। इसलिए उसमें बन नहीं सकता है। माने इतना विरुद्ध कार्य करे कि जिसमें हमेशा शंका बनी रहे कि कहीं मैं पकड़ा नहीं जाऊँ! कहीं जो है, वो मेरे ऊपर कोई मुसीबत न आ जाए, इत्यादि-इत्यादि।

दया का परिणाम ऐसा हो कि जैसे घर में कोई बीमार है परिवार में। आजकल तो क्या है, प्रचलन क्या है आज (कि) घर में तो भले ही कोई पिता मर रहा हो तो मरे, लेकिन वो hospital (अस्पताल) में (दूसरों की) सेवा करने जाएगा। वो अपनी सेवा दिखाने के लिए hospital (अस्पताल) जाएगा। लेकिन तत्त्वज्ञानी को या जो तत्त्वज्ञान के मार्ग पर है उसको ऐसा नहीं होता

है। उसको तो पहले घर में अगर उसको ये दया नहीं है तो उसको (कहीं और) दया हो ही नहीं सकती (है)।

जैसे उदाहरण के लिए अपना जो परिवार है, पारिवारिक जो अपना परिक्षेत्र है एक। तो उस क्षेत्र में अगर अपने को अपने जो भाई हैं, बहन हैं या कुटुंब है, परिवार है। उनके प्रति तो दया नहीं हो और पंचकल्याणक करावे। वो तो भूखो मरते हों माने उनको तो रोटियाँ भी बड़ी मुश्किल से मिलती हों और (ये जो है वो) पंचकल्याणक करावे। तो वो जीव पंचकल्याणक नहीं करा सकता, भले ही करा लिया हो उसने लेकिन वो करा नहीं सकता है। उसको पुण्यभाव नहीं होगा उतना। इसलिए उसका पहला कर्तव्य ये है कि वो अपने परिवार को संभाले - ये। दान न दे (क्योंकि) वो दान नहीं कहलायेगा परिवार का। लेकिन उसका पहला कर्तव्य ये है।

इसलिए सबसे पहले तो वो सेवा और दया का जो (परिणाम) है, वो परिवार से शुरू हो। जैसे परिवार में कोई ऐसा है (कि) बहुत कष्टसाध्य बीमार है। बहुत अधिक बीमार है। तो जैसे ये वृद्धायें होती हैं न बूढ़ी स्त्रियाँ जो होती हैं। तो उनको क्या होता है कि उनको कुछ नियम जैसे होते हैं। तो उन नियमों में क्या होता है कि - मुझे तो जल्दी मंदिर जाना है। ६ बजे मंदिर पहुँचना है (और) फिर वहाँ जाकर पाठ सुनना है। फिर वहाँ जाकर जो है मुझे पूजा करना है, ये करना है। तो घर में जैसे कोई बीमार है तो वो उसकी उपेक्षा करके और (मंदिर) चली जाएगी। और उसको कह जाएगी कि ये ले, ये दवा ले लेना और ये-ये कर लेना और मेरा तो मंदिर का टाइम हो गया। तो उसको समझना चाहिए कि उसका मंदिर पहले ये है, उसका पहला मंदिर (बीमार को संभालना है)। इसलिए उसको उसकी सेवा करनी चाहिए। भले पूजा छूट जाए, दर्शन छूट जाए और (सब) छूट जाए लेकिन उसको पहले उसकी सेवा करना चाहिए। तो इस तरह का छल-कपट न हो।

घर में जैसे अपन ये नौकर वगैरह लगाते हैं। तो उन नौकरों से इतना काम न ले, हमेशा ध्यान रखें इस बात का। ये नहीं रखे कि हम पैसा देते हैं, इसलिए उनसे खूब डटकर काम लें - ऐसा भाव न रखे। लेकिन कितना ही पैसा दो, पर भाव ये रहे कि इनपर हल्के से हल्का वजन हो।

जैसे अपन भोजन करते हैं। तो भोजन की थाली में चार कटोरी (हो) सब्जी की। तो चार कटोरी की कहाँ जरुरत है? तीन सब्जी तो उसमें थाली में ही आ सकती हैं, तो तीन कटोरी बच गईं। और एक दाल की कटोरी चाहिए खाली। तो ये standard (स्तर) की बातें हैं। ये standard, महापाप है ये। और उसपर कितना वजन हो गया, घर में बीस आदमी हैं तो? उस पर वजन कितना हो गया? इसी तरह कपड़ों में standard कि जल्दी-जल्दी रोज़-रोज़ ही धुलने डाले, क्योंकि इसे तो पैसे देते हैं (न, तो) धोएगा। तो ये जो हैं ये महापाप के परिणाम हैं। और इसमें कभी भी चाहे कितनी ही पूजा करो और कितने ही दर्शन करो, लेकिन इसमें नहीं हो सकता है।

एक ये कि सत्य को तुरंत स्वीकार करे। भले (ही) वो कर न सके, लेकिन सत्य को तुरंत स्वीकार करे। और अहिंसा का भाव इतना हो कि एक भी प्राणी की हत्या मेरे से न हो। जैसे लोग नहाते हैं तो कितना पानी खर्च करते हैं? कितना करते हैं? बाल्टियों की बाल्टियाँ पानी खर्च करते हैं। घर में geyser (गीज़र) लगें रहते हैं, उनमें अनछने पानी (को) उड़ेलते हैं। अनछना पानी जिसमें अनंत जीव हैं, अनंत त्रस माँसवाले जीव.... ४८ मिनट में, ४८ मिनट के भीतर अंतर्मुहूर्त में जो ठंडा पानी होता है छना हुआ, उसमें अंतर्मुहूर्त बीत जाने पर अनंत जीव पैदा हो जाते हैं, माँस वाले त्रस जीव। तो उसको वैसे ही पीता रहे, बिना छानकर ही पीता रहे दिनभर। और खूब जो है वो geyser (गीज़र) में डाले अथवा नहाने के लिए पानी इस तरह से उड़ेले अथवा बहुत पानी खर्च करे, अनर्गल पानी खर्च करे - ये सारा का सारा महापाप कहा है। बहुत आसानी से बहुत थोड़े पानी से नहा सकता है। एक व्यक्ति एक मग या दो मग से नहा सकता है, आराम से। कितने से? दो मग से नहा सकता है अच्छी तरह से। लेकिन वो पानी ज्यादा खर्च करेगा फिर भी नहा नहीं सकेगा क्योंकि स्नान में जो है जो रक्त-संचार होना चाहिए, वो तो हुआ ही नहीं। तो उसको टोवेल से करना चाहिए। टोवेल-बाथ (towel-bath) करना चाहिए। उससे पानी भी कम खर्च होगा और काम भी हो जाएगा। तो ये सब ऐसी चीज़ें हैं।

खाने-पीने की जो चीज़ें जिनमें बहुत अधिक हिंसा होती है, तो उनका त्याग करे। जो त्याग करने लायक हैं एकदम (कि) जिनमें बहुत अधिक हिंसा होती है (और) अनंत जीव जिसमें रहते हैं, उनका तो तुरंत त्याग करे ही करे। उसमें ऐसा नहीं सोचे कि इसमें vitamin ज्यादा है। यहाँ विटामिनों का हिसाब नहीं लगाया जाता है धर्म में कि इसमें vitamin ज्यादा हैं या कम (हैं)। यहाँ तो धर्म कहा है सबसे पहले। जो तत्त्वज्ञानी है, उसको धर्म प्रधान है। इसलिए जितना उससे बनता है तो उतना अवश्य त्याग करे।

ऐसे अभक्ष के भेद तो बहुत हैं पर वो सारा नहीं कर पाता (है)। मनुष्य-जीवन की बात कर रहे हैं अपन अभी। तो वो सारा नहीं कर पाता है। लेकिन जिसमें बहुत अधिक हिंसा होती है, बहुत अधिक जीव रहते हैं जैसे वनस्पतियों में तो उनका तुरंत त्याग कर देना चाहिए। जैसे गोभी है, आलू है, प्याज है, लहसुन है, शक्करकंद है, गाजर है, मूली है इत्यादि, इत्यादि। अब इसमें और दूसरी चीजें भी होती हैं (कि) जिनमें छूट दी जाती है।

ये सारा जो है चरणानुयोग का है, तो इसमें अपनी बुद्धि नहीं लगाना एक तो कि किसने देखे हैं आलू में जीव? अरे! किसने देखें हैं? आत्मा शुद्ध है ये किसने देखा है? तो जिस सर्वज्ञ ने वो देखा, वो ही सर्वज्ञ ये देख रहा है। (ये) तो सारे वचन सर्वज्ञ के हैं। इसलिए ऐसी दुर्बुद्धि का तर्क नहीं करना चाहिए। ये सारी चीज़ें हैं तो इन सबको ज़मीकंद कहते हैं। जमीन के भीतर जो पैदा होते हैं और जिनमें अनंत जीव होते हैं, उनको ज़मीकंद कहते हैं। तो उनका त्याग करना चाहिए, इन चीजों का (क्योंकि) उनमें बहुत जीव होते हैं।

वनस्पति दो प्रकार की होती है - एक साधारण और एक प्रत्येक। तो जो साधारण वनस्पति होती है उसमें अनंत जीव होते हैं। और उसमें प्रत्येक में भी दो भेद होते हैं। प्रत्येक में एक तो ऐसी होती है कि जिसके आश्रित अनंत साधारण जीव रहते हैं; साधारण माने निगोदिया जीव। साधारण कहें अथवा निगोद कहें - एक ही बात है। तो वो अनंत जीव उसके आश्रित रहते हैं। और वो जिस समय बड़ी होती है तो वो अनंत जीव निकल जाते हैं। इस तरह की साधारण होती हैं।

कई ऐसी भी होती हैं कि वे जीव उनमें से नहीं निकलते (हैं) जैसे आलू है, गोभी है, ये गाजर है इत्यादि। ये ऐसे हैं कि इनमें (से) वो जीव निकलते नहीं (हैं)। और कुछ ऐसी होती हैं कि जैसे बहुत छोटी अवस्था होती है। जैसे ककड़ी है, तो बिल्कुल बारीक ककड़ी छाँटते हैं लोग उस सब्जीवाले से; बहुत बारीक ककड़ी। अब वो ककड़ी जो है एकदम तोड़ते ही ऐसी टूटती है (कि) जैसे चाकू से तोड़ी हो। तो उसमें अनंत जीव होते हैं। केरी हो जैसे अभी आने लगी हो, छोटी हो और उसके भीतर जाली नहीं पड़ी हो (तो) उसमें अनंत जीव होते हैं। इन सब चीज़ों का त्याग कर देना चाहिए। इनके बिना मर थोड़े ही जाता है! मरेगा नहीं न! बस तो वहाँ तक ही सोचना चाहिए कि (मैं) मर तो नहीं जाऊँगा।

मुमुक्षु:- इनको लेगा तो मरेगा।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तो तो न मालूम क्या-क्या होगा!

दूसरा ये है कि जैसे द्विदल होता है, वो बहुत बड़ा अभक्ष होता है द्विदल कि जिन चीज़ों की दो दाल होती हैं, उनको दही-छाछ और दूध इन तीनों में मिलाकर खाना। माने मिलाने से नहीं होता (है) कुछ भी। लेकिन वो जब मुँह में जाते हैं और उनका लार के साथ संयोग होता है, तब उसमें अनंत जीव त्रस जीव पैदा होते हैं; त्रस माँसवाले जीव अनंत जीव पैदा होते हैं। तो वो श्मशान बन जाता है जो मुँह है (वो)। दाल तो सभी ऐसी होती हैं। और बाकी जिसकी भी दो दालें होती है, जैसे मिर्च का ही बीज है (तो) उसकी भी दो दाल होती है। अपन जो सब्जियाँ लेते हैं उनमें भी बीज निकलते हैं, उनकी भी दो दाल होती है। तो वो सब त्यागने लायक है।

अब उसमें दो विकल्प हैं कि एक तो ऐसे होते हैं (कि) जिनमें तेल निकलता है। तो उनकी कहीं तो छूट दी है और कहीं नहीं दी है। तो त्याग कर सके तो सबका त्याग कर देना चाहिए। और नहीं तो छूट भी दी है उसके माने आगम के प्रमाण भी हैं कि जिन चीज़ों में तेल निकलता है, उसकी दो दाल होती हो तो भी दोष नहीं लगता।

मुमुक्षु:- जैसे तिल!

पूज्य बाबूजी:- तेल किसी में भी निकलता हो जैसे ये सारे मेवे हैं, अब इनमें तेल निकलता है। तो इसमें दो मत मिलते हैं यहाँ। (एक) क्रिया-कोष नाम की पुस्तक है। उसमें तो बताया, सब

गिनाए हैं ये कि इनमें भी दोष लगता है। और कुछ और हैं ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जिनमें (से) तेल निकलता हो, तो (भी) उसमें द्विदल का दोष नहीं लगता है।

लेकिन हम तो जो है घर की बात तो बहुत दूर लेकिन जहाँ हज़ारों लोगों (का) जीमन होता है वहाँ दहीं-बड़े और इस तरह के अनेक प्रयोग करते हैं। इसलिए आचार्य ने कहा कि अल्पफल (कि जिसका) फल तो हो थोड़ा और बहुत विघात (हिंसा) हो, घात हो ज्यादा ऐसे जो मूली है, अदरक है, शंगबेर माने छोटे बेर आते हैं, वो लाल-लाल वो हैं और नवनीत माने मक्खन... मक्खन में बहुत जीव होते हैं। मक्खन खाने लायक ही नहीं है बिल्कुल, बिल्कुल जैसे माँस का ही दूसरा नाम है।

इसलिए जो घी बनाने की विधि है, वो ये होती है कि वो २४ घंटे का होता है वो सारा जमाया हुआ; और उसका रोजाना घी बनता है। और अंतर्मुहूर्त से ज्यादा वो..... उसको तो ऐसा करते हैं कि वो उधर तो छाछ में से निकाला और इधर उसको पात्र को अग्नि पर (ही) रखे रहते हैं (पहले से ही)। तो उसमें (मक्खन को) डालते जाते हैं। वरना वो उस मक्खन में बहुत जल्दी जीव पैदा होते हैं। (और) अपन तो बाजार में से लाते हैं, ना मालूम कबसे फ्रीज में रखा हुआ!

इसलिए ये बहुत सी चीजें हैं कि इन सबका त्याग एकदम कर देना चाहिए। उसका कारण (ये) है कि हम तत्त्वज्ञान चाहते हैं और तत्त्वज्ञान में भी हम शुद्धात्मा को चाहते हैं। तो शुद्धात्मा के लिए जितने नरम परिणाम होने चाहिए, तो वो परिणाम तो होंगे ही नहीं क्योंकि हमारे चित्त में कहाँ है इनके प्रति दया? हमको तो जिनवाणी मिली है। जिनवाणी से ये सीखने को भी मिला है। तो सीखने को मिल गया तो हमें पालन करना चाहिए न? अभी तिर्यंच है, तो उसको कोई दोष नहीं देगा। क्योंकि उसको ना तो जिनवाणी मिली (है और) ना उसको कोई जिनवाणी सुनानेवाला मिला (है)। तो तिर्यंच को ये (इस तरह का) कोई दोष नहीं दिया जाएगा क्योंकि वो समझता ही नहीं है कि आलू में अनंत जीव होते हैं। इसलिए वहाँ दोष नहीं है। लेकिन यहाँ मनुष्य पर्याय में, जैन-कुल में पैदा हुआ और उसको जिनवाणी मिली, तो उसको अवश्य इसका पालन करना चाहिए। अन्यथा ये माना जाएगा इसका चित्त बिल्कुल पाषाण है। पाषाण! तो पाषाण-चित्त में तत्त्वज्ञान का बीज अगर डाल भी दिया जाएगा तो व्यर्थ जाएगा। व्यर्थ जाएगा। वो खूब दिनभर भले समयसार पढ़ते ही रहो न (मगर) क्या होता है उससे? चित्त तो ऐसा होता है।

मुमुक्षुः- ये ज़मीकंद में रहते हैं निगोदिया जीव?

पूज्य बाबूजीः- ज़मीकंद में भी ऐसा ही होता है कि ज़मींकंद में जैसे कुछ चीजें ऐसी हैं, जैसे हल्दी। तो उसमें उसको माना है काष्टाधिक! काष्टाधिक माने वो सूख जाने पर काष्टिक.... तो मूँगफली गीली नहीं खाना चाहिए। लेकिन मूँगफली के छिलके में वो जीव होते हैं। भीतर दानों में वो जीव नहीं होते हैं, ऐसा। इस तरह से ये काष्टाधिक माने गए हैं।

मुमुक्षुः- गीली माने गीली कैसे?

पूज्य बाबूजी:- गीली - नीचे ज़मीन में से ही पैदा होती है। तो गीली जो छिल्का होता है न, उसमें अनंत जीव (होते हैं)। भीतर जो दाना है उसमें नहीं होते। दाने में नहीं होते। तो ये सारी बातें हमें आज्ञा मानकर, भगवान सर्वज्ञ की आज्ञा मानकर और इनको ग्रहण करना चाहिए। उसमें बुद्धि नहीं लगाना चाहिए।

एक बूँद पानी में बहुत जीव होते हैं और हम अनछना पीते हैं, होटलों का पीते हैं। और इधर से कप-तश्तरी, ये काँच के ग्लास इत्यादि इनका सब व्यवहार करते हैं। तो उसमें क्या है वो तो बिल्कुल जूठा ही है वो तो। वो तो जूठा ही है धोने से कैसे साफ हो गया वो? धर्म की दृष्टि से तो वो त्याज्य है ही, लेकिन अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वो त्याज्य है बिल्कुल। क्योंकि कोई जो है वो संक्रामक बीमारी वाला पी गया उससे पानी। अब वहाँ कौन धोता है वहाँ होटल पर? तो हमने भी जैसे पी लिया, चाय पी, पानी पी लिया, तो उससे तो वो (शारीरिक) नुकसान भी है। पर उस नुकसान की नहीं है चर्चा। यहाँ तो धर्म की रक्षा कैसे हो? ये है यहाँ तो, खास। इसलिए इनका ऐसा करो (कि) अभी सभी त्याग कर दो, आज ये ही है। अब कल तो जाना ही है, परसों तो; सब त्याग कर दो। और सुनाऊँ इनका पूरा?

मुमुक्षु:- बोलो!

पूज्य बाबूजी:- आचार-मुरब्बे बहुत पुराने, इनकी सबकी जो (है) बहुत कम म्याद होती है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! भूमि भीनी होनी चाहिए। कड़क भूमि है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ, कड़क भूमि है। नरम मिट्टी में बीज पैदा होता है।

देखो! ये निगोद जो है (वो) वनस्पति को कहते हैं - पहली बात तो ये। और उस वनस्पति में जो निगोद है, तो वो उसका लक्षण ये (है) कि उसमें शरीर होता है एक। जैसे एक आलू है; (तो) आलू जो है वो निगोद नहीं है पर उसके आश्रित निगोद जीव रहते हैं। ये हमेशा याद रखना। लेकिन निगोद जो है जिसको साधारण वनस्पति कहते हैं.... एक ही बात है - निगोद और साधारण वनस्पति। वो ऐसा होता है (कि) जैसे बरसात के दिन हैं और अपने जो आचार हैं, उनके ऊपर सफेद-सफेद वो आ जाती है। वो निगोद है वो।

जैसे ईंट है, ईंट। गीली ईंट, उसपर हरा-हरा वो छा जाता है, वो निगोद है वो। जैसे बरसात के दिनों में सफेद-सफेद छतरी जैसी पैदा होती है, वो निगोद है वो। जल में जो काई होती है काई, जल में, वो निगोद है वो।

मुमुक्षु:- जल में काई मतलब? शेवाल!

पूज्य बाबूजी:- शेवाल! शेवाल! वो निगोद है। उसमें अनंतानंत जीव होते हैं। और दूसरे जो अभी अपन ने बताए, ये आलू अदरक वगैरह। ये जो हैं, ये हैं तो प्रत्येक वनस्पति। प्रत्येक वनस्पति उसे कहते हैं कि जिसमें एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो। तो उस शरीर का स्वामी

तो एक ही जीव होता है, एक। जैसे आलू है न! तो उसमें भी शरीर तो बहुत होते हैं। लेकिन फिर भी उसके जो भेद हैं उसमें एक शरीर का धारक एक जीव होता है। और उस आलू के आश्रित अनंत जीव दूसरे रहते हैं - ये निगोद (वाले), आश्रित, कि जो कभी निकल नहीं पाते हैं। आलू है, शक्करकंद है, गाजर है, मूली है - ये इनके जीव नहीं निकलते हैं। और ये जो अभी अपन ने अभी बताया जैसे ककड़ी है और (वो) बड़ी हो गई, तो उसके वो जीव निकल जाते हैं। तब वो खाने लायक मान लेनी चाहिए।

वैसे तो वनस्पति मात्र का त्याग करना चाहिए। १० लाख वनस्पति हैं, १० लाख। तो उन १० लाख में से अपने को कम से कम इतना अवश्य करना चाहिए कि अपन उसकी गिनती रख लें कि हम अपने जीवन में १०० वनस्पति से अधिक नहीं लेंगे। अथवा १५० या २०० से अधिक वनस्पति नहीं लेंगे। तो उससे ये परिणाम होगा कि बाकी जितनी वनस्पतियाँ हैं, उनके पाप से हम बच गए। और अगर हमने ये नियम नहीं लिया तो १० लाख का पाप रोजाना लगता है, चाहे वो वनस्पति हम खावें ही नहीं। काम में ही नहीं आए वो वनस्पति पर १० लाख का पाप रोजाना लगता है। क्योंकि वो परिणाम इतना (कठोर) है न! परिणाम ऐसा (कठोर) है न हमारा कि हम कौनसी नहीं खायेंगे उस दिन १० लाख में से। इसलिए इतना भीषण परिणाम है वो, निर्दयता का।

तो उनको लिखते जायें (सूची बनाकर), इसमें कोई मुश्किल नहीं है। जो-जो चीज हम रखना चाहते हैं, (जो हमारे) काम आती जाती हैं नई-नई, तो उनको लिखते जायें। और अंत में छह महीने लिखने में लगेंगे या दो महिने लिखने में लगेंगे। वो लिखकर समाप्त कर दें कि भाई! हमने ये १०० का रखा है। १५० का रखा है, २०० का रखा है।

मुमुक्षुः- वो तो बहुत easy (आसान) है।

पूज्य बाबूजी:- बहुत easy (आसान) है वो तो। ये तो बहुत easy (आसान) है। तो उससे फिर परिणाम में निर्मलता कितनी आ गई।

तो इसी तरह पानी छानकर पीना। पानी जैसे गरम कर लिया जाए थोड़ा तो वो छह घंटे तक पिया जा सकता है, बिना छानकर। और (यदि) उसे उबाल लिया जाए तो वो २४ घंटे तक पिया जा सकता है, ऐसा। और ठंडा पानी हो तो वो अंतर्मुहूर्त में माने ४८ मिनट से वो जो अपन ने जो उस दिन बात की थी.... उतने समय में उसमें त्रस जीव पैदा हो जाते हैं। त्रस माने दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय – इन जीवों को त्रस कहते हैं। एकेन्द्रिय जीव जो है उसमें वो माँसादिक नहीं होते हैं। तो उनका दोष लगता है। इसलिए बस थोड़ा सा उसको गरम कर लिया तो छह घंटे तक पी लो।

जैसे निगोद माने अनंतपना है निश्चित जिनका, वे अनंत रहते हैं। ऐसे जीवों का एक ही क्षेत्र माने एक शरीर जो स्थान देता है उसको निगोद कहते हैं। तो शरीर तो होता है एक। जैसे वो जो वो आचार के ऊपर जो वो फूलन आ गई वो सफेद। तो वो शरीर तो है एक और उसमें जीव

हैं अनंतानंत जीव हैं, अनंतानंत ऐसे। और हम क्या करते हैं कि उसको या तो निकालकर फेंक देते हैं या उसी में घोल देते हैं कि इसमें तो विटामिन ज्यादा रहते हैं। जैसे जल की काई, ईंट आदि की काई, कूड़े से उत्पन्न हुआ हरा नीलारुप। कूड़ा होता है न, तो उसमें हरा-नीला जो होता है, जटाकार आहार कांजी आदि से उत्पन्न - ये सब बादरकाय निगोद जानने। बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के (निगोद) होते हैं। तो ये तो हैं बादर जो दिखाई देते हैं। और सूक्ष्म जीवों से तो ये सारा लोक (ही) भरा हुआ है। सूक्ष्म निगोदिया से तो वो सारा लोक भरा हुआ है।

मुमुक्षु:- माने निगोद में भी दो प्रकार (हैं) - बादर और सूक्ष्म?

पूज्य बाबूजी:- दो प्रकार - बादर और सूक्ष्म।

अब सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक। तो प्रत्येक है वनस्पति, जैसे सेब है apple तो उसमें वो निगोदिया जीव नहीं हैं। तो वो एक है लेकिन उसमें भी असंख्यात् शरीर हैं, असंख्यात् शरीर हैं उसमें भी। माने एक सेब जो है वो एक जीव नहीं है। अथवा एक वृक्ष को ही एक जीव मानते हैं..... ये जैसे श्वेतांबरों में प्रवृत्ति है ये कि इसमें से तोड़ लिया तो उसमें जीव नहीं रहा। वो बिल्कुल गलत है वो। उसमें असंख्यात् शरीर रहते हैं और असंख्यात् शरीर में से एक-एक शरीर में एक जीव रहता है। उसको कहते हैं प्रत्येक। और जिस प्रत्येक शरीर के आश्रित ये निगोदिया जीव रहते हैं, जैसे वो बारीक ककड़ी इत्यादि... आलू वगैरह शक्करकंद वगैरह। तो इनमें से निकलते नहीं हैं और उनमें से निकल जाते हैं। तो जिनमें से नहीं निकलते हैं उनका हमेशा के लिए त्याग करना चाहिए।

अब इनकी रचना बताई है, रचना। वो (जानकर) अपने को आश्चर्य हो जाएगा। एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा (से) देखे गए जीव सब अतीतकाल के द्वारा सिद्ध हुए जीवों से भी अनंत गुणे हैं। अब देख लिजीएगा! एक निगोद शरीर बहुत छोटा सा होता है, बिल्कुल। तो उस एक निगोद शरीर में कितने जीव होते हैं कि अपने भूतकाल में जितने सिद्ध भगवान हो गए (हैं) उन सिद्ध भगवान से अनंत गुणे जीव उसमें एक शरीर में होते हैं (उतने) छोटे से में। जैसे आलू में सूई लगा दी अपन ने, तो उतनी सी जगह में इतने जीव हैं कि अनंतकाल तक भी ६०८ जीव जो मोक्ष जायेंगे छह महिने और आठ समय में, तो भी उनका अंत नहीं होगा उस इतने से जीवों का। तो कितने जीव हो गए?

मुमुक्षु:- जीवराशि ....

पूज्य बाबूजी:- वो तो उतनी सी है माने (कि) आलू में एक सुई की नोंक लगा दी। तो उस शरीर में इतने जीव हैं कि जो अनंत सिद्ध हो गए पहले, तो वो अनंत सिद्धों से अनंत गुणे हैं वो, अतीत काल के सिद्धों से। उसमें (आलू में से) एक में। अब और का क्या हिसाब लगायेंगे? पूरे आलू का क्या हिसाब लगायेंगे? और गोभी का क्या हिसाब लगायेंगे? कैसे होगा?

मुमुक्षु:- पत्ता-गोभी?

पूज्य बाबूजी:- पत्ता-गोभी भी खाने लायक नहीं है क्योंकि पत्ता-गोभी में layers होती हैं। परत होती हैं न! उन परतों में बहुत त्रस जीव पैदा होते हैं, उड़ने वाले। माँसन जीव पैदा होते हैं। तो ये जो होते हैं आलू वगैरह, इनको कहते हैं सप्रतिष्ठित प्रत्येक। और वो जिनमें जैसे सेब है मौसम्बी है, उनको कहते हैं अप्रतिष्ठित। अर्थात् उनके आश्रित निगोदिया जीव नहीं रहते हैं।

देखिए! अब यहाँ क्या कहते हैं रचना, इनकी रचना बताते हैं कि पहला होता है स्कंध। दूसरा होता है अंडर, फिर आवास, फिर पुलवी और फिर निगोद शरीर। ये पाँच भेद होते हैं। तो उनमें से जो बादर निगोदों का आश्रयभूत है, बहुत बखारों से युक्त है। ऐसे मूली, अदरक, थुवर आदि संज्ञाओं को धारण करनेवाला स्कंध कहलाता है। वो तो हुआ एक स्कन्ध।

मुमुक्षु:- थुवर माने?

पूज्य बाबूजी:- थुवर माने थुवर (एक) होता है वृक्ष होता है। थुवर (वृक्ष) होता है, काँटेवाला बहुत। आप लोग क्या कहते हैं? गँवारपाठा जैसे कुमारी। कुमारी कहते हैं उसको गँवारपाठा, गँवारपाठा। तो वो गँवारपाठा भी साधारण है, वो इसी में आता है।

मुमुक्षु:- गुमारपाठु।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तो वो तो हुआ स्कंध और स्कंध के बाद अंडर। उन स्कंधों के जो अवयव हैं, जो स्कंध हैं एक उन स्कंध के जो अवयव होते है उन्हें अंडर कहते हैं। वे असंख्यात् लोक प्रमाण होते हैं। ये शरीर वे असंख्यात् लोक प्रमाण हुए। उसमें एक स्कंध में ही, एक में। और जो अंडर के भीतर स्थित हैं उन्हें आवास कहते हैं। एक अंडर में असंख्यात् लोक प्रमाण आवास होते हैं।

मुमुक्षु:- ये तो विश्व ही अलग सा दिखता है।

पूज्य बाबूजी:- बिल्कुल अलग चीज़ है एकदम।

और जो आवास के भीतर स्थित हैं और पिशवियों के समान हैं, उन्हें पुलवी कहते हैं। एक-एक आवास में वे असंख्यात् लोक प्रमाण होती हैं। तथा एक-एक आवास की अलग-अलग एक-एक पुलवी में असंख्यात् लोक प्रमाण निगोद शरीर होते हैं। असंख्यात् लोक प्रमाण निगोद शरीर माने कितने शरीर हुए? असंख्यात् लोक प्रमाण निगोद शरीर। असंख्यात् लोक माने लोक के असंख्य प्रदेश ऐसे असंख्यात् लोक। तो इतने उसमें निगोद शरीर होते हैं ये तो, निगोद जीव नहीं।

मुमुक्षु:- निगोद शरीर!

पूज्य बाबूजी:- निगोद शरीर होते हैं। योग्य औदारिक तेजस कार्माण पुद्गलों के उपादान कारण होते हैं। ये हर जीव में होते हैं ये औदारिक तेजस और कार्माण। और जो पुलवी के भीतर स्थित द्रव्यों के समान अलग-अलग अनंतानंत निगोद जीवों के ऐसे आपूर्ण होते हैं, (तो) कि वो जो हैं वो जो अनंत निगोदिया शरीर हैं उनमें से एक-एक निगोद शरीर में अनंतानंत जीव होते हैं।

एक पुलवी में असंख्यात् लोक प्रमाण निगोद शरीर और एक शरीर में अनंतानंत जीव - ये हुआ। अब वो अनंतानंत जीव वो अनंत भविष्य बीत जाएगा, तो भी वो जीव मोक्ष के लिए पूरे नहीं हुए उस उतने से शरीर के। तो अब कितने वनस्पतियाँ तो कितनी भरी हैं जगत में, इतना जबरदस्त पाप है।

मुमुक्षुः- निगोद शरीर की स्थिति?

पूज्य बाबूजीः- निगोद शरीर की स्थिति होती है कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, एक निगोद शरीर की। कम भी होती है। लेकिन अधिक जो नित्य निगोद होते हैं, जैसे सात नरक के नीचे हुए .... सात नरक जो हैं उसके नीचे एक राजू की निगोद-भूमि है। उसे कलकल भूमी कहते हैं।

मुमुक्षुः- कलकल भूमि माने?

पूज्य बाबूजीः- कलकल नाम है उसका, कलकल भूमि। उसमें नित्य निगोदिया जीव रहते हैं।

मुमुक्षुः- ओहोहो! कभी बाहर आने वाले नहीं हैं।

पूज्य बाबूजीः- तो उनमें ऐसी स्थिति होती है।

मुमुक्षुः- माने सातवें नरक से तो जीव वापस आ सकता है..

पूज्य बाबूजीः- सातवें नरक, सात नरक जो हैं वो छह राजू में हैं।

मुमुक्षुः- वहाँ से तो वापस आ सकता है मगर निगोद से (तो) जीव..

पूज्य बाबूजीः- नित्य निगोद से तो आते हैं। आते हैं, निकलते हैं वहाँ से भी। वहाँ भी पुण्य और पाप दोनों प्रकार के परिणाम होते हैं। ज्ञान कम होते हुए भी पाप-पुण्य के परिणाम अंतर्महूर्त में बदलते रहते हैं। अपन लोगों के भी बदलते रहते हैं, तो इसी तरह उनके भी बदलते हैं। तो जब पुण्यभाव होता है, उसमें आयु बंध जाए तो सीधे मनुष्य हो जाते हैं। सीधे मनुष्य होकर आठ वर्ष की अवस्था में सम्यग्दर्शन धारण करके और अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष चले जायें। भरत के हैं न १०८ पुत्र! उनका उदाहरण आता है न १०८ पुत्रों का? (कि) बोले नहीं। बोले तो भगवान के सामने ही बोले कि हमको जैनेश्वरी दीक्षा दीजिए। आठ वर्ष तक बोले (ही) नहीं।

मुमुक्षुः- मगर बोले तो ये ही बोले।

पूज्य बाबूजीः- बोले तो ये ही बोले।

मुमुक्षुः- बाबूजी! इसमें पुरुषार्थ क्या हुआ?

पूज्य बाबूजीः- बिना पुरुषार्थ के क्या होगा?

मुमुक्षुः- नहीं माने कि कौनसा (और) किस प्रकार का पुरुषार्थ?

पूज्य बाबूजीः- Turn (घुमाव) देना। Turn (घुमाव) देना उसको, परिणति को कि परिणति जो जगत की ओर जाती है, विषय की ओर जाती है, पुण्य और पाप की ओर जाती है, उनमें

आसक्ति किए बैठी है वहाँ से तोड़ना उसको उपयोग को, ज्ञान को और शुद्धात्मा की ओर लगाना। इसमें पुरुषार्थ नहीं है?

मुमुक्षु:- वो जो है नित्य निगोद (उसमें)?

पूज्य बाबूजी:- भीतर ही भीतर होता न अपने! जैसे कोई कार्य होता है न, कोई महत्वपूर्ण कार्य होता है और वो नहीं बनता है। तो अपन भीतर ही भीतर विकल्प में ज़ोर लगाते हैं कि नहीं लगाते? हो जाना चाहिए। इतनी जल्दी होना चाहिए वरना बहुत नुकसान हो जाएगा। ये क्या है ये? पुरुषार्थ है। विकल्प अलग और ये जो परिणति होती है, ये इसका नाम पुरुषार्थ (है)।

तो सब तरफ से उपयोग को turn (घुमाव) देकर और केवल ज्ञायक की ओर लगाना, इसमें महापुरुषार्थ है इसमें। पहले अनंत लोकालोक के साथ इसको ममत्व था (और) अपना मानकर बैठा था। और कर्ता-कर्म की बुद्धि थी जबरदस्त (कि) सब कुछ कर सकता हूँ मैं। सब कुछ कर सकता हूँ - इतना मानता था न? अब उस सबको समाप्त किया तो बिना पुरुषार्थ के होगा क्या समाप्त? तो उस पुरुषार्थ से उसको समाप्त करके और उपयोग को फिर उसी प्रकार, उसी अनंत पुरुषार्थ से शुद्धात्मा की ओर ले जाना। तो अनंत होगा न (पुरुषार्थ)? कितना ममत्व फैला हुआ (है)? सारा लोकव्यापी, लोकालोकव्यापी ममत्व, उसमें अनंतानंत पदार्थ (और) उन सबमें हमारा एक ही समय में ममत्व, एक समय में..... तो कितना बड़ा काम हुआ।

मुमुक्षु:- [80]ये तो हुआ बाबूजी, खाने-पीने (और) रहन-सहन के बारे में व्यवहार। दूसरे जीवन के क्षेत्र में किस तरह का व्यवहार होना चाहिए?

पूज्य बाबूजी:- इस तरह का हो (कि) बस मार्दव परिणाम रहें, कोमल परिणाम रहें तो सब हो गया बस। वो तीन प्रकार के बताये न शुभभाव (कि) देव-गुरू-धर्म के प्रति भक्ति-अनुकंपा और अकलुष भाव। अकलुष भाव माने हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह इनका त्याग (हो) अथवा ये कम हों। इसलिए इसका तो हर जगह.... तमाम मंदिरो में भी जावे, तो मंदिर में भी ध्यान रखे इस बात का।

और तो बहुत बातें हैं। बहुत बातें है कि जैसे मान लीजिए हम पूजा कर रहें मंदिर में। और मंदिर में दूसरे भी पूजा कर रहे हैं। अब हम ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे हैं तो वो भी पाप है। उसको पता ही नहीं (कि) दूसरा (पूजन) कर रहा कुछ तो उसको कितना विघ्न होगा। और वो झालरें बजा रहे हैं बिना काम (के ही)। जाते ही लोग बजाते हैं न, वो (घंटी)। अब इसकी क्या जरुरत है बजाने की? कोई माला फेर रहा है, कोई पूजा कर रहा है, कोई स्वाध्याय कर रहा है (तो) उसकी क्या जरूरत है (बजाने की)? भगवान को जगाना है क्या? ये तो एक अनुकरण चल गया (है) जैसे दूसरी जगह भगवान को जगाते हैं, इस तरह से। सोते हैं न छह महिने भगवान और छह महीने जागते हैं - ऐसा आता है वहाँ। तो वो तो अपने यहाँ तो जबरदस्ती नकल हो गई।

80 सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले जीव का जीवन के दूसरे क्षेत्र में किस तरह का व्यवहार होना चाहिए? -56.26 Mins

मुमुक्षुः- वो तो आरती के समय का घंटा .... आरती के समय का होता है?

पूज्य बाबूजी:- आरती के समय तो अब हमने बना लिया है। वो तो उसकी जरूरत ही नहीं है न! क्योंकि वो तो टाँगेंगे तो रोज ही बजायेंगे। बल्कि खेल करते हैं लोग तो (कि) अपने गोद में बच्चा ले जाते हैं (और) उससे बजवाते हैं। उसकी जरूरत कहाँ है? बस! जिस समय कोई समारोह हो और उस समय बजाना हो तो उस समय दूसरी व्यवस्था रखो। बहुत व्यवस्थायें हैं इस तरह की।

मुमुक्षुः- माने ये दूसरे दर्शन भगवान के कर रहे हों, उसको भी बाधा वर्जित है।

पूज्य बाबूजी:- कितना अविवेक हुआ? विवेक तो जो है एक मशाल है बिल्कुल। विवेक तो मशाल है। उसके प्रकाश में चलना चाहिए जीव (को)। तो हर जगह विवेक, हर समय..... सही बात को एकदम स्वीकार करना, एकदम। तो उसमें अपनी कोई मौत थोड़े ही होती है। घर में जैसे कोई बड़ा है अथवा समझदार है, वो कहता है कोई बात। कोई भी बात, कोई दुनिया संबंधी, लोक संबंधी, धर्म संबंधी, उसको एकदम स्वीकार करे क्योंकि वो तो बुरी आदत (है) छोड़ने लायक है। उसमें क्या है? मैं भविष्य में नहीं करूँगा।

घर की व्यवस्था संबंधी बात है। और वो तो बात लौकिक है लेकिन लौकिक नहीं लोकोत्तर बहुत है। क्योंकि घर में अगर हम अव्यवस्था रखेंगे तो उसमें tension (आकुलता) बहुत रहेगी, परिणाम में। जैसे किसी की चाबी है। उदाहरण के लिए जैसे पति-पत्नी हैं। अब उसका पति का स्कूटर है। अब स्कूटर की चाबी उसने पत्नी को दे दी (और) अब उसने कहीं भी डाल दी। और वो पति रखता था अपनी जगह (पर और) तो उसने (पत्नी ने तो) कहीं भी डाल दी। अब उसको (पति को) जरूरी काम आया तो वो कहता है (कि) लाओ चाबी लाओ। मुझे जरूरी जाना है। जल्दी जाना एकदम court (आदलत) जाना है, जल्दी। अब उसको चाबी ढूँढते-ढूँढते दो घंटे (हो गए और) नहीं मिली। कितना पाप हो गया?

मुमुक्षुः- परिणाम बहुत कलुषित हो गए।

पूज्य बाबूजी:- कितनी tension हो गई! दोनों को tension कितनी हो गई? तो इसकी अपेक्षा ये है कि ये यहाँ रहेगी चाबी - ये व्यवस्था है। इस जगह (से) ले लिया करो। इसलिए जो स्थान हमने नियत किये हैं किसी वस्तु के लिए, उन्हीं स्थानों पर वो चीज हम अँधेरे में भी पा सकें। और दूसरे भी पा सकें (सिर्फ) हम ही नहीं, दूसरे भी पा सकें - ऐसी व्यवस्था घर में रखना।

मुमुक्षुः- तो ये तो घर की व्यवस्था हो गई।

पूज्य बाबूजी:- घर की व्यवस्था नहीं हुई, (ये) मोक्ष की व्यवस्था हुई। मोक्ष की व्यवस्था है ये, घर की नहीं। उसमें परिणाम कितने शांत (हुए)! और ये व्यर्थ का है ये माने, ये व्यर्थ का प्रमाद है। ऐसे प्रमादी जीव को (यदि) मोक्ष भेजा जाएगा तो वहाँ वो खलबल नहीं करेगा (क्या)? खलबली नहीं मचायेगा?

मुमुक्षुः- Eligiblity (पात्रता) ही नहीं होती है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! बिना देखे वस्तु को उठा लेना-धरना (उसमें) जीव पड़ जाते हैं अपने घरों में, वस्तुओं में जीव पड़ जाते हैं, तो उनको जो है बेरहमी से निकालना, कहीं भी धूप में डाल देना - ये सब क्या हैं ये? करना पड़ता है। गृहस्थ में है तो करना पड़ता है। लेकिन उसमें इतना विवेक हो कि जीवों की हिंसा कम से कम हो। और ये फल-फूल वगैरह मंदिर में, ये तो हिंसा है ही सही। इसमें तो क्या है? इसलिए हर चीज में विवेक हो, हर चीज में विवेक हो।

सेवा का भाव हो, अनुकंपा का भाव हो, दया का भाव हो, ऐसा। घर में बीमार है जैसे, तो वो बहू बीमार है। और सास को जो है वो नियम है कि मुझे तो जल्दी पहुँचना है; मंदिर का (नियम है)। तो ऐसा नियम होता नहीं है वैसे, (इस प्रकार का नियम) लिया नहीं जाता है। सब नियमों में अपनी परिस्थिति का ध्यान रखकर नियम लिया जाता है और शक्ति के अनुसार लिया जाता है। तो उसकी (बहू की) सेवा तो नहीं करे और वो तड़फ रही है। बुखार के मारे तड़फ रही है। (मान लो) जैसे न्यूमोनिया हो गया। अब ये क्या समझे? जो बुढ़िया है वो (तो) समझे नहीं कुछ। मुझे तो मंदिर जाना है। और देख कहाँ है, कहाँ है बुखार? कहाँ है? कहाँ? देख! ठंडा तो हो रहा है शरीर। कहाँ है? और वो कह दे (कि) ये नहा लेना इससे, ये इसमें टंकी में पानी भरा है। और सर्दी के दिन हैं और (वो सास तो) चली गई (मंदिर)। तो उसने बिचारी ने क्या किया? वो तो आज्ञाकारिणी थी, सो हो गया उसको तो डबल न्यूमोनिया हो गया। और सास आई जितने समय में तो (वो) मर गई, मर गई। अब उसकी (सास की) पूजा का क्या हुआ? ये तो घर की बात (है)।

लोग दान करते हैं और अपने घर के जो हैं वो भूखे मरते हैं; और दान करते हैं लोग। पहला दान तो ये है, पहला कर्तव्य तो ये है (कि इसको खिलाए)। साहब! वो तो स्वार्थ है न! स्वार्थ क्या है उसमें? माने तुम नहीं करते हो तो वो निर्दयता है कि नहीं? कि तुम तो खाते हो और उसमें तुम देख लेते हो कि ये भूखा मर रहा है। तो जब तुम यहीं दया नहीं कर सकते तो औरों पर क्या करोगे, दूसरों पर? तुम्हारे सामने ही जो है रात-दिन तड़प रहा है, तो उस पर नहीं कर सकते तो औरों पर कैसे होगी (दया)? उसको पैसा नहीं दे सकते तो पंचकल्याणक कैसे करोगे?

मुमुक्षुः- करेगा तो दिखावे के लिए करेगा।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! वो कर दे। कर देगा लेकिन पंचकल्याणक का फल नहीं मिल सकता ऐसे पाषाण (हृदय वाले) जीव को। हाँ! ऐसे निर्दयी जीव को।

मुमुक्षुः- पाषाण! पंचकल्याणक तो होगा पर कल्याण नहीं होगा अपना।

पूज्य बाबूजी:- कल्याण नहीं होगा।

मुमुक्षुः- रचना में कुछ बाकी है?

पूज्य बाबूजी:- बस! ये वनस्पति का था जो, बता दिया; इतना ही था। बहुत हैं लेकिन बातें ऐसी।

मुमुक्षु:- पिताजी कुछ कह रहे हैं।

शांतिभाई! द्रव्यकर्म [81]का निमित्त लेकर भावकर्म (और) भावकर्म का निमित्त लेकर द्रव्यकर्म - तो थोड़ा सा करणानुयोग के बारे में कुछ कहो प्रभु।

पूज्य बाबूजी:- करणानुयोग में ये ही है द्रव्यकर्म और भावकर्म, ये दो न्यारे-न्यारे हैं। द्रव्यकर्म से भावकर्म नहीं होता लेकिन भावकर्म होता है तो द्रव्यकर्म का उदय (अवश्य) होता है। उदय रहता है। बस! ये स्थिति है। लेकिन द्रव्यकर्म के उदय में भावकर्म हो और भावकर्म से द्रव्यकर्म का बंध हो, ऐसी संतति अगर चलती ही जावे तो फिर मोक्ष के लिए कौनसा क्षण है? कौनसी परिस्थिति है कि वो बदल सकेगा? इसलिए (वो) बदलेगा नहीं।

तो इसलिए आचार्य ने कहा कि ये दो द्रव्य हैं ये। इन दोनों द्रव्यों को न्यारा-न्यारा देखो। तो जहाँ हमने द्रव्यकर्म को आत्मा से न्यारा देखा, तो फिर द्रव्यकर्म के उदय में होनेवाले जो ममत्व और राग-द्वेष के भाव (हैं), मोह-राग-द्वेष के भाव (हैं) वो कहाँ दिखाई देंगे? जब हमने उसको न्यारा ही देखा कि ये तो आत्मा से बिल्कुल पृथक है, भिन्न चीज है, पुद्गल (है), तो वो न्यारा देखने पर, फिर उसके होने पर और उसका अनुशीलन करने पर कि द्रव्यकर्म के उदय में मुझे भावकर्म होता है और भावकर्म से फिर द्रव्यकर्म का बंध हो जाता है ...... ये जो मानना था मिथ्यात्व भरा, ये मानना समाप्त हो जाता है। और न्यारा-न्यारा देखने पर फिर वो निमित्त नहीं बनता (है बल्कि) वो ज्ञेय बन जाता है। न्यारा देखा न! न्यारे हैं कि नहीं? पहली बात तो ये है।

जैसे एक कैदी है, उसके पैर में लोहे की साँकल है। अब वो अपने को साँकलवाला मानता है। पर बिना साँकलवाला क्यों नहीं मानता है? अरे भाई! आदमी का (और) लोहे का संबंध क्या है? वो तो तेरे अपराध का परिणाम है लेकिन वर्तमान में भी न्यारी ही है (वो साँकल)। तूने अपराध छोड़ा और वो खुली। और अपराध छोड़ना, वो (तो) साँकल के होते हुए भी हो सकता है। भले ही (वो) कारावास में हो, काल-कोठरी में हो भले ही। लेकिन तो भी अपना जो अपराध था उस अपराध के लिए प्रतिज्ञा कर सकता है कि भविष्य में नहीं करूँगा। तो जेल में भी उसका आदर होने लगता है, ऐसा व्यक्ति का। तो ऐसा कर सकता है।

इसी तरह द्रव्यकर्म का उदय (है) लेकिन गुरु से जो देशना मिली उसको इसने हृदय स्वीकार किया और स्वीकार करके अब कहने लगा कि द्रव्यकर्म मेरा कौन लगता है? ये क्या कर सकता है मेरा? ये तो मुझे जानता ही नहीं (है)।

मुमुक्षु:- ये तो मुझे जानता नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- इसमें वो भाव ही नहीं है जो मेरे को होते हैं। मोह-राग-द्वेष के भाव द्रव्यकर्म में हैं ही नहीं, तो ये (मेरे को) करायेगा कैसे? जैसे अनपढ़ है, वो अनपढ़ को कैसे पढ़ायेगा? अनपढ़ को पढ़ाने के लिए (स्वयं उसे) पढ़ा हुआ होना चाहिए न! तो भाई! इसमें ज्ञान

81 द्रव्यकर्म और भावकर्म का करणानुयोग। 1.04.36 Hours

होना चाहिए न इस बात का तो कि मुझे इससे बंधना है (और) इसको दु:ख देना है, इसको मोह पैदा करना (कराना) है। वो उसमें है ही नहीं।

इसलिए देखने की पद्धति ये है कि न्यारा देखो। और न्यारा देखने पर फिर इधर जब न्यारा देखा, तो फिर इधर जो आत्मा रहा वो शुद्ध बचा या अशुद्ध बचा? कैसा बचा? कि बिल्कुल न्यारा देखा, पुद्गल से बिल्कुल न्यारा देखा। तो पुद्गल से न्यारा देखने पर मेरे को मिथ्यात्व-भाव होगा? कैसे होगा मिथ्यात्व-भाव? जब तूने उसको बिल्कुल न्यारा देख लिया (है) तो मिथ्यात्व हो कैसे सकता है अब? मिथ्यात्व होगा कैसे? तू अपने आप को बंधा हुआ मानता है - यहाँ से शुरु होता है मिथ्यात्व। उसका प्रारंभ यहाँ से होता है। इसलिए न्यारा देख लेने पर वो निमित्त नहीं बनता (है) और इधर मिथ्यात्व आदि का नैमित्तिक भाव पैदा नहीं होता (है) न्यारा देख लेने पर। तो वो ज्ञेय-कोटि में चला जाता है।

शरीर है अभी जैसे, इससे ममत्व तोड़ना है। तो शरीर को ये शरीर के रुप में नहीं देखें, क्योंकि ये एक वस्तु नहीं है ये। इसमें अनंत परमाणु हैं। अब हम क्या करें कि इन अनंत परमाणुओं को बिखरा हुआ देखें क्योंकि बिखरेंगे ही सही ये तो, आगे जाकर। तो वर्तमान में ही इनको बिखरा हुआ देखें। तो फिर शरीर ही नहीं दिखाई देगा तो ममत्व किस से करेगा? किससे ममत्व करे? बिखरा हुआ एक-एक परमाणु दिखाई देगा (कि) एक-एक परमाणु से जुड़कर बना है, तो एक-एक परमाणु (को) देखे। तो शरीर ही नहीं देखेगा तो ममत्व का कोई आधार कहाँ रहेगा?

मुमुक्षु:- बराबर! बराबर!

पूज्य बाबूजी:- (तो) देखने की पद्धति ये है। जब कर्म से बंधा हुआ मानता है, तो (उसको) नैमित्तिकभाव मिथ्यात्वादिक पैदा होते हैं। और जब कर्म को न्यारा देखता है, तो वो नैमित्तिकभाव पैदा ही नहीं होते (हैं) मिथ्यात्वादिक - ये देखने की पद्धति है। इसमें निमित्त नहीं मानना कि ये मेरे निमित्त हैं भावों के। भाव का निमित्त.... तू भाव करता है तब वो निमित्त कहलाते हैं। अगर तू भाव ही नहीं करेगा और उनको न्यारा मानेगा तो फिर भाव कैसे होंगे मिथ्यात्वादि के? मैं इनसे बंधा हुआ हूँ - ये भाव कहाँ से होगा? वो तो वस्तु बंधी हुई है तो भी न्यारी है एकदम। क्योंकि उसने अपना जो स्पर्श-रस-गंध-वर्ण है, वो छोड़ा नहीं है। स्पर्श-रस-गंध-वर्णवाली ही है वो तो उस समय भी, जिस समय आत्मा के साथ है।

तो कितनी युक्तियाँ आती हैं (कि) इसकी मेरी जान-पहचान ही नहीं है। तो ये मेरे को राग-द्वेष कैसे पैदा करायेगा? और इसमें राग-द्वेष नहीं है और ये खुद अपने को नहीं जानता है (तो) मेरे को क्या जानेगा? और फिर जिन भावों के लिए मैं कहता हूँ कि ये इसके उदय में मेरे को ये भाव होते हैं, तो उसमें तो है ही नहीं वो भाव। वो तो तूने ही किये है। तूने किये हैं पूरी तरह (से) Cent-Percent (शत प्रतिशत) निरपेक्षरूप से; कर्म से बिल्कुल अलग तूने पैदा किये हैं वो भाव।

मुमुक्षु:- माने राग के करने में रागभाव है ही नहीं? अपनी गलती से रागभाव दिखते हैं।

पूज्य बाबूजी:- नहीं! अपनी गलती नहीं रही इसमें। इसमें अपनी गलती खत्म ही हो गई।

मुमुक्षु:- नहीं मेरा कहना क्या है (कि) राग कर्म में नहीं है?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! कर्म में राग नहीं है। तो कर्म में राग नहीं है, तो (वो) कहाँ से राग पैदा करायेगा? कैसे राग पैदा करायेगा?

कोई व्यक्ति यूँ कहता है कि मुझे तुमको देखकर और एकदम क्रोध आता है। तो व्यक्ति तो यही कहेगा कि मैं क्या करूँ इसका? मैं तो भला आदमी हूँ भैया! मैं तो सद्‌चरित्र व्यक्ति (हूँ)।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

<u>जिनवाणी-स्तुति</u>

आत्मज्ञान में ही आत्मा की सिद्धि और प्रसिद्धि है।
आत्मज्ञान में ही भिन्नरूप विश्व की भी सिद्धि है ॥
आत्मज्ञान ही बस ज्ञान है आत्मज्ञान ही बस ज्ञेय है।
आत्मज्ञानमय ज्ञाता ही आत्मा ज्ञान-ज्ञेय अभेद है॥
दर्शाय सरस्वती देवीने किया परम उपकार है।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वंदना अविकार है॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ, सदा देत हूँ ढोक॥

पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
तत्त्व-चर्चा नंबर २२, तारीख १५-२-१९९९
श्री शांतिभाई ज़वेरी निवास स्थान – नीलांबर, मुंबई

मुमुक्षु:- प्रश्न है [82](कि) स्वपरप्रकाशक विषय के जो प्रमाण हैं वो शास्त्र के आधार देकर थोड़ा सा विश्लेषण कीजिए।

पूज्य बाबूजी:- शास्त्र के तो बहुत आधार हैं।

मुमुक्षु:- बस! वही जानना चाहते हैं कि किन-किन शास्त्रों से कहाँ-कहाँ जो शास्त्रों का आधार दिया गया है (उससे) और इसका स्पष्टीकरण (थोड़ा) ज़्यादा हो जाए।

पूज्य बाबूजी:- अब इतना सारा तो नहीं हो सकेगा। पर पहला तो देखो नियमसार का है। नियमसार की गाथा है, १६४-१६५ इस तरह की हैं कुछ तीन-चार गाथायें। उनमें स्पष्ट है न बिल्कुल कि भगवान केवली निश्चय से अपने आत्मा को ही जानते हैं और जो लोकालोक है, परद्रव्य, उसको व्यवहार से जानते हैं।

व्यवहार की परिभाषा अपन समझते हैं सब। व्यवहार जब भी आवे 'व्यवहार' शब्द, तब सबसे पहले तो उसका निषेध करना कि ऐसा नहीं है। तो लोकालोक को व्यवहार से जानते हैं उसका अर्थ ये हुआ कि सचमुच लोकालोक जानने में नहीं आता लेकिन निश्चय से अपना आत्मा ही जानने में आता है। और उस आत्मा के जानने में ही लोकालोक समाहित हो जाता है। लोकालोक इसी में (समाहित है) क्योंकि आत्मा में ज्ञान है न! तो वो ज्ञान जगत के जितने भी ज्ञेय हैं, केवलज्ञान जगत के जितने भी ज्ञेय हैं, उन ज्ञेयों जैसे आकार से वो स्वयं स्वतः निरपेक्ष ज्ञप्ति से परिणमन करता है। और वो जो जिनको ज्ञेयाकार कहते हैं उसका अर्थ द्रव्य-गुण-पर्याय (है)। आकार का अर्थ व्यंजन-पर्याय नहीं लेना लेकिन द्रव्य-गुण-पर्याय (लेना)। उसमें सब कुछ आ गया।

तो जो कुछ उनके द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, ठीक वैसी की वैसी रचना अपने ज्ञान में ज्ञानरूप करते हैं। ज्ञानरूप! इसलिए वो जो ज्ञानरूप रचना है कि जैसे लोक में उदाहरण के लिए अपन ये कहें कि ये मेरे सामने दीवार है। मैं दीवार को जानता हूँ - इसतरह का भीतर एक विकल्प ज्ञान में पैदा हुआ। तो मैं दीवार को जानता हूँ, इसको हम अगर दीवार की ओर से देखें तब तो यही कहा जाएगा कि ये दीवार को देख रहा है। इसका जो ज्ञान है वो दीवार को जान रहा है (अथवा)

82 स्वपरप्रकाशक के शास्त्र-प्रमाण। - 0.15 Mins

दीवार को देख रहा है। लेकिन जब हम उसके अनुसंधान में उतरेंगे तो क्योंकि दीवार तो ज्ञान में है ही नहीं और ज्ञान जो जानता और देखता है, वो अपनी सीमा में जानता (और) देखता है।

ये बहुत बड़ी बात (है) याद रखने लायक (कि) ज्ञान जो जानता है वो अपनी सीमा में माने आत्मा की सीमा में (जानता-देखता है)। आत्मा जितना बड़ा है ज्ञान (भी) उतना ही बड़ा है। और ज्ञान का जितना भी परिणमन है वो परिणमन उसकी अपनी सीमा में ही होता है। इसलिए मैं दीवार को देखता हूँ अपने ज्ञान में, अपने ज्ञान से तो दीवार ज्ञान में है नहीं। तो क्या है फिर? कि ज्ञान में तो ज्ञान ही होता है। और ज्ञान में दूसरा कौन आयेगा? इसलिए वो सचमुच तो दीवार जैसा आकार, आकार माने द्रव्य-गुण-पर्याय (है कि) सफेद है, भारी है इत्यादि-इत्यादि। ये आकार अपने भीतर ही भीतर बनाता है, ज्ञानरूप-ज्ञानरूप, जाननरूप। तो वो जो उस दीवार जैसा जो उसको भीतर दिखाई दिया, तो वो ज्ञान का आकार उसको प्रतिभास कहते हैं। दीवार का प्रतिभास कहते हैं उसे। दीवार का (है -ऐसा) कहना भी व्यवहार है क्योंकि वो दीवार का नहीं है। वो प्रतिभास ज्ञान की अपनी चीज़ है। अच्छा! और वो प्रतिभास सारा का सारा ज्ञान का ही है, ज्ञानरूप है वो; माने वो प्रतिभास ज्ञान का ही बना हुआ है। इसलिए वो प्रतिभास जाननभाव स्वरुप भी है; माने (कि) वो जानता भी है वो प्रतिभास।

तो जानता भी वही है (और) जानने में भी वही आता है - तो ये बात निश्चय हुई। अब इसके अतिरिक्त हम जो भी बात कहेंगे कि वो लोकालोक को जानते हैं और हम जो हैं (वो) जगत के बाह्य पदार्थों को जानते हैं, तो वो सारी बात व्यवहार में चली जाएगी। और ये जो व्यवहार की जो बात अपन कहते हैं कि दीवार जानने में आई - ऐसा जो आया, तो दीवार की ओर से कहें तो सभी लोग ये कहेंगे कि हाँ! ये दीवार को जान रहा है। और मैं भी दीवार को जान रहा हूँ - ऐसा एक व्यवहारनयात्मक विकल्प इसके भीतर भी उठता है। आत्मदर्शन के बाद व्यवहारनयात्मक (विकल्प) है वो और आत्मदर्शन के बिना मिथ्यादर्शन है। तो वो जो जानने की बात जो आती है, तो उसकी ओर से कहें तो वो दीवार जानने में आई - ये भी स्वयं ज्ञान की ही पर्याय है। इसलिए वो जो परप्रकाशकता है वो स्वप्रकाशकता की ही पर्याय है।

परप्रकाशकता प्रथम तो है नहीं - पहली बात तो ये है। और यदि परप्रकाशकता कहें भी सही ज्ञेय पदार्थों की ओर से, क्योंकि जो निश्चय की बात है कि मेरे (को) तो सिर्फ ज्ञान जानने में आता है। ये हुआ न निश्चय? तो जो ज्ञान ही जानने में आता है, तो प्रतिसमय ये जो आकार पलटते हैं प्रतिसमय, तो ये आकार नहीं पलटने चाहिए। जब ज्ञान ही जानने में आ रहा है तो सिर्फ ज्ञान-सामान्य सपाट एकदम वही जानने में आना चाहिए। तो ये आकार प्रतिसमय क्यों पलटते हैं? क्यों ये चित्र-विचित्र रंग-बिरंगा ये क्यों होता है प्रतिसमय? तो इसका कारण है कि ऐसे के ऐसे पदार्थ जगत में बाहर विद्यमान हैं। तो इससे ज्ञेय की सिद्धि हो गई। और वो जो ज्ञेय हैं वो सारे के सारे ज्ञानरूप बनकर (ही) ज्ञान में आते हैं।

अब क्योंकि शास्त्र में कहा है कि आत्मा स्वपरप्रकाशक स्वभाववाला है। तो इसमें स्वपरप्रकाशक स्वभाव सिद्ध हुआ कि नहीं हुआ? कि वो जो ज्ञेय जैसे आकार हैं भीतर, उन ज्ञेय जैसे आकारों को हम ज्ञेय कहते हैं। हैं ज्ञान के आकार (ही), प्रतिभास जिसको कहते हैं। तो वो हैं ज्ञान के आकार और उनको हम ज्ञेय का आकार कहते हैं.... जिनवाणी में भी कहा है, भगवान की वाणी में आया (कि) उनको ज्ञेय कहना। वो इसलिए कहा जाता है कि यदि उनको ज्ञेय न कहा जाए, तो वास्तविक बात समझ में नहीं आएगी। लेकिन तब कहा जाए कि जब ये समझ लिया जाए कि सचमुच ज्ञान ज्ञान को ही जानता है। आत्मा आत्मा को ही जानता है, अन्य को नहीं जानता है।

इस तरह आत्मदर्शन के बाद स्वभाव का दर्शन हो जाए कि ये जो ज्ञान है - ये ही मैं हूँ, ये ही ज्ञायक है और ये ही मैं हूँ। इस तरह जानकर और फिर भीतर ये विकल्प उठे कि मैं जगत को, लोकालोक को जानता हूँ। केवली भगवान को तो ऐसा होता नहीं (है) विकल्प। लेकिन अपने को होता है ऐसा विकल्प कि मैं लोकालोक को जानता हूँ, तो वो व्यवहारनय कहलाता है। तो प्रतिसमय जो वो अनेक आकार उस ज्ञेय जैसे हुए, उस ज्ञेय जैसे आकार को ही हम परप्रकाशकता के नाम से पुकारते हैं। क्योंकि यदि वैसा नहीं कहें और ये कहें कि ज्ञान ही जानने में आया तो फिर उत्तर नहीं बनता है। माने उसका वो जो प्रश्न किया है.... मान लो कोई परमत वाला है, अन्यवादि है। वो ये कहेगा कि तुम्हारा ज्ञान तो ज्ञान को ही जानता है; और जगत को नहीं जानता है इसलिए तुम्हारे सर्वज्ञ भी नहीं हैं। तो हम कहेंगे कि हमारा जो ज्ञान है, केवली का जो ज्ञान है वो सारे लोकालोक को स्पष्ट जानता है। और ये जो प्रतिभास बनते हैं ये ठीक ज्ञेय जैसे बनते हैं।

तो ज्ञान जब अपने भीतर इतनी सामर्थ्य रखता है कि वो सारे लोकालोक के जो प्रतिभास हैं, वो अपने भीतर बना लेता है तो उसे बाहर जाने की कहाँ आवश्यकता पड़ी? तो वो जो प्रतिभास बने वो भी तो एक शक्ति है या नहीं? एक तो ज्ञान ज्ञान को ही जानता है ये हुआ - निश्चय। और दूसरा वो जो प्रतिभास बने वो भी है निश्चय ही क्योंकि वो ज्ञान ही है। लेकिन वो प्रतिभास बने तो ये प्रतिभास जो हैं वो व्यवहार की ओर से देखें तो व्यवहार से ये लोकालोक जानने में आया, इस तरह कह सकते हैं न उसको। क्योंकि ज्ञान ज्ञान को ही जानता है इतने से उत्तर नहीं होगा। कि (अगर) ज्ञान ज्ञान को ही जाने तो तुम्हारे (ज्ञान में) ये परिवर्तन नहीं होना चाहिए विविध प्रकार के, तरह तरह के। चित्र-विचित्र जो परिवर्तन होते हैं वो नहीं होने चाहिए। और ये परिवर्तन हुए तो इसका अर्थ यह है कि ऐसा का ऐसा लोकालोक जगत में विद्यमान है। और ज्ञान ने ठीक वैसा का वैसा लोकालोक अपने ज्ञान का बनाया है, अपने भीतर। (वो) अपने ज्ञान का बनाया है।

तो वो जो ज्ञान का लोकालोक बनाया, वो ज्ञान की एक ताकत हुई कि नहीं हुई वो? एक तो ज्ञान ज्ञान को ही जानता है ये तो केवल सपाट बात हुई। और एक वो जो प्रतिभास बने हैं अनेक, अनंतानंत सारे लोकालोक के, तो वो जो प्रतिभास बने वो भी ज्ञान की ताकत से ही बने हैं

न? किसी दूसरे का उसमें कुछ नहीं (हैं) क्योंकि जो ज्ञप्ति है वो ज्ञप्ति (तो) निरपेक्ष होती है। इसलिए ये बिल्कुल निरपेक्ष बने हैं। तो ये भी एक स्वभाव हुआ कि नहीं हुआ? तो इस स्वभाव को हम परप्रकाशकता कह सकते हैं। लेकिन क्योंकि एक पर्याय के दो खंड नहीं होते हैं। वो प्रतिभास जो हैं वो सारी एक ही ज्ञान की पर्याय है वो। थोड़ा अलग हो ज्ञान, ज्ञान को जाननेवाला और ये प्रतिभासों को जाननेवाला (ज्ञान) अलग हो ऐसा नहीं है। क्योंकि प्रतिभास हर जीव में प्रतिसमय होते (ही) हैं। किसी न किसी पदार्थ (के) जैसे प्रतिभास हर समय माने निगोदिया से लगाकर भगवान केवली तक प्रतिसमय प्रतिभास होते हैं।

तो वो जो प्रतिभास बने (हैं) वैसे, ठीक ज्ञेयों जैसे, तो वो भी तो किसी शक्ति से बने हैं न, ज्ञान-शक्ति से। तो वो ज्ञान की उस शक्ति को हम परप्रकाशकता कहें तो कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन है वो ज्ञान की ही पर्याय। इसलिए अंत में जब अनुसंधान हम करते हैं तो उससे ये फलित होता है कि ज्ञान सचमुच ज्ञान को ही जानता है। और इसका अर्थ ये कि ये सबका सब ज्ञान ही है क्योंकि ये जो अनेक प्रकार के प्रतिभास और ज्ञेयों जैसे आकार हैं, तो इनमें कुछ भी नहीं है। इनको मैं अच्छी तरह टटोलता हूँ तो ज्ञान ही ज्ञान आता है, सब जगह से। सारे प्रतिभास में ज्ञान ही ज्ञान है। इस तरह मैं ज्ञान ही हूँ अर्थात् मैं ज्ञायक हूँ।

तो ज्ञान ही हूँ अर्थात् ज्ञायक हूँ - ये उसने पहले निश्चय किया था जिस समय इस प्रकरण पर वो चिंतन करता है, तो उसने पहले ये निश्चय किया कि मुझे प्राप्त क्या करना है? मैं हूँ कौन असल में? ये पहले निश्चय कर लिया था। इसलिए ये मैं ज्ञान को ही जानता हूँ और मैं ज्ञान ही हूँ, यहाँ वो अटकता नहीं है। अगर वो अटक जाए तो पर्याय दृष्टिवाला मिथ्यादृष्टि बन जाएगा यहाँ भी। ज्ञान ज्ञान को ही जानता है अगर यहाँ रुक गया और वो आगे नहीं बढ़ा ज्ञायक पर तो उसका निर्णय ठीक नहीं है प्रारंभ से। इसलिए प्रारंभ से निर्णय यह है कि मैं सचमुच चिन्मात्र ज्ञायक हूँ और मुझे उसी में अहम् करना है।

तो इसलिए प्रक्रिया ये है कि सचमुच जो ज्ञेयाकार हैं, वो ज्ञेयाकार नहीं हैं आत्मा में। लेकिन वो ज्ञानाकार हैं अर्थात् प्रतिभास हैं। अब वो जो प्रतिभास हैं वो सबके सब ज्ञान ही हैं। अर्थात् वो प्रतिभास जानते भी हैं और जानने में भी आते हैं। इस तरह स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञान (है)। तो ज्ञान ज्ञान को ही जानता है और ज्ञान ज्ञान को ही जानता हैं अर्थात् सब कुल मिलाकर मैं ज्ञान हूँ और ज्ञान (हूँ) अर्थात् मैं ज्ञायक हूँ। क्योंकि ज्ञान वास्तविक लक्षण है इसलिए ज्ञान से लक्षण पर नहीं रहा जाता है। कोई भी व्यक्ति अगर किसी वस्तु को पहचानता है, ढूँढता है और उसका लक्षण देखता है तो लक्षण से तुरंत हटकर और वो लक्ष्य पर अर्थात् आत्मा पर पहुँच जाता है। इसलिए मैं तो एकमात्र चिन्मात्र ज्ञायक ही हूँ, यहाँ आकर उसका पर्यवसान हो जाता है, समापन हो जाता है और ज्ञायक के दर्शन हो जाते हैं।

ये बात [83]नियमसार में जो आई न और फिर दूसरा ये आया कि अगर ये कहें कि भगवान केवली लोकालोक को व्यवहार से जानते हैं और आत्मा को नहीं जानते (हैं) तो इसमें क्या दिक्कत है? कि कोई दिक्कत नहीं है। कि कोई दिक्कत नहीं है। लोकालोक को व्यवहार से जानते हैं अर्थात् वास्तव में नहीं जानते (हैं) उसमें ये लगाना है। उसमें जानना नहीं लगा लेना कि वे जानते हैं तो जानते ही होंगे वास्तव में। जानते नहीं, जानते भीतर है न! सारा लोकालोक जो है वो मान लो वो भीतर प्रतिभासित हो गया। तो अब उसको बाहर कहाँ जाने की जरूरत है? इसलिए सब यहाँ आ गया है न? इसलिए फिर उसमें आया कि जो एक को जानता है वो सबको जानता है। तो एक को जानता है माने? जिसने अपनी, जिस ज्ञान की पर्याय ने स्वयं उसी पर्याय को जाना तो उस पर्याय में अपने अनंत गुण (को), अपने द्रव्य (को जाना)। द्रव्य तो जिस समय अनुभूति होती है उस समय होता है। पर अनंत गुण, अनंत गुणों की अनंत पर्यायें और सारे लोकालोक की सारी पर्यायें वो सब उस एक ज्ञान की पर्याय में प्रतिभासित हो जाते हैं। इसलिए बाहर जाने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं होती।

तो भगवान केवली व्यवहार से लोकालोक को जानते हैं उसका अर्थ ये हुआ कि वास्तव में लोकालोक जानने में नहीं आता लेकिन वो तो ज्ञान ही है सारा का सारा उस तरह का। और सब पृथक-पृथक क्योंकि पदार्थ पृथक-पृथक हैं। तो इसलिए सब पृथक-पृथक जानने में आता है सारा का सारा। और पृथक-पृथक जानकर भी अंत में क्या होता है? कि अंत में ये ही प्रक्रिया केवलज्ञान में ये ही होती है। विचार नहीं होता है केवलज्ञान में। लेकिन वहाँ तो सीधी ये ही प्रक्रिया (है) कि आत्मा हूँ, ज्ञायक हूँ - सीधी ये ही प्रक्रिया। क्योंकि वो जितने भी प्रतिभास हैं न केवलज्ञान में, अनंतानंत प्रतिभास, वो सब एक केवलज्ञान की (ही) पर्याय हैं। और वो उस केवलज्ञान की पर्याय का जो देवता है वो ज्ञायक है और ये है पुजारिन। ये पुजारिन है। तो भगवान का भी ये ही तरीका है। और अपन भले ही कम पदार्थों को जानें, कम पदार्थों को जानें अर्थात् कम पदार्थ प्रतिभासित हों लेकिन ज्ञान के जानने की विधि में निगोद से लगाकर केवलज्ञान तक कोई अंतर नहीं है। अंतर केवल मानने का और जानने का, मिथ्या मानना और मिथ्या जानने का है। और दूसरा कोई अंतर नहीं है।

इसलिए एक तो [84]नियमसार में आई (ये बात कि) निश्चय से तो ये ही कहा (है) १६५वीं गाथा में कि स्वप्रकाशक ही है। इसलिए परप्रकाशकता.... एक १७४ वीं गाथा में आया। इसमें प्रवचनसार (की) १७४ वीं गाथा में (आया) कि जैसे ये कहा जाता है कि अमूर्त आत्मा के साथ कर्म बंधते हैं, पुद्गल कर्म। तो जैसे ये व्यवहार है। वहाँ पर बंध की सिद्धि की जा रही है। तो जैसे जो

83 भगवान केवली लोकालोक को व्यवहार से जानते हैं और आत्मा को नहीं जानते हैं, तो इसमें क्या दिक्कत है? - 15.05 Mins

84 प्रयोग-पद्धति क्या है? -17.58 Mins

अमूर्त है, आत्मा उसके साथ मूर्त कर्म बंधते हैं। तो कहते हैं (कि) ये व्यवहारनय है, ऐसा कहना व्यवहारनय है। वास्तव में आत्मा के साथ कर्म नहीं बंधते हैं पर कर्म के साथ ही कर्म बंधते हैं। आत्मा के साथ कैसे बंधेंगे कर्म? आत्मा के आसपास छाए रहें भले, वो तो उनके रहने की जगह है। लेकिन वो कर्म के साथ ही कर्म बंधते है, निश्चय तो ये है। लेकिन आत्मा के साथ बंधते हैं ये भी कहना चाहिए क्योंकि वो (उसका) भी एक कारण है, अन्यथा संसार की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

तो जैसे ये कहा जाता है तो उसमें उदाहरण ये दिया है कि ये अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्मों का बंध कैसे होता है? तो उसके लिए आचार्य ने उदाहरण दिया कि जैसे अमूर्त आत्मा मूर्त पदार्थों को व्यवहार से जानता है। जैसे अमूर्त आत्मा मूर्त पदार्थों को व्यवहार से जानता है, उसी तरह अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्म व्यवहार से बंधते हैं। व्यवहार से बंधते हैं अर्थात् व्यवहारनय से ये कहा जाता है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! दोनों एक ही बात है?

पूज्य बाबूजीः- दोनों एक ही बात है। वहाँ ये उदाहरण लिया (है) जानने का कि अमूर्त जो है (वो) मूर्त को जानता है, जैसे ये व्यवहार है उसी तरह से ये व्यवहार है कि अमूर्त के साथ मूर्त का बंध हुआ है। है न?

अब २७० जो गाथा है, वो जिसमें लिया है कि मैं अन्य जीव को पीड़ा देता हूँ अथवा अन्य जीव की रक्षा करता हूँ अथवा मैं मनुष्य हूँ अथवा मैं ये धर्मास्यिकाय आदि को जानता हूँ। ये जो लिया है तो ये लिया है, इसको कहा अध्यवसान। अध्यवसान माने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र - ये कहा है।

मुमुक्षुः- समयसार गाथा २७०।

पूज्य बाबूजीः- तो उसमें तीन बातें तो अपन स्वीकार कर ही लेते हैं कि मैं किसी की रक्षा करता हूँ - ये बात वास्तव में सही नहीं है। क्योंकि ऐसी बात आज तक जगत में, अनादि जगत में और अनंतकाल तक भी ऐसी एक घटना नहीं घटेगी कि कोई आत्मा किसी जीव को बचा ले अथवा उसकी रक्षा करे। ऐसी घटना घटी नहीं है और अनंतकाल में भी नहीं घटेगी, इसलिए ये बात मिथ्या है। इसी तरह से मैं किसी जीव को पीड़ा देता हूँ। तो कहते हैं कि ये पीड़ा देना भी सार्थक होता नहीं है, घटता नहीं है। ये भीतर ही भीतर इस तरह के मिथ्या विकल्प करता है लेकिन किसी ने आजतक किसी को पीड़ा दी हो - ये बात कतई झूठ है; इसलिए ये भी मिथ्या है।

मैं मनुष्य हूँ - ये बात भी झूठ है। क्योंकि मनुष्य के भीतर तो वो जो ज्ञायक है चिन्मात्र, वो भीतर पड़ा हुआ है। ये तो ऊपर का आवरण और ऊपर का चोला है। जैसे किसी घड़े के भीतर जो है, दीपक जलता है और ऊपर से ढका हुआ है (तो) इस तरह से चिन्मात्र ज्ञायक इसके भीतर पड़ा है रोम-रोम में लेकिन दोनों बिल्कुल न्यारे-न्यारे हैं। सदा से ही साथ रहे हैं क्योंकि तेजस-

कार्माण शरीर तो संसार अवस्था में रहता है। इसलिए सदा से साथ रहे हैं लेकिन एकमेक कभी भी नहीं हुए।

इस श्रृंखला में जिसको महापाप कहा है, उस श्रृंखला में आचार्य ने लिया है कि ये मेरे (को) परद्रव्य जानने में आता है, धर्मास्तिकाय जानने में आता है - ये भी उसी कोटि का मिथ्यादर्शन है। समान कोटि का मिथ्यादर्शन (है) क्योंकि धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय की जगह (पर) है और तेरा (ये) ज्ञान है वो तो आत्म-प्रमाण है। तो वो तो वहीं जानने की क्रिया करता है। तो वहाँ कौन है कि जो जानने में आता है? ज्ञान की सीमा में ज्ञान के भीतर कौनसा पदार्थ है कि जो जानने में आता है? कि जगत का कोई पदार्थ (ऐसा) नहीं है। और हमारे भीतर उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेष ये भी ज्ञान के भीतर कभी आज तक आए (ही) नहीं (हैं) अनादिकाल से और वो बाहर ही रहे हैं। क्योंकि दो विपरीत तत्त्व हैं वो कभी एक नहीं हो सकते। उसका हेतु ये है, उसका reason (कारण) ये (है)। कि क्यों नहीं हुए? मोही-रागी-द्वेषी तो जीव को ही कहा जाता है, तो वो बात पुरानी हो गई। अब हम बहुत आगे बढ़ गए हैं क्योंकि अब प्रयोग-पद्धति पर चल रहे हैं। इसलिए मोह-राग-द्वेष ये भी उस ज्ञान से भिन्न ही हैं सदा। तो सब भिन्न-भिन्न हैं। और ये अज्ञानी जो है, उसको ये मानने में आता (है) कि मैं ही मोही-रागी-द्वेषी हो गया।

इसलिए आचार्य अनुभूति का जो प्रारंभ है वो यहाँ से करते हैं। कहाँ से करते हैं? कि ये जो उपयोग है प्रतिसमय चलनेवाला, ज्ञान की पर्याय, ये ज्ञान की पर्याय मोह-राग-द्वेष से सदा से (ही) न्यारी है। और मोह-राग-द्वेष के भाव, क्रोध-मान-माया-लोभ के भाव ये स्वयं हमारे अनुभव में आते हैं। आते हैं न? अनुभव में आते हैं। अनुभव में आते हैं, तो उस अनुभव में वो ज्ञान सिर्फ उनके स्वरूप को जानता है - सच्चाई तो यह है। ये ऐसा मानता है कि मेरा ज्ञान और मैं ही रागी-द्वेषी-मोही हो गया हूँ। तो वो जो संधि है दोनों में, एक तो चैतन्य अथवा ज्ञान और एक मोह-राग-द्वेष; इन दोनों के बीच में जो संधि है उस संधि को भंग करके और ये ये मान लेता है कि मैं मोही-रागी-द्वेषी हो गया हूँ।

तो ये तो अब [85]आचार्य शुरु कहाँ से करते हैं? प्रारंभ कहाँ से करते हैं जिनवाणी में? कि ये जो उपयोग है हमारा, ये भले कैसा ही इसने मानो अनादिकाल से। लेकिन मान लेने पर भी मोह का एक अविभाग-प्रतिच्छेद इसके ज्ञान में प्रविष्ट नहीं हुआ और आत्मा में प्रविष्ट नहीं हुआ। तो राग-द्वेष का एक भी अविभाग-प्रतिच्छेद इसके ज्ञान और आत्मा में प्रविष्ट नहीं हुआ। वो बाहर ही बाहर रहे हैं।

तो जिस समय सद्गुरुदेव के उपदेश से ये बात जानने में आईं, तभी इसने उन मोह-राग-द्वेष को अलग किया - ऐसा नहीं (है)। क्योंकि जो अलग है उनको क्या अलग करें? वो तो अलग हैं न? इसलिए उनको अलग नहीं किया जाता। ये अलग-वलग करने का धंधा है, ये ज्ञान जैसा जो

85 आचार्य शुरु कहाँ से करते हैं जिनवाणी में? - 24.49 Mins

महान तत्त्व है जगत का पूजनीय तत्त्व, वो ऐसा धंधा करेगा जो न्यारा-न्यारा करे किसी को? वो तो जो न्यारे हैं उनको तो एक किया नहीं जा सकता। और जो एक हैं उसको तोड़ा नहीं जा सकता, न्यारा नहीं किया जा सकता।

तो मोह-राग-द्वेष को न्यारा किया ये व्यवहार कथन है। आता है न! आता (है) जिनवाणी में आता है, भगवान की वाणी में आता है कि मोह-राग-द्वेष छोड़े (या) मोह-राग-द्वेष को अलग किया। लेकिन सच्चाई ये है कि मोह-राग-द्वेष और ये उपयोग चलनेवाली ज्ञान की पर्याय, उसमें मोह-राग-द्वेष का प्रवेश कभी हुआ (ही) नहीं (है)। वो सचमुच स्वच्छ ही रही है हमेशा से लेकिन निर्मल नहीं हुई। क्योंकि मिथ्याज्ञान है न! उसमें इसने ये कल्पना की कि मोह-राग-द्वेष जैसा आभास ये जो ज्ञान में होता है, तो ये मेरा ज्ञान मोही-रागी-द्वेषी हो गया। तो इसने ज्ञान को और मोह-राग-द्वेष को मिलाकर अनुभव किया (वह) इस तरह निरंतर अशुद्धात्मा का अनुभव करता रहा।

तो क्या हुआ? कि जब गुरुदेव के प्रसाद से ये बात मिली और उन्होंने ये बताया कि मोह-राग-द्वेष तेरे ज्ञान से, तेरी वर्तमान ज्ञान की पर्याय से.... आत्मा से तो (भिन्न) हैं ही सही। पर तेरी वर्तमान ज्ञान की पर्याय से भी ये सब न्यारे ही हैं, तेरे उपयोग से। सदा से न्यारे हैं।

तो ऐसा जब उसने न्यारा जाना कि तो ये जो उपयोग है ये मोह-राग-द्वेष में जो अहम् करता था, उनका ये अवलंबन लेता था निरंतर, तो उनका अवलंबन तोड़कर अब कौन बचा? कि सारे जगत से तो लौट ही आया था वो। अब तो अपने मोह-राग-द्वेष की बात कर रहा था कि ये तो मेरे में ही पैदा होते हैं। इसलिए मोह-राग-द्वेष वो मेरे ही हैं और मैं ही मोही-रागी-द्वेषी हूँ। ये मेरे कर्म और मैं इनका कर्ता, ऐसा कर्ता-कर्म भी जोड़ता था। अब जब समझ में आया, तो मोह-राग-द्वेष मेरे से न्यारे ही भाव हैं। इनको न्यारा करना नहीं है बल्कि ये न्यारे ही पड़े हैं - ऐसा जानकर अब एक सिर्फ ज्ञायक ही बचता है। इसलिए मोह-राग-द्वेष से छूटकर ज्ञायक पर चला जाता है। और उनका भी वही है स्वपरप्रकाशक में कि केवल उनके स्वरूप का प्रतिभास ही होता था। क्योंकि हमारे अनुभव में आते हैं न निरंतर? ये मेरे (को) राग आया, द्वेष आया, पुण्य आया, पाप आया। ये अनुभव में आते हैं न! तो ये आया, तो अनुभव में आया कि अर्थात् ज्ञान था अलग और वो अलग।

मुमुक्षुः- आहाहा! इस प्रकार था।

पूज्य बाबूजी:- अनुभव में आया। इस तरह है बात तो है असल में। लेकिन इसने दोनों को एकमेक करके अनुभव किया इसलिए अशुद्ध अनुभूति इसको हुई। और ये महा अपराध है ज्ञान के लिए। इसलिए अपराध है कि इसने सारे जगत के जीवों को, जो (कि) परमशुद्ध हैं एकदम; एकदम परमशुद्ध (हैं कि) जिनमें विकार का नाम-निशान भी नहीं है और जिनमें परिणमन है ही नहीं। परिणमन का भी जिनमें नाम-निशान नहीं है। इस तरह परिणमन भी नहीं (है) और कोई

मिलावट भी नहीं (है)। ऐसा जो जीव नाम का जो परिशुद्ध तत्त्व है वो सारे जीवलोक को इसने अशुद्ध कर दिया। इसलिए ये महान अपराधी हुआ और उस अपराध के कारण इसको नरक और निगोद की सजा होती है।

तो वो जो प्रतिभास है उनका वो तो प्रतिभास ज्ञान हो गया क्योंकि उसने मोह-राग-द्वेष को नहीं बल्कि उनके प्रतिभासों को, अपने द्वारा बनाए गए जो ज्ञान के प्रतिभास हैं उनको जाना। और उनको जानकर कि ये इनमें क्या है? ये तो मोह-राग-द्वेष हैं ही नहीं, ये तो ज्ञान ही है। और ज्ञान ही है अर्थात् ये तो मैं ही हूँ, ज्ञायक ही हूँ। इस तरह जानकर एक छलांग मारकर ज्ञायक पर चला जाता है और आत्मदर्शन हो जाता है। बस! ये उसका एक छोटा सा तरीका है। छोटा सा तरीका है।

बात तो अपनी स्वपरप्रकाशक की है पर ये प्रयोग-पद्धति है ये। ये प्रयोग-पद्धति है। क्योंकि ये चूका कहाँ है? किस जगह चूका है ये? कि ये यहाँ चूका है। ये आत्मा को सदैव अशुद्ध ही अनुभव करता है क्योंकि ये देखो हो रहे हैं न मेरे को मोह-राग-द्वेष। ये मेरे को ही तो हो रहे हैं। पर ये मेरे को हो रहे हैं, इसमें भी संधि है। मैं और मोह-राग-द्वेष, मेरे (में) और मोह-राग-द्वेष (में) इनमें संधि है बीच में। संधि है इसलिए वो न्यारे हैं।

तो न्यारा जानना (है) सिर्फ, न्यारा करना नहीं (है)। ये करने का धंधा ज्ञान कभी करता नहीं है। वो उसने उनको ग्रहण किया हो तो वो उनको छोड़ेगा। पर उसने मोह-राग-द्वेष को ग्रहण ही नहीं किया तो ये द्वेष छोड़ेगा कहाँ से? इसलिए छोड़ने और ग्रहण करने का काम, त्याग करने का काम आत्मा नहीं करता। त्याग का तो नाम लिया जाता है खाली। बाकी त्याग करे तो ज्ञान, आनंद और सुख का करे क्योंकि उसके भीतर तो वही है। वो मोह-राग-द्वेष तो हैं ही नहीं। तो आत्मा को अगर त्यागी कहा जाए तो आत्मा अजीव हो जाएगा। क्योंकि वो क्या छोड़ेगा? उसके पास मोह-राग-द्वेष तो (हैं नहीं, वो तो) छूटे हुए ही हैं। वो तो न्यारे के न्यारे ही हैं। अब कहते हैं (कि) उसने छोड़ा। (तो) छोड़ा, तो फिर उसके पास होगा वही छोड़ा उसने। तो वो अचेतन और जड़ हो जाएगा।

इसलिए प्रयोग-पद्धति का संक्षेप ये है कि उसने मोह-राग-द्वेष का प्रतिभास..... प्रतिभास माने ठीक वैसा का वैसा जानना। वैसा का वैसा जानना! जैसा मोह-राग-द्वेष का स्वरुप है कि ये ममत्व करता है - ऐसा; ऐसा का ऐसा जानना। तो ये जाना तो ये ज्ञान ही है और इसमें मोह-राग-द्वेष न होने के कारण इस ज्ञान में कोई विशेषता नहीं है। विशेषता तब हो कि जब मोह-राग-द्वेष ज्ञान में मिल जाएँ, तब तो विशेषता हो जाए। लेकिन विशेषता इसलिए नहीं है कि जिधर से देखता हूँ ज्ञान ही ज्ञान मिलता है। मोह-राग-द्वेष कहीं भी नहीं मिलते हैं।

तो इसलिए मोह-राग-द्वेष से न्यारा मैं सदा ही चिदानंद चैतन्य ज्ञायक हूँ - ऐसा जानकर एकदम छलांग मारकर, ज्ञायक पर चला जाता है। क्योंकि ज्ञायक को पहले इसने गुरुदेव से सुना

(और) सुनकर उस पर विचार किया। और (फिर) ये इस निर्णय पर पहुँचा कि इससे समृद्धिशाली तत्त्व जगत में दूसरा नहीं है। तो दूसरा तत्त्व नहीं है जगत में समृद्धिशाली। तो ऐसी उसकी समृद्धियों पर मुग्ध हुआ। और वो तब मुग्ध हुआ कि जगत की जो समृद्धियाँ हैं ये तो बिल्कुल क्षणभंगुर हैं। ये तो मैंने अपनी आँखों देखी हैं। इसलिए कोई ऐसी चीज मिलना चाहिए कि जिसका कभी व्यय न हो, कभी जिसका नाश न हो।

तो वो जब गुरुदेव से सुना तो गुरुदेव ने बताया कि इसका नाश कभी होता नहीं, इस समृद्धि का। इस समृद्धि का भोग तू निरंतर करे..... माने भोजन करे और भोजन उतना का उतना (रहे)। भोजन में थोड़ा भी कम न हो। तो निरंतर भगवान सिद्ध जो भोजन करते हैं उस ज्ञान-आनंद का और वो भोजन उतना का उतना (रहता है)। वो बीतता ही नहीं है। इस तरह अटूट है वो, एक तरह से। इस तरह अटूट है। तो इस तरह से वो सिद्धि हो जाती है।

और वो जो [86]२७१ वाँ कलश है। २७१ है न कलश! तो उसमें तो कमाल ही किया राजमल जी साहब ने। बोले (कि) ये जो कहा जाता है कि वो ज्ञान लोकालोक को जानता है..... तो कहते हैं (कि) ऐसा है तो नहीं - ये भ्रांति है। अब इसमें भी क्या कहेंगे? कि ये भ्रांति है। भ्रांति है माने झूठा है, झूठ है। भूला है ये। ये बिल्कुल विपरीत है माने। भ्रांति विपरीत को कहते हैं।

तो ये भ्रांति है अर्थात् ये बिल्कुल विपरीत मानता है। सचमुच लोकालोक जानने में नहीं आता क्योंकि ज्ञान और आत्मा की जगह आत्मा और ज्ञान ही हैं। और कोई न तो ये बाहर जाता है और न कोई बाहर का पदार्थ इसमें आता है। तो ये ही रहते हैं और जानने का कार्य होता ही है। तो जानने का कार्य होता है तो वहाँ पर कोई कर्म भी होता है और कोई कर्ता भी होता है। तो कौन हुए कर्ता-कर्म? तो ज्ञान ही कर्ता और ज्ञान ही कर्म। माने ज्ञान ही जानने में आया और ज्ञान ने ही (अर्थात्) उस प्रतिभास ने (ही) जाना।

मुमुक्षुः- आहाहा! उस प्रतिभास ने जाना?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! केवली के जो अनंत प्रतिभास हैं, वो अनंत प्रतिभास सिर्फ एक ज्ञान की, केवलज्ञान की पर्याय है। ये है केवली का जो calculation (गणना) है वो कि वो सिर्फ एक केवलज्ञान की पर्याय है। और वो केवलज्ञान की पर्याय वो अनंत प्रतिभास सहित उस शुद्धात्मा में डूबती है। प्रतिभास नहीं मिटते हैं। प्रतिभास तो प्रतिसमय बनते ही रहेंगे, जब तक ये लोकालोक है तब तक। वो तो बनते ही रहेंगे। पर उन प्रतिभासों सहित अर्थात् ज्ञान के उन आकारों सहित वो उस ज्ञायक में डूबती है सदा (ही और) उसकी उपासना करती है। इस तरह भगवान सिद्ध जो करते हैं वो ही काम हमारा है।

तो यहाँ श्रुतज्ञान ने किया वो काम वहाँ केवलज्ञान ने कर लिया। तो ये श्रुतज्ञान जो है वो भगवान सिद्ध से कम न होने के कारण ये कहा गया (है) कि सम्यग्दृष्टि का अपनी आत्मा को

86 २७१ वाँ कलश - समयसार कलश-टीका। - 33.53 Mins

जानने वाला ज्ञान सिद्धों के समान शुद्ध होता है। माने वहाँ राग-द्वेषादि पड़े रहते हैं। वो तो रहेंगे ही सही मोह-राग-द्वेष तो, साधक दशा में। तो साधक दशा में पड़े रहने पर भी उनकी अनुभूति नहीं होती क्योंकि इसका विषय एक मात्र शुद्ध ज्ञायक है। शुद्ध चिन्मात्र है इसका विषय। तो जो विषय होता है वही उसका नाम होता है ज्ञान का।

ज्ञान का नाम क्या है? शुद्धनय। शुद्धनय क्यों कहा गया? ज्ञान तो शुद्ध ही है असल में देखा जाए तो। ज्ञान में क्या खराबी आई? लेकिन शुद्धनय क्यों कहा गया? क्योंकि इसका विषय जो है (वो) शुद्ध ज्ञायक है, तो शुद्ध कहा गया।

केवल वो भ्रांति है। भ्रांति अर्थात् है मैं मोही-रागी-द्वेषी हो गया हूँ। इतनी सी भ्रांति है सिर्फ इतनी सी। एक वाक्य जितनी कि मैं मोही-रागी-द्वेषी हो गया। कहते हैं पलट दे इसको एकदम और इससे उल्टा बोलने लग जा। और (उसमें) केवल 'नहीं' लगा दे। उसमें क्या (है)? वाक्य तो वो का वो ही रह जाएगा। मैं मोही-रागी-द्वेषी हो गया (उसको पलटकर) कि मैं मोही-रागी-द्वेषी नहीं हुआ। मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ - बस हो गया। काम बन गया।

इस तरह के अच्छे-अच्छे प्रमाण हैं, पढ़ना। २७० गाथा में तो बहुत कमाल किया है। बहुत कमाल किया है। माने उस पंक्ति में ही लिया है वो। वो जो महापाप है न बचाने का (और) मारने का। मैं मनुष्य-तिर्यंच-देव-नारकी हूँ - इस तरह का ये उस line (पंक्ति) में ये लिया है कि ये मेरे को जगत जानने में आता है। मेरे को धर्मास्यिकाय जानने में आता है। उस पंक्ति में इस जानने को लिया है और उतना ही बड़ा पाप है जैसे वो मिथ्यात्व है, उसी तरह ये भी मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षुः- जैसे कि अशुभभाव का तीव्र स्वरुप और पर को जानने का स्वरुप - एक ही प्रमाण है।

पूज्य बाबूजीः- शुभभाव-शुभभाव। पर उधर, उधर उन सबका जो जनक है, पिता, वो पड़ा (है) मिथ्यादर्शन। इसलिए वो सबको पाप कर देता है। तो वो पड़ा (हुआ) है क्योंकि मैं जानता हूँ (ऐसा जीव मानता है)।

अब उसका सबसे अच्छा प्रमाण ये कि जगत के सारे जीवों को ये श्रद्धा है और ये ज्ञान भी है कि हम जगत को जानते हैं। ये जगत के पदार्थ हमारे जानने आते हैं। तो अगर ये श्रद्धा सच्ची होती तो फिर मुक्ति अवश्य होती। क्योंकि एक ही विषय हो लेकिन वो perfect (निष्कलंक) हो, तो वो जो है वो ज्ञायक की अनुभूति के calculation (गणना) में जाता है।

तो अगर ये श्रद्धा सच्ची होती तो फिर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान क्यों नहीं होते? लेकिन हुए क्या? तो नहीं हुए। तो हमको तो इससे ही जान लेना चाहिए कि आज तक ये काम हमारे इस तरह से जानने से और ऐसी श्रद्धा से नहीं हुआ.... तो इसका अर्थ ये है कि इससे उल्टा है कोई और इसको (जो है वो) उल्टा कर देना चाहिए। तो उसको उल्टा कर दे, सीधा है। उल्टा कर देता है तो ज्ञायक के दर्शन सीधे हो जाते हैं।

इस तरह परप्रकाशकता भी सिद्ध हो जाती है। सिद्ध हो जाती है लेकिन फिर भी वो स्वप्रकाशकता की ही पर्याय है और वो है व्यवहार। स्वपरप्रकाशक शक्ति जो कही है, तो वो भी तो एक शक्ति है न, कि जो प्रतिभास (हैं) जो सारे जगत जैसे हुऐ.... वो भी एक इसने अपनी ताकत से बनाए हैं कि नहीं? और सामान्य से देखा जाए तो ज्ञान है।

मुमुक्षुः- सामान्यरूप से देखा जाये तो.....

पूज्य बाबूजी:- ज्ञान है। ज्ञान को ही जानता है - (बस) हो गया स्वपरप्रकाशक और शक्ति हो गई वो। शक्ति नहीं होती तो कैसे बनाता? केवल एक केवलज्ञान की पर्याय (है और) इतने प्रतिभास अनंतानंत। एक भगवान अरिहंत का केवलज्ञान (है), अभी सिद्ध भी नहीं हुए। वो भगवान अरिहंत का केवलज्ञान अपने को तो सबको जानते ही है, सारे अपने आत्मप्रदेशों को भी जानते हैं और सारे गुण-पर्याय सबको जानते हैं। अब उधर जो अनंत सिद्ध हैं, उनके जो अनंत केवलज्ञान हैं और उन वो अनंत केवलज्ञानों में जो भासित हो रहा है, उसको भी ये एक केवलज्ञान जानता है भगवान अरिहंत का।

मुमुक्षुः- Calculation (गणना) करना मुश्किल हो जाए!

पूज्य बाबूजी:- मुश्किल हो जाए। क्या calculation (गणना) करे?

मुमुक्षुः- कितनी सामर्थ्य!

पूज्य बाबूजी:- माने सबके केवलज्ञान अनंत, वो अनंत केवलज्ञान क्या जान रहे हैं? कि जैसा ये जान रहा है। तो ये उन अनंतों के केवलज्ञान को भी जानता है लेकिन जानता अपना ज्ञान बनाकर (है)।

मुमुक्षुः- बराबर! अपना ज्ञान बनाकर।

पूज्य बाबूजी:- अपना ज्ञान बनाकर, उनके केवलज्ञान से कुछ नहीं लेता है। हाँ! जरा भी ज्ञेयकृत अशुद्धता कभी आती नहीं है। उनका केवलज्ञान जरा कारण नहीं है इसके केवलज्ञान में। इसी तरह श्रुतज्ञान में भी कोई कारण नहीं है। जिस समय ये आत्मानुभूति पर जाता है, तो (उस समय) कोई कारण नहीं है। रागादिक की अनुभूति होती ही नहीं है। एकमात्र सुख की और आनंद की अनुभूति होती है, एकमात्र। इसलिए उस समय वो बिल्कुल सिद्ध जैसा है; कोई फर्क नहीं है।

मुमुक्षुः- ये [87]कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति की बात आती थी न?

पूज्य बाबूजी:- कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति आती है न! कि वो जो जैसे छठवीं गाथा में जो आया है पहला कि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से जानने में आया। ये आया न! **वह स्वरूपप्रकाशनकी (स्वरूपको जाननेकी) अवस्थामें भी कर्ता-कर्मका अनन्यत्व होनेसे ज्ञायक ही है।** अब ये बहुत बड़ी बात हो गई ये कि स्वरूप-प्रकाशन की अवस्था में तो वो ज्ञायक है ही सही क्योंकि उस समय आत्मा जानने में आ रहा है। लेकिन ज्ञेयाकार अवस्था में जो

87 छठवीं गाथा की चर्चा। - 42.12 Mins

ज्ञायकरुप से जानने में आया, तो यहाँ स्वरूप-प्रकाशन की अवस्था में भी, स्वरूप-प्रकाशन की अवस्था में जैसे ये ज्ञायक है और ज्ञायक ही जानने में आया, उसी तरह वहाँ ज्ञेयाकार अवस्था में भी वो (ज्ञायक ही) जानने में आया है। हाँ! इसलिए वहाँ भी कर्ता-कर्म का अनन्यन्त्व है। वहाँ ये ज्ञाता और वो जगत के पदार्थ कर्म - ऐसा नहीं है। लेकिन वहाँ भी ये ही ज्ञाता और ये ही ज्ञेय। ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से जानने में आया, वो बहुत गंभीर लाइन है वो। ज्ञेयाकार अवस्था कही आचार्य ने क्योंकि वो ज़्यादा लंबाना नहीं है।

तो वो ज्ञानाकार है असल में तो। पर ज्ञेयाकार कहा आचार्य ने तो उससे सब समझ जाते हैं समझनेवाले कि ज्ञेयाकार माने ज्ञेय जैसे आकार। तो उस अवस्था में भी जो जानने में आया तो वो ज्ञायक ही जानने में आया है। और ज्ञायक जानने में आया इसका अर्थ यह है कि अज्ञानी तो ये मानता है कि ज्ञेय मेरे जानने में आते हैं। तो ज्ञेय मेरे जानने में आते हैं तो मैं तो कर्ता और ज्ञेय मेरे कर्म। इस तरह कर्ता और कर्म का अन्यत्व जानता है। और कर्ता और कर्म का principle, सिद्धांत यह है कि वो कर्ता-कर्म अनन्य होते हैं। एक ही पदार्थ में रहते हैं। वरना तो कर्ता और कर्म का ढूँढना ही मुश्किल हो जाएगा जगत में कि कौन कर्ता (है) और कौन कर्म (है)?

जैसे ये तो कर्ता बना और जगत के अनंत पदार्थ हैं उनमें से कर्म किसको बनाएगा? इसलिए वो नहीं है लेकिन अनन्यत्व होता है। अर्थात् एक ही पदार्थ में कर्ता और कर्म होते हैं। और वो जो कर्ता है वो कर्म में व्यापक होता है, व्यापक। वो भी है (तो) व्यवहार वो। है व्यवहार लेकिन बताने के लिए बहुत आवश्यक है वो कहना कि वो उसमें व्यापक होता है। अर्थात् वो जो शुद्ध तत्त्व है शुद्धात्मा, वो उस कर्म में व्यापक होता है और वो व्याप्य होता है। तो ये कर्ता-कर्म का अनन्यत्व का principle (सिद्धांत) है ये।

तो इसी तरह यहाँ पर ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप में जानने में आता है, तो वहाँ भी स्वरुप-प्रकाशन की तरह कर्ता-कर्म का अनन्यत्व है। जैसे स्वरुप-प्रकाशन में मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय (है), उसी तरह वहाँ ज्ञेयाकार अवस्था में भी मैं ही ज्ञाता (और) मैं ही ज्ञेय। ऐसा कर्ता-कर्म का अनन्यत्व होता है। और वो कर्ता-कर्म का अनन्यत्व विचार में आया हमारे, तो वहाँ तक तो विकल्प है। तो उस विकल्प पर वो ठहरता नहीं है। उस विकल्प को तोड़कर मैं ही ज्ञायक, बस! वहाँ पहुँच जाता है।

मुमुक्षुः- ओहोहो! विकल्प को तोड़ने की चेष्टा ये है कि - मैं ही ज्ञायक।

पूज्य बाबूजीः- मैं ही ज्ञायक हूँ, बस। उसमें कर्ता-कर्म.... मैं कर्ता और ये कर्म - इस विकल्प से क्या मिलनेवाला है तेरे को? इससे क्या उपलब्धि होनेवाली है? कोई उपलब्धि नहीं होगी। इसलिए मूल चीज यहाँ से शुरू करना कि मेरा जो उपयोग है, ज्ञान पर्याय। ये ज्ञान पर्याय मेरी वास्तव में स्वच्छ है बल्कि शुद्ध है (ऐसा) एक बार विचार करे सच्चे मन से। गुरुदेव की देशना के अनुसार ये विचार करे कि ये सचमुच मेरी ज्ञान पर्याय में आज तक मैंने जो माना और मैंने जो

कल्पनायें कीं, उनमें से कोई चीज मेरी ज्ञान पर्याय में नहीं आई। ना तो परपदार्थ आये और ना मेरे मोह-राग-द्वेष आये। तो नहीं आए इसका अर्थ ये है कि मेरी पर्याय तो शुद्ध रही।

जब मेरी पर्याय ज्ञान पर्याय शुद्ध है तो फिर मेरा ज्ञान गुण भी शुद्ध है और मैं ज्ञायक भी शुद्ध हूँ। क्योंकि ज्ञान पर्याय में ही ये भ्रम पैदा होता है। क्योंकि जानने का काम (तो) उसमें होता है न! और तो गुण जो है वो जाननेरूप परिणमित होते नहीं (हैं)। आत्मा जो है ज्ञायक, वो जाननेरुप परिणमित होता नहीं (है) क्योंकि वो तो ध्रुव है। इसलिए ज्ञान की पर्याय में ही ये भ्रम पैदा होता है कि कोई आ गया (है) जैसे। जैसे हमें भी भय-चिंता शोक-क्लेश इत्यादि जो होते हैं अथवा मेरे ऊपर बहुत संकट है - ऐसा जो हम अनुभव करते हैं तो उसमें क्या भ्रम पड़ा है? उसमें भ्रम ये है कि मेरे भीतर कोई आ गया है। कोई संकट आ गया है मेरे भीतर। जबकि ज्ञान पर कोई संकट आता नहीं है क्योंकि उसकी रेखा ही ऐसी है कि उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। इसलिए कोई संकट उसमें नहीं आता है।

तो शुरु [88]यहाँ से किया उसने कि सचमुच ये जो पर्याय है न, ज्ञान की पर्याय.... इस पर्याय में मेरी कल्पनायें भी प्रविष्ट नहीं हुई। माने मेरी कल्पनाओं के विषय तो प्रविष्ट हुए ही नहीं, पर मेरी कल्पनायें भी इसमें साकार होती नहीं हैं। वो भी प्रविष्ट नहीं हुईं इसलिए मैं तो शुद्ध ज्ञान हूँ - अब बोलेगा वो (ऐसा)। अभी है (तो) विकल्पदशा इसलिए मैं शुद्ध ज्ञान हूँ। और ये जो ज्ञान है माने ये जो ज्ञान की पर्याय है जिसको अनुभूति कहते हैं, ये ज्ञान की पर्याय ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! बहुत सुंदर!

पूज्य बाबूजी:- तो ज्ञायक पर चला जाता है। ज्ञायक को तो लक्ष बनाना ही है शुरु में, प्रारंभ में। जब तक उसको लक्ष नहीं बनाएगा तो ये बीच में अटक जाएगा। और किसी भी विकल्प में फँसकर और मिथ्यात्व का वमन नहीं कर सकेगा।

मुमुक्षु:- माने अनुभव को लक्ष नहीं बनाना है, ज्ञायक को बनाना है।

पूज्य बाबूजी:- अनुभव को नहीं बनाना, हाँ। और किसी विकल्प को माने अपने ही संबंध में होने वाले (विकल्प) स्वरुप-प्रकाशन में, जैसे (कि) मैं ही कर्ता और मैं ही कर्म.... कि इससे क्या सिद्धि है तेरी? तुझे ज्ञायक का अनुभव (करना है), उसका आनंद लेना है या तुझे ये उल्टी-सीधी बातें करना है? मैं कर्ता और ये मेरा कर्म इससे तुझे क्या मिलनेवाला है? कुछ मिलेगा नहीं।

इसलिए सचमुच मैं तो ज्ञायक ही हूँ, चिन्मात्र हूँ, चैतन्य हूँ। बस! ऐसा जानता हुआ उसका जो स्वरुप है उसमें एकदम लीन हो जाता है। बल्कि लीन क्या हो जाता, उसको अपनी पर्याय में उतार लेता है। वो तो वहीं का वहीं रहता है। हाँ! क्योंकि पर्याय में होती है न अनुभूति। वो अनुभूति होती है (कि) मैं ज्ञायक हूँ, तो वो ज्ञेयाकाकार होती है अनुभूति।

मुमुक्षु:- वाह रे वाह! Masterpiece. बहुत सुंदर!

88 जीव शुरुआत कहाँ से करता है? - 47.51 Mins

पूज्य बाबूजी:- वहाँ नहीं जाती (है) पर्याय भी। पर्याय द्रव्य को छूने, ज्ञायक को छूने नहीं जाती है। क्योंकि होता तो ऐसा है, ज़्यादातर तो यूँ आता है न प्रवचनों में तो कि वो ज्ञायक का अवलंबन लेती है। अब अवलंबन का अर्थ हम सीधा ये समझते हैं कि पर्याय ने द्रव्य का अवलंबन लिया है। पर पर्याय तो द्रव्य को छूती नहीं है। तो (फिर वो) क्या करती है? कि वो स्वतंत्ररूप से उसकी शान ये है, गरिमा कि - वो स्वतंत्ररूप से जैसे अन्य पदार्थों जैसी रचना करती थी, उसी तरह वही principle (सिद्धांत) यहाँ लागू होता है कि वो जो ज्ञायक है, ध्रुव तत्त्व वो भी पर्याय में नहीं आता.... ज्ञान की पर्याय में, श्रुतज्ञान की पर्याय में। लेकिन वो श्रुतज्ञान स्वयं ज्ञायक जैसे स्वरूप, वो उस स्वरूप का आकार बनाता है। वो स्वरूपाकार प्रवर्तित होती है। और स्वरूपाकार प्रवर्तित होती है इसी का नाम अनुभूति है कि मैं ज्ञायक हूँ।

वो अनुभूति 'मैं अनुभव कर रहा हूँ' - ऐसा नहीं बोलती। मैं ज्ञायक हूँ बस, ऐसा। तो इस तरह जो पर्याय है वो भी मानो द्रव्य बन गई है। उस पर्याय ने अपना एक-एक चप्पा-चप्पा खाली कर दिया है ज्ञायक के लिए और सारी पर्याय में ज्ञायक पसर गया। इसलिए अनुभूति गायब हो गई। तो अनुभूति में अनुभूति भी नहीं दिखाई देती है। शुद्धनय में शुद्धनय भी नहीं दिखाई देता क्योंकि शुद्धनय स्वयं पर्यायार्थिकनय का विषय है।

मुमुक्षु:- Masterpiece! बहुत सुंदर! शुद्धनय स्वयं पर्यायार्थिकनय का विषय है।

पूज्य बाबूजी:- स्वयं पर्यायार्थिकनय का विषय है शुद्धनय। अनुभूति स्वयं पर्यायार्थिकनय का विषय है। इसलिए वहाँ तो पर्यायार्थिकनय चलता ही नहीं है। तो इसलिए ये पर्याय जो है वो ज्ञायकाकार होकर मैं ज्ञायक.... ज्ञायक भी नाम है। असल में तो स्वरुप का जो निर्णय किया चिन्मात्र, चैतन्यमात्र उसमें ये उस पर्याय में ये लीनता होती है। उसकी लीनता होती है। नाम से अनुभव नहीं होता है। नाम से, आकारों से तो खैर होता ही नहीं है। लेकिन नाम से भी अनुभूति नहीं होती (है) कि द्रव्य है अथवा ज्ञायक है अथवा जीवास्तिकाय है, कोई भी (नाम) बहुत नाम हैं। उनसे नहीं होती है अनुभूति।

मुमुक्षु:- भासन से होती है।

पूज्य बाबूजी:- भासन से होती है। उसका जो भाव है उसमें ये लीन हो जाता है, चिन्मात्र। तभी विकल्प निरस्त होते हैं सारे के सारे, वरना वो विकल्प बना रहेगा।

मुमुक्षु:- बराबर! (कि) ज्ञायक (हूँ)!

पूज्य बाबूजी:- हाँ! इसलिए एक मात्र चिन्मात्र हूँ, बस! इतना भासन होता है। ये सार है स्वपरप्रकाशक का।

मुमुक्षु:- अद्‌भुत! बाबूजी अद्‌भुत स्पष्टीकरण! क्या जानने का अर्थ है! अद्‌भुत!

पूज्य बाबूजी:- और सारी बातें व्यवहार की हम स्वीकार कर लेते हैं कि जैसे व्यवहार सम्यग्दर्शन (वो है कि) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा अथवा सात तत्त्व का विचार; सात तत्त्वों के

विचाररुप श्रद्धा। तो इस तरह हम स्वीकार कर लेते हैं कि ये तो व्यवहार है। लेकिन यहाँ आकर हम चूकते हैं कि ये पर को नहीं जानता..... ये बात तो शास्त्रों में तो इतनी धूमधाम से लिखी है कि पता ही नहीं है। पर वो जो खास बात उन्होंने एक जगह लिख दी कि ना तो ये कहीं जाता है (और) ना कोई इसके भीतर आता है। तो ये जो सूत्र है ये सूत्र तो मंगलाचरण की तरह ही हृदय में धारण करने लायक है सबको। ये मंगल-सूत्र है जो पहनने लायक है सदा ही।

मुमुक्षु:- अरे! वाह रे वाह!

पूज्य बाबूजी:- इसलिए इस मंगल-सूत्र का अनुशीलन करना चाहिए सब जगह।

मुमुक्षु:- कि ये कहीं नहीं जाता (और) वो कहीं नहीं आता।

पूज्य बाबूजी:- इसमें कोई नहीं आता और ये कहीं जाता नहीं है। तो बस ज्ञान ही ज्ञान रहा। ज्ञान ही ज्ञान रहा माने ज्ञायक रहा। क्योंकि निर्णय में इसमें जो है ज्ञायक ही आया था कि कोई जगत में कोई नहीं (है)। कोई यानि मेरी पर्याय तक नहीं (है), सिद्ध दशा तक नहीं (है)। कोई नहीं; ना मुझे (सिद्ध) बनना है, ना मैं बनूँगा। क्योंकि भगवान सिद्ध भी इसी देवता की पूजा करते हैं, ज्ञायक की, चिन्मात्र की।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर!

पूज्य बाबूजी:- मैं भी यहीं से शुरु करता हूँ। यहाँ से इसने उस चिन्मात्र-देवता की पूजा शुरु की अनुभूति के द्वारा। तो अनुभूति जो है वो चिन्मात्र बन गई। चिन्मात्र हूँ ये उसका स्वर होता है। वरना मैं अनुभव करती हूँ - ऐसा स्वर होगा। मैं ज्ञायक का अनुभव करती हूँ - तो ज्ञायक का अनुभव करती हूँ इसमें छल हो गया पर्याय का।

बात बड़ी सुंदर है कि मैं ज्ञायक अनुभव करती हूँ (ऐसा) अनुभूति बोली। लेकिन इसमें बहुत बड़ा छल है। वो छल ये है कि ये ज्ञायक को तो नीचा दिखाना चाहती है और स्वयं जो है ऊपर उठना चाहती है। अपना वर्चस्व बताना चाहती है। पर ये ज्ञायक है जो, इसकी प्रसिद्धि तो बहुत थी लेकिन जब तक अनुभूति नहीं हुई तब तक ये अच्छा नहीं लगता था। शोभा नहीं थी इसकी (ज्ञायक की), ये कुरूप लगता था। और जब मैंने अनुभूति की तो इसकी सुंदरता बढ़ गई। तो वो तो असुंदर हुआ ही नहीं (है) कभी। वो तो सुंदरतम पदार्थ है जगत का।

वो तो सुंदरतम है। वो तो है most beautiful (ब्यूटीफुल) है। बहुत सुंदर! इतना सुंदर कि मुनिराज जाते हैं तो बाहर निकलना ही नहीं चाहते। इतना सुंदर है, इतनी रमणीय-वाटिका है वो। बस! ये इतना सा है शुरु से। प्रारंभ से इतना जानना चाहिए कि ये जो उपयोग है, उपयोग से चले (वो) ज्ञान की पर्याय से चले। वहाँ ज्ञायक से भी नहीं चले अभी। ज्ञान की पर्याय से चले कि इसमें कोई नहीं आया तो मैं शुद्ध ही हूँ। तो ये जो ज्ञान है मेरा बिल्कुल अनेक आकारों वाला होते हुए भी शुद्ध ही है। तो ये जो ज्ञान है, ये मैं स्वयं ही हूँ। चिन्मात्र ज्ञायक ही हूँ। बस! हो गया।

मुमुक्षुः- इतना! माने ज्ञान की पर्याय का ज्ञेयाकाररूप स्वरुप, वो परप्रकाशरूप स्वरूप कहलाता है?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वही कहलाता है। ज्ञान की पर्याय का ज्ञेयाकार जैसा स्वरुप वो ही परप्रकाशरूप कहलाता है। है स्वप्रकाशक, अनुसंधान में जब जाते हैं तो।

मुमुक्षुः- [89]और स्वप्रकाशकरूप स्वरुप क्या है प्रभु?

पूज्य बाबूजीः- स्वप्रकाशक ये ही। ज्ञान में ज्ञान ही जानने में आता है, बस हो गया वो। प्रतिभासों को भी गौण किया। माने अस्त तो नहीं कर सकते हैं उनको क्योंकि प्रतिभास तो हमेशा रहने ही वाला है, एक गया और दूसरा आनेवाला है। इसलिए वो तो गौण किए जाते हैं, खाली। उनको गौण कर कि ये कुछ भी नहीं हैं ये प्रतिभास सारे के सारे। मैंने तो अच्छी तरह से ज्ञान की चलनी में छानकर इनको देखा तो (ये तो) कुछ भी नहीं हैं। ये तो ज्ञान ही हैं सारे के सारे। तो सब ज्ञान ही है ऐसा जानकर (और मैं) ज्ञायक ही हूँ।

प्रतिभासों में भूल होती है न असल में। उन प्रतिभासों को ज्ञेय का प्रतिभास मान लेता है कि ज्ञेय का है। उनमें ज्ञेय का मिश्रण मान लेता है। तो मिश्रण जहाँ माना वहाँ अशुद्धता हो गई। माने अशुद्धता भी उसमें नहीं हुई। ना तो ज्ञान की पर्याय में हुई और ना उनमें हुई अशुद्धता ज्ञेय पदार्थों में। लेकिन क्या हुई अशुद्धता? कि इसकी कल्पना में वो अशुद्धता हुई। इसने ऐसी कल्पना कर ली।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! अशुद्ध जाने आत्मको।

पूज्य बाबूजीः- अशुद्ध जाने आत्मा को वो अशुद्ध आत्मा को प्राप्त करे।

मुमुक्षुः- तो ज्ञान की पर्याय का जाणकभावरूप स्वरुप वो स्वप्रकाशकरूप? और ज्ञेयाकाररुप स्वरुप वो परप्रकाशकरूप?

पूज्य बाबूजीः- ज्ञेयाकार जैसा जो प्रतिभास है उन प्रतिभासों को हम ज्ञेयों की ओर से मिलान करके देखें तो वो प्रतिभास बिल्कुल ज्ञेय जैसे हैं। जरा भी उन में कसर नहीं है। इसलिए उनको ज्ञेय नाम भी देते हैं, इसका नाम व्यवहारनय हुआ। पर ये शक्ति नहीं हुई। शक्ति तो हुई कि वो जो प्रतिभास बने हैं इसमें एक के बाद एक और ठीक वैसे के वैसे..... (तो) ये भी एक शक्ति है कि नहीं? एक तो सामान्य ज्ञान और एक जो है अनेक प्रतिभासोंवाली शक्ति। इस तरह एक ही पर्याय स्वपरप्रकाशक (है)।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर! बहुत सुंदर! बराबर! माने एक तो ज्ञानरूप शक्ति और एक प्रतिभासरूप शक्ति।

89 स्वपरप्रकाशकरूप स्वरुप क्या है? - 56.58 Mins

पूज्य बाबूजी:- एकरूप पर्याय की शक्ति.... जाननरूप, सामान्य जाननरूप और एक वो प्रतिभासरूप! लेकिन ये दो न्यारे नहीं हैं। हाँ! ये तो हम विश्लेषण में कर रहे हैं। वो ज्ञान जो है (वो) प्रतिभास ही है (और) वो प्रतिभास ज्ञान ही है, ऐसी अभेदता है उसमें।

मुमुक्षु:- एक ही वस्तु है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! एक ही वस्तु है। ये तो समझने के लिए हम कर रहे हैं क्योंकि अंत में वो ये करता है कि उन प्रतिभासों को गौण करके उन सबको ज्ञान बना देता है कि सिर्फ ज्ञान ही है। और ज्ञान है अर्थात् मैं ही हूँ, ज्ञायक ही हूँ, चिन्मात्र मैं एक ही हूँ बस। बस! ये अनुभूति कर लेता है।

मुमुक्षु:- इसका नाम सामान्य का आविर्भाव?

पूज्य बाबूजी:- सामान्य का आविर्भाव इसका नाम नहीं (है)। सामान्य का आविर्भाव तो वहाँ तक हुआ कि ये सारे प्रतिभास ज्ञान ही हैं - ये हुआ सामान्य का आविर्भाव। ये पर्याय है अभी तो ये, अभी तक (ये) पर्याय है। अब ये पर्याय उस ज्ञायक की अनुभूति करेगी (और) ज्ञायकाकर होगी इन सबको छोड़कर। अन्य प्रतिभासों को छोड़कर माने अन्य.... अब ये ज्ञायक की ओर झाँकेगी न! तो ज्ञायक का आकार इसमें बनेगा। और ज्ञायक का आकार बनेगा तब ये बोलेगी (कि) मैं ज्ञायक हूँ - ये, ये हुआ असली सामान्य का आविर्भाव, असली जो द्रव्य है (उसका आविर्भाव)।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! १५ वीं गाथा! पहले तो.....

पूज्य बाबूजी:- पर्याय है पहले तो।

मुमुक्षु:- पहले तो सामान्य रुप से पर्याय आविर्भूत हुई।

पूज्य बाबूजी:- पर्याय में सामान्य है वो।

मुमुक्षु:- और फिर वो पर्याय का सामान्य ज्ञायकाकार जब हुआ, तो (वो) सामान्य (का) आविर्भाव हुआ।

पूज्य बाबूजी:- तो सामान्य का आविर्भाव हुआ। असली सामान्य का, चैतन्य का माने।

मुमुक्षु:- अनुभूति का।

पूज्य बाबूजी:- चिन्मात्र का। अनुभूति (का) नहीं, चिन्मात्र का।

मुमुक्षु:- चिन्मात्र का, जब अनुभूति हुई तब।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! चिन्मात्र-चैतन्य का आविर्भाव हुआ।

मुमुक्षु:- ज्ञान की पर्याय का सामान्यरुप स्वरूप देखा, तब उसको ज्ञायकाकर रुप से देखने की बात आ सकती है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! तब आ सकती है। वो तो प्रतिभास तो हमेशा होते ही हैं, हर समय। प्रतिभास शून्य तो कोई जीव रहता ही नहीं है कभी (भी)। जैसे निगोद का जीव है तो उसको भी

वो शरीर आकार शरीर का प्रतिभास (होता है) प्रतिसमय। ये ही मैं, ये ही मैं - ये अहम् चलता है बराबर (उसको) मिथ्यादर्शन के रूप में। इसलिए उसके बिना तो रहता ही नहीं (है) कोई ज्ञान। प्रतिसमय चलता ही रहता है।

तो प्रतिभास तो रहने ही वाला है, उसको मिटाना नहीं है। अज्ञानी उसको मिटाना चाहता है ज्ञेय मानकर। उसको ज्ञेय मानता है, तब वो उसको मिटाना चाहता है। (और) उसको मिटाने की चेष्टा में स्वयं मिट जाता है।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! बहुत सुंदर! बहुत सुंदर!

पूज्य बाबूजी:- क्योंकि वो तो वो ही है स्वयं। ज्ञान है वो तो। इसलिए वो उसको निकालना चाहता है बाहर कि ये मेरे भीतर कौन आ गया है? कौन प्रविष्ट हो गया है मेरे भीतर? वो प्रतिभास जब देखता है तो उसको ज्ञेय लगता है। तो (वो) उसको निकालना चाहता है। और वो निकालने के चक्कर में ये स्वयं निकल जाता है। शून्य हो जाता है।

मुमुक्षु:- बहुत सुंदर! बहुत सुंदर! बराबर!

पूज्य बाबूजी:- माने अपनी हत्या करना चाहता है उसको निकालकर। पर्याय ही नहीं रहेगी तो द्रव्य कहाँ से रहेगा?

मुमुक्षु:- आहाहा! सही बात है! अद्भुत विश्लेषण! स्पष्ट!

पूज्य बाबूजी:- [90]ये संक्षेप है।

मुमुक्षु:- वास्तव में ये स्वरूप प्रकाशन है!

पूज्य बाबूजी:- २७० गाथा और २७१ वाँ कलश - ये दोनों बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनकी टीका जो है वो बहुत महत्वपूर्ण है। सत् अहेतुक ज्ञप्ति - ये टीका है उसकी।

मुमुक्षु:- सत् अहेतुक ज्ञप्ति!

पूज्य बाबूजी:- ज्ञप्ति, सत् अहेतुक ज्ञप्ति। अब सत् अहेतुक ज्ञप्ति किसको कहेंगे? जिसमें ज्ञेय आ जाए या ज्ञेय कारण बन जाए अथवा ज्ञेय का मिश्रण हो जाए। किसको कहेंगे सत् अहेतुक? जो सत् रुप है और जिसका कोई कारण नहीं (है)। जो स्वयं उत्पन्न हुई अपनी सामर्थ्य से - ऐसा। अपने षट्कारक को लेकर, वो सत् अहेतुक। वही जिसका एक आकार है - ऐसा बोलें।

मुमुक्षु:- बराबर! बराबर! वही जिसका एक आकार है।

पूज्य बाबूजी:- वही जिसका एक आकार है। सबको मिलाकर एक कर लिया (कि) एक ज्ञान बस। और कुछ नहीं है (ऐसा) कहते हैं; सबको मिटाकर।

मुमुक्षु:- तो वो सत् अहेतुक ज्ञप्ति को ज्ञान सामान्य बोल सकते हैं न? ज्ञान सामान्य! सत् अहेतुक ज्ञप्ति वो ज्ञान सामान्य हुआ?

पूज्य बाबूजी:- हाँ! सामान्य कर लिया। सामान्य कर लिया पर्याय का।

90 २७० गाथा और २७१ वाँ कलश की चर्चा। - 1.02.59 Hours

मुमुक्षु:- पर्याय का। पर्याय की ही बात है।

पूज्य बाबूजी:- हाँ!

मुमुक्षु:- पर्याय की ही बात है। अद्‌भुत!

पूज्य बाबूजी:- [91]हो गया अब आज का, अंतिम हो गया?

मुमुक्षु:- अभी पाँच मिनिट बाकी हैं बाबूजी। वैसे सवा आठ को शुरु किया था।

पूज्य बाबूजी:- पाँच मिनिट में ऐसा है कि अब कल आपसे विदा लेना है, और बोलनेवाले से बहुत गलती होती हैं। कभी-कभी किसी का हृदय भी दु:ख जाए। तो मैं उन सब बातों के लिए.... क्योंकि बोलना मुझे ही पड़ा है ज़्यादातर, तो आप सबसे मैं क्षमा चाहता हूँ।

मुमुक्षु:- बाबूजी! ऐसा मत बोलिये। बिल्कुल मत बोलिए।

पूज्य बाबूजी:- नहीं। होता है, ऐसा होता है। कभी किसी को तकलीफ हो जाए, कोई कष्ट हो जाए सुनने में। क्योंकि यहाँ तो व्यक्तिगत तो कोई बात की नहीं जाती है। लेकिन फिर भी गलती हो जाए न तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

मुमुक्षु:- ये आपका बड़प्पन है बाबूजी। वास्तव में ....

पूज्य बाबूजी:- नहीं! बड़प्पन का सवाल नहीं है। ये तो एक इतना अच्छा व्यवहार है।

मुमुक्षु:- वास्तव में हमारा पुण्य का उदय था कि आपकी देशना हमको सुनने को मिली।

पूज्य बाबूजी:- मेरा भी तो उदय था न बोलने का।

मुमुक्षु:- आप कभी तो हमारी ओर से सोच लिया करें।

बाबूजी! वास्तव में निर्णय पक्का हो गया जाने का?

पूज्य बाबूजी:- अब हो ही गया पक्का और क्या! टिकिट भी मँगा ली है।

मुमुक्षु:- टिकिट तो बाबूजी (कैन्सल) हो सकती है ऐसा नहीं है।

पूज्य बाबूजी:- नहीं हो गया। आज ही अंतिम समापन हो गया न, विषय का भी।

मुमुक्षु:- थोड़ा बाबूजी! कल काव्य की आपने कुछ बात की थी। थोड़ा गुरुदेव के बारे में कुछ ऐसा (कहिए)।

पूज्य बाबूजी:- अब मैं थक जाता हूँ।

मुमुक्षु:- अच्छा ठीक है! छोटी सी।

पूज्य बाबूजी:- है तो छोटी सी वो।

आपने क्षमा तो कर दिया न?

मुमुक्षु:- अरे प्रभु! अरे बाबूजी! ऐसा मत बोलिए। मत बोलिए ऐसा बाबूजी। यहाँ तो ..... कि आपको ऐसा विकल्प आया कि क्षमा माँगने का? हमें क्षमा कर दीजिए।

91 अंतिम उद्बोधन! - 1.04.48 Hours

पूज्य बाबूजी:- नहीं मुझे माँगना चाहिए। जो ज़्यादा बोलता है उसी से गलती हो सकती है।

मुमुक्षु:- बाबूजी! हमको तो सभी को ऐसा लगता है कि ये यहाँ चौथा आरा (चौथा काल) चल रहा है। इतनी अद्‌भूत बातें ज्ञायक की जो आती हैं न बाबूजी, हम वो भूल नहीं सकते। हमारे जीवन का ये अद्‌भूत प्रसंग है।

पूज्य बाबूजी:- जिनवाणी की हैं न (बातें तो), मेरा क्या है? ये तो सारा प्रताप ही गुरुदेव का है।

मुमुक्षु:- सही बात है! बराबर है।

पूज्य बाबूजी:- मेरा क्या है इसमें? अपन तो उन्हीं का अनुशीलन करते हैं। जितना अपनी बुद्धि में समझ में आ जाए तो (उतनी बात) खुलकर रखनी चाहिए क्योंकि इसी में कल्याण है। जीव मात्र का जो कल्याण है वो इसी में है कि गुरुदेव की बात को अपन खुलकर, निर्भीकता से स्वयं समझकर और फिर (सामने) रखें। ये तो चर्चा है। इसमें मैं कौन होता हूँ बोलनेवाला?

मुमुक्षु:- नहीं! सही बात है। आपने बाबूजी! लक्ष हमारा जोड़ा इस पर; गुरुदेव ने ये ही बात की है लेकिन आपने हमारे लक्ष को इस ओर खींचा।

पूज्य बाबूजी:- हाँ! वो तो ठीक है। वो तो अपनी जगह है।

मुमुक्षु:- वो ही बाबूजी, अद्‌भूत कल्याणकारी (बात है)।

पूज्य बाबूजी:- अपने ज्ञान की गरिमा है वो तो।

मुमुक्षु:- इन दिनों जिनवाणी की वर्षा ऐसी हुई कि सब के हृदय भीग गए।

पूज्य बाबूजी:- नहीं! वो ऐसा ही होना चाहिए न! जिनवाणी तो .... पूरी दुनिया में रह भी कौन गया?

मुमुक्षु:- प्रयोगात्मक (कि) किस तरह प्रयोग की भूमिका (आवे और) प्रयोग कैसे किया जाए - इस तरह का जो स्पष्टीकरण आया वो उसके लिए अंदर से सोचें तो कुछ ज़बान से कह नहीं पा रहा हूँ - ऐसा भाव होता है।

पूज्य बाबूजी:- नहीं नहीं! जिनवाणी (को) कौन कह सकता है?

मुमुक्षु:- जैसे बच्चे को माँ परोसती है एकदम ऐसे करके, उसी तरह ये जो इतनी गंभीर लगनेवाली बात आपने इतनी सरल बना दी, बस इतना ही तो करना है - स्व और पर। ये मैं और ये मैं नहीं। इतनी सी (बात)! इतनी गंभीर बातें इतनी सरल करके बता दीं कि हमारा हौसला ही बढ़ गया। ये हौसला जो बढ़ता है तो काम और निर्णय ज़्यादा ही जल्दी हो जाता है - ऐसा लगता है बाबूजी।

पूज्य बाबूजी:- ऐसा (है कि) रोटी और सब्जी भी कठोर हो तो निगली नहीं जाती हैं। तो वो नरम हो न! इसी तरह नरम भाषा सरल भाषा हो तो अपन सब समझ लेते हैं। उसमें और क्या है? उसके लिए कठिनाई क्यों की जाए?

मुमुक्षु:- बाबूजी! वास्तव में आज पता चला कि स्वपरप्रकाशक (की) वस्तुस्थिति क्या है? वास्तव में! लगता ही नहीं कि इसमें कुछ है ही नहीं problematic (समस्यात्मक)!

पूज्य बाबूजी:- नहीं! है ही नहीं! Principle (सिद्धांत) है वो तो। असल में वो कोई प्रयोजन नहीं (है)। जिनवाणी में ये भी बात आती है कि प्रयोजनवश भी कोई बात कही जाती है लेकिन वो प्रयोजन नहीं है वास्तव में; सिद्धांत है ये।

मुमुक्षु:- सिद्धांत है!

पूज्य बाबूजी:- स्वपरप्रकाशकतावाला, सिद्धांत है ये। हाँ!

मुमुक्षु:- तो बाबूजी! एक ही ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय की ओर से देखें और माने तो अज्ञानता और से ज्ञायक की ओर से देखें और माने तो .....

पूज्य बाबूजी:- तो ज्ञान है.... ज्ञान ही है।

मुमुक्षु:- बहुत सरल बात कह दी। सही बात है! एकदम!

पूज्य बाबूजी:- ज्ञेय की ओर से देखकर उसको ज्ञेय माने अथवा उसका कारण ज्ञेय को माने, उसका हेतु ज्ञेय को माने। कुछ भी माने माने कुछ भी जोड़ लगाए ज्ञान के साथ, किसी को भी जोड़े.... कुछ भी माने तो वो अज्ञान है।

मुमुक्षु:- वास्तव में है तो ज्ञान वो। पूरी अज्ञानदशा भ्रांति है।

पूज्य बाबूजी:- बहुत भ्रांति है, बहुत भ्रांति। क्योंकि सारी चीज़ें हम स्वीकार कर लेंगे राग-द्वेष, पाप-पुण्य और और सब स्वीकार कर लेंगे। (लेकिन) यहाँ आकर तो बस ऐसे अटकेंगे क्योंकि वो मिथ्यादर्शन भी चतुर बहुत है। (कहता है कि) तू भागेगा कहाँ? अभी तो बहुत बाकी है। कि कहाँ भाग कर जाएगा तू? बहुत बाकी है। अभी तो मैं तुझे वहाँ फँसाऊँगा जहाँ ज्ञान का प्रकरण आएगा। तो वो फँस जाता है ये।

मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन भी चतुर तो होते ही हैं। अंत में जब कोई छल में नहीं आता है, तब फिर वो वैसे पलायन करते हैं कि दिखाई भी नहीं देते (हैं) - ऐसा।

मुमुक्षु:- एक बार इसको जाननभावरूप समझ ले (कि) इसके स्वभाव से देखा जाए तो कोई, कोई इसमें दो बातें हैं ही नहीं।

पूज्य बाबूजी:- जरा भी नहीं हैं। अंतर्मुख होने का एक मात्र जो process है, विधि है, विधान है वो ये ही है। परप्रकाशक मानने में जो वृत्ती है वो बहिर्मुख होती है क्योंकि उसको भी हमने शक्ति माना न? कि वास्तव में पर को जानता है, तो ज्ञान बहिर्मुख हुए बिना रहेगा नहीं और अंतर्मुख कभी अनुभूति होगी नहीं।

कोई ऐसा कहता हैं कि हम ऐसा थोड़े ही मानते हैं (कि) परप्रकाशक ही है। स्वप्रकाशक भी तो मानते हैं। तो स्वप्रकाशक के साथ परप्रकाशक भी तो मानते हो न? तो वृत्ती बाहर गए बिना कैसे रहेगी? वो तो उसको अपना कर्तव्य मानेगा? अपना धर्म माना न उसने उसको तो, परप्रकाशकता को। तो फिर वृत्ती बाहर गए बिना कैसे रहेगी? अब ये एकमात्र अंतर्मुख होने का उपाय (है), एकमात्र। इसमें है ही नहीं बहिर्मुखता कहीं भी। कहीं भी नहीं है क्योंकि वस्तु स्वभाव में ही नहीं है। एक ही मार्ग है!

मुमुक्षुः- आपने बोला (न) बाबूजी (कि) उसको बोलो न, ज्ञेयाकार बोलो। इसमें कोई सवाल नहीं है।

पूज्य बाबूजीः- बोलो जरूर! जरूर बोलो। क्योंकि उससे ये पता लगेगा कि इस समय ज्ञान में कौनसे ज्ञेय जैसा आकार है। इसलिए उसको बताने के लिए हमें उस ज्ञान के आकार को ज्ञेय कहना ही पड़ेगा। ज्ञेयाकार या ज्ञेय कहना ही पड़ेगा। कहना तो पड़ेगा लेकिन मानना नहीं। मानते ही मिथयादर्शन चिपट जाएगा, चिपट जाएगा बस।

मुमुक्षुः- वो विद्यमान है उसका अस्तित्व है, बस इतना। इतना ही परप्रकाशक है वो। अद्‌भुत बाबूजी! अद्‌भुत!

ज्ञान के उस स्वरूप को भले कहो पर मानो नहीं।

पूज्य बाबूजीः- [92]गुरुदेव के संबंध में आठ पंक्तियाँ लिखीं थी एक बार।

कर्मकांड की बालू के, भूधर धसकने लगे। गुरुदेव का जब अवतरण हुआ इधर दिगम्बर धर्म में, तो उस समय की चर्चा है।

कर्मकांड की बालू के, भूधर धसकने लगे,
सदियों से सिसकते मूल्य जीवन के उभरने लगे,
सदियों से सिसकते मूल्य जीवन के उभरने लगे,
रंगे सियारों की खिसकने लगी रे! धरती
(रंगेसियार - धोखेबाज व्यक्ति)
स्वर्णपुरी क्षितिज पर सुवर्ण-पुरुष हँसने लगे।

मुमुक्षुः- बराबर बराबर!

पूज्य बाबूजीः- रंगे सियारों की खिसकने लगी रे! धरती
स्वर्णपुरी क्षितिज पर सुवर्ण-पुरुष हँसने लगे
जगत जिसके करिश्मे देखता ठगा सा रहा
जगत जिसके करिश्मे देखता ठगा सा रहा
'जादूगर' कोई बोला, जीवन पट बुनता रहा,

92 गुरुदेव के संबंध में आठ पंक्तियाँ। - 1.14.14 Hours

विदेह का पैगंबर खुदा की बातें करता

आँधी-सा आया तूफान सा चला गया।

मुमुक्षुः- विदेह का पैगंबर!

पूज्य बाबूजीः- विदेह का पैगंबर खुदा की बातें करता

आँधी-सा आया तूफान सा चला गया। खुदा की बातें करता (अर्थात्) भगवान आत्मा (की बातें करता)।

मुमुक्षुः- अद्‌भुत! बाबूजी अद्‌भुत! एक और सुनाइए।

पूज्य बाबूजीः- अब नहीं ज़्यादा। ज़्यादा सुनाता नहीं हूँ मैं, मेरी आदत नहीं है। हो गया ये!

मुमुक्षुः- ये बाबूजी इसमें भी आत्मतत्त्व का ही भाव भरा है?

पूज्य बाबूजीः- हाँ! वही भरा है।

मुमुक्षुः- चतुष्पद!

पूज्य बाबूजीः-[93] बेमौसम है, मौसम बदल जाते हैं।

मुमुक्षुः- बराबर! बराबर! अप्रभावित है!

पूज्य बाबूजीः- आत्मा का मौसम नहीं है कोई। बेमौसम है, (आत्मा का मौसम) बदलता नहीं है। मौसम बदलते हैं। एक और सुना देता हूँ।

बाहर के देवता का फंक्शन (समारोह) तो होता रहा

बाहर के देवता का फंक्शन तो होता रहा

ज्योतियों के काजल से मंदिर को धोता रहा

कैसे पूरी होंगी तेरे मन की तमन्नायें?

तेरे घर का देवता तो आज तक सोता रहा।

मुमुक्षुः- आहाहा! सही बात है! सही बात है। सोता रहा। अद्‌भुत!

पूज्य बाबूजीः- और कोई प्रश्न हो तो! नहीं तो हो गया समापन आज।

मुमुक्षुः- आपसे क्या कहें? जल्दी-जल्दी पधारियेगा बंबई। बस! हमारा बाबूजी यही भाव है कि आप जिस तरह से...... आपके बेटे-बच्चे समान हैं हम ज़्यादा क्या कहें? जल्दी-जल्दी आ जाइए जरा।

महेंद्रभाई ने जाने का टाइम तो बताया (मगर) वापस आने का टाइम नहीं बताया। बाबूजी (का) मार्च के प्रथम सप्ताह में दो-तीन दिन के लिए फिर वापस आने का (योग बन रहा है)। बहुत सरस! चलो अद्‌भुत! ये मालूम नहीं था हमको लेकिन हमको खुशी हुई हमको।

93 भगवान आत्मा पर चतुष्पद! - 1.16.16 Hours

बाबूजी! जैसे आपने बोला ऐसे हमारी ओर से कुछ भी गलतियाँ हो गईं हैं तो हम भी आपसे क्षमा चाहते हैं। आप तो गलतियाँ नहीं कर सकते। हमारी और से definitely (निश्चितरूप से) ऐसा हो सकता है।

पूज्य बाबूजी:- मैंने तो तकलीफ ही तकलीफ दी है, रात-दिन।

मुमुक्षु:- बाबूजी! ये तकलीफ नहीं है बाबूजी! कोई तकलीफ नहीं है। तकलीफ तो अब दिए जा रहे हैं आप बाबूजी (कि वापस जा रहे हैं)। तकलीफ तो अब होगी बाबूजी! तकलीफ तो अभी हो रही है प्रभु! तकलीफ आपने दी ऐसा आप सोच रहे हैं, वही तकलीफदेह है हमारे लिए। कैसे तकलीफ हो सकती है बाबूजी आपकी हाजिरी में?

आज बाबूजी कल से लगेगा जैसे शून्यावकाश, क्योंकि जैसे (ही) आठ बजते थे न, चलो बाबूजी के पास। इसमें क्या है बाबूजी हम आपकी प्रशंसा नहीं करते। जो तत्त्व आता है न वो इतना हृदयंगम रहता है न कि बस जैसे इसमें डूब रहे हैं। ऐसी बाबूजी २५ दिनों तक ये धारावाहिकता चली २५ दिवस! आज २२ वाँ प्रवचन है बाबूजी का, २२ प्रवचन। २५ तारीख से शुरु किया था तो आज १५ तारीख है। अस्खलित प्रवाह बाबूजी! और इसमें मुख्य एक प्रयोजनभूत बात (ही आई), प्रयोजनभूत!

पूज्य बाबूजी:- प्रयोजनभूत ही आना चाहिए न!

मुमुक्षु:- प्रयोग की, प्रयोग की पद्धति! प्रयोग की पद्धति!

चलो जल्दी-जल्दी वापस ऐसी घड़ी आए इसका ही हमको इन्तजार है। और हम प्रार्थना करते हैं (कि) बाबूजी का स्वास्थ्य हमेशा अच्छा रहे ताकि इतनी अद्‌भुत बातें, ज्ञायक का अद्‌भुत रहस्य का उद्‌घाटन हमारे सामने होता रहे और हम इससे अपना निज कल्याण करें। बस! ये ही भावना बाबूजी भाते हैं आज।

पूज्य बाबूजी:- बहुत बढ़िया भावना है आपकी। मेरी तो वैसी ही है स्थिति अब। यहाँ तो सब आते हैं जो सब ऐसे ही आते हैं।

परम उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव की जय हो!
जिनवाणी माता की जय हो!

बाबू जुगलकिशोर 'युगल'

जन्म : 5 अप्रेल, 1924
खुरी, जिला - कोटा (राज.)

देहविलय : 30 सितम्बर, 2015

शिक्षा : एम.ए., साहित्यरत्न

पता : 85, चैतन्य विहार, आर्य समाज स्ट्रीट,
रामपुरा, कोटा (राज.) 324006

ख्यातिप्राप्त दार्शनिक विद्वान बाबू जुगलकिशोर 'युगल' को प्रसिद्ध देव- शास्त्र-गुरु पूजा एवं सिद्ध पूजा लिखने के कारण समाज में वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दी साहित्य में 'उसने कहा था' कहानी के लेखक पण्डित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' को। 'युगलजी' उच्चकोटि के कवि, लेखक एवं ओजस्वी वक्ता थे।

15 वर्ष की अल्पवय में ही आप में काव्य-प्रसून अंकुरित होने लगे थे। तब राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतंत्रता-संग्राम का युग था। युग के प्रवाह में आपकी काव्यधारा राष्ट्रीय रचनाओं से प्रारम्भ हुई। पारम्परिक धार्मिक संस्कार तो आप में बचपन से ही थे, किन्तु उन्हें सम्यक् दिशा मिली इस युग के आध्यात्मिक क्रान्ति स्रष्टा श्री कानजीस्वामी से।

स्वयं श्री 'युगलजी' के शब्दों में - 'गुरुदेव से ही मुझे जीवन एवं जीवनपथ मिला है।' युगलजी दर्शन को जीवन का समग्र स्वरूप मानते हैं और दर्शन की सर्वांग क्रियान्विति चैतन्य के साक्षात्कार में स्थापित करते हैं-

जो चेतन के भीतर झाँका, उसने जीवन देखा
बाकी ने तो खींची रे ! परितप्त तटों पर रेखा

जनमानस में जैनदर्शन का साधारणीकरण आपके काव्य का मूल लक्ष्य है।

आप सफल गद्य एवं नाट्य-लेखक भी हैं। आपके साहित्य कोष से लोकोत्तर रचनाओं में काव्य संग्रह "चैतन्य वाटिका" एवं गद्यविद्या "चैतन्य विहार" में साहित्य व अध्यात्म के समावेश से जैन जगत को नया आयाम मिला।

युगलजी अखिल भारतीय स्तर के प्रवचनकार थे और उनकी उपस्थिति धार्मिक आयोजनों का महत्त्वपूर्ण आकर्षण मानी जाती थी।

"हे विश्व कवि मैं तुमको क्या अर्पण कर दूं
मेरी क्या हस्ती है, जो तुमको तर्पण कर दूं
तुम हो सूर्य गगन के, मैं कण माटी का
तुम ही सागर ज्ञान सिन्धु, मैं एक बिन्दु सा"

चित्रों के दर्पण में बाबूजी....